पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन

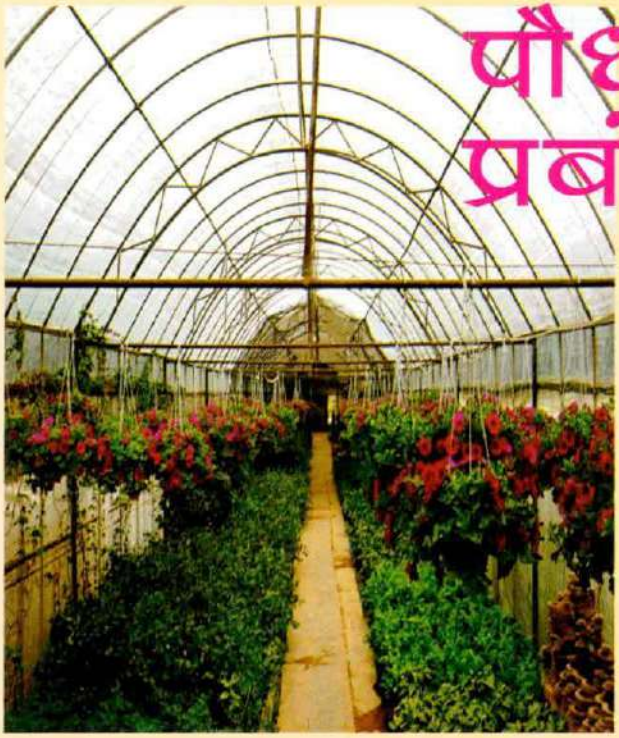

लेखक
डॉ0 राम रोशन शर्मा

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

© भारत सरकार, 2010

© Government of India 2010

प्रथम संस्करण 2010

मूल्य: रु.

प्राप्ति स्थल

1. बिक्री एकक
   वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
   पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
   नई दिल्ली - 110066
   फोन न: 26105211

2. प्रकाशक नियंत्रक, भारत सरकार
   सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
   फोन न: 2513302, 2517640

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम्
नई दिल्ली - 110066

पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन

डॉ. राम रोशन शर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक (फल विज्ञान)
कटाई-उपरांत प्रौद्योगिकी संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110 012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

पादप प्रवर्धन
एवं
पौधशाला प्रबंधन

डॉ. राम रोशन शर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक (फल विज्ञान)
कटाई-उपरांत प्रौद्योगिकी संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110 012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

© भारत सरकार, 2010

© Government of India 2010

प्रथम संस्करण 2010

मूल्य: रु.

प्राप्ति स्थल

1. बिक्री एकक
   वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
   पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
   नई दिल्ली - 110066
   फोन न: 26105211

2. प्रकाशक नियंत्रक, भारत सरकार
   सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
   फोन न: 2513302, 2517640

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम्
नई दिल्ली - 110066

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (संप्रति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक पारिभाषिक कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय-स्तरीय हिंदी पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य-पुस्तकें, शब्द संग्रह, परिभाषा-कोश, पत्रिकाएं, चयनिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण, बोधगम्य और आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम में अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "**पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन**" भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. राम रोशन शर्मा द्वारा लिखी गई है जो इस विषय के प्रख्यात विशेषज्ञ हैं। लेखक ने पादप प्रवर्धन और नर्सरी प्रबंधन के विविध पहलुओं पर गहनता से लेखनी चलाई है। इसका पुनरीक्षण डॉ. मनीष श्रीवास्तव, वरिष्ठ वैज्ञानिक, फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,नई दिल्ली ने किया है।

पुस्तक की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। लेखक ने इसमें हिंदी की मानक तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया है और पुस्तक के अंत में संदर्भ सूची तथा तकनीकी शब्दों की हिंदी-अंग्रेजी शब्दावली भी दे दी है।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला अध्यापकों, स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों और जन-सामान्य के लिए भी बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी।

नई दिल्ली
फरवरी, 2010

(प्रो. के. बिजय कुमार)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

प्राक्कथन

हाल ही के वर्षों में हमारे देश ने औद्यानिक फसलों के उत्पादन में काफी उन्नति की है। फलोत्पादन एवं सब्जी उत्पादन में हम विश्व में दूसरे पायदान पर हैं। कई मसालों के उत्पादन में हम विश्व में पहले स्थान पर हैं। औद्यानिक फसलों के उत्पादन में हुई इस वृद्धि को स्वर्णिम क्रांति का नाम दिया गया है। हालांकि ये आंकड़े काफी लुभावने हैं, परंतु हमारे देश में उगाई जाने वाली अधिकतर फसलों की उत्पादकता अन्य देशों की अपेक्षा काफी कम है। कम उत्पादकता के वैसे तो कई कारण हैं, परंतु एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमारे देश में व्यावसायिक फसलोत्पादन शुरू करने हेतु प्रवर्धन संबधी सामग्री का अभाव भी है। हमारे देश में सबसे बड़ी समस्या यह है कि लगभग 50,000 पौधशालाएं होने के बावजूद उच्च गुणवत्ता की पादप सामग्री का हमेशा अभाव रहता है। विभिन्न औद्योगिक फसलों में, जहां कुछ सब्जियों, मसालों एवं पुष्पीय फसलों के नए पौधे तैयार करना अति आसान होता है वहीं कुछ के पौधे तैयार करना अति कठिन भी होता है। प्रवर्धन में सबसे कठिन पहलू यह है कि एक फसल-विशेष के लिए मानकीकृत प्रवर्धन तकनीक अक्सर दूसरी के प्रवर्धन हेतु काम नहीं आती है। अत: इनके प्रवर्धन हेतु आए दिन शोधकार्य हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे देश के अधिकतर फलोत्पादक अनपढ़ हैं और आए दिन शोध कार्यों का ज्ञान उन तक नहीं पहुंच पाता है क्योंकि अधिकतर पाठ्य सामग्री अंग्रेजी में होती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग हर कृषि कालेज या विश्वविद्यालय में पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन पर कोर्स पढ़ाया जाता है। उत्तरी भारत में कई ऐसे महाविद्यालयों में हिंदी में पाठन किया जाता हैं किंतु हिंदी में पाठ्य सामग्री का हमेशा अभाव रहता है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के अधिकतर किसान पाठ्य सामग्री हिंदी में चाहते हैं क्योंकि अंग्रेजी भाषा में उनका ज्ञान निम्नस्तर का होता है एवं कई किसान तो बिलकुल अनपढ़ हैं परंतु वे हिंदी जानते हैं।

अत: भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के युवा फल वैज्ञानिक डॉ. राम रोशन शर्मा द्वारा **'पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन'** विषय पर हिंदी में पुस्तक लिखने का प्रयास अति सराहनीय कार्य है। डॉ. शर्मा ने इस पुस्तक में सारी बिखरी जानकारी को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की है। इस पुस्तक को लिखने हेतु डॉ. शर्मा ने कई पुस्तकों, शोधग्रंथों, लोकप्रिय लेखों से सामग्री ली है एवं सारी जानकारी को सरलतम भाषा में लिखने की कोशिश की है। यह अति कठिन कार्य था जिसे डॉ. शर्मा

ने कड़ी मेहनत करके सरल किया है। अत: मैं डॉ. शर्मा को इस कोशिश के लिए बधाई देता हूं।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक किसानों, वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, विषय-विशेषज्ञों, प्रसार कर्मियों एवं छात्रों हेतु अत्यंत लाभकारी होगी।

एस. ए. पाटिल

डॉ. एस.ए.पाटिल
निदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-12

संपादकीय

धरती पर पौधों का होना मानव जाति के अस्तित्व के लिए अत्यावश्क है। ये जहां एक ओर मानव की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वही ये हमें ऑक्सीजन भी प्रदान करते हैं। मानव अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति से छेड़छाड़ करता आ रहा है। उसने अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगली फसलों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बनाकर उन्हें खेतों में उपजाना शुरू किया है। अत: फसलोत्पादन बढ़ाने में पादप प्रवर्धन का विशेष योगदान है।

उपरोक्त के मद्दे नजर डॉ. राम रोशन शर्मा ने जो कि भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली में उद्यान-विज्ञान विभाग में वरिष्ठ विज्ञान विशेषज्ञ हैं ने प्रस्तुत पुस्तक ''पादप प्रवंर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन'' तैयार की है। पुस्तक पौध प्रवर्धन तकनीक पर आधारित है।

पुस्तक की भाषा सरलतम, प्रवाहपूर्ण, और बोधगम्य है। इसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि यह पुस्तक स्नातक एवं स्नात्कोत्तर स्तर के छात्रों और सामान्य स्तर के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

अशोक एन. सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

लेखकीय

कृषि विज्ञान के अंतर्गत उद्यान विज्ञान की तीन शाखाएं जैसे फल विज्ञान, सब्जी विज्ञान एवं पुष्प विज्ञान आती हैं। इन्हीं के अंतर्गत औद्योगिक फसलों के बारे में शोध कार्य किए जाते हैं। हालांकि हमारे देश में औद्यानिक फसलों के अंतर्गत मसालों, आलू एवं खुंबी उत्पादन की तकनीक को भी जोड़ा जाता है। कुछ सब्जियों एवं पुष्पीय फसलों के नए पौधे तैयार करना बहुत आसान होता है। वहीं फलवृक्षों के पौधे तैयार करना बहुत कठिन होता है। फलवृक्षों के प्रवर्धन में सबसे कठिन पहलू यह है कि एक फलवृक्ष-विशेष के लिए मानकीकृत प्रवर्धन तकनीक अक्सर दूसरे फलवृक्ष के प्रवर्धन हेतु काम नहीं आती है। अत: इनके प्रवर्धन हेतु आए दिन शोधकार्य किए जा रहे है।

हमारे देश में सबसे बड़ी समस्या यह है कि लगभग 50,000 पौधशालाएं होने के बावजूद उच्च गुणता की पादप सामग्री का हमेशा अभाव रहता है। हमारे अधिकतर पौधशालाकर्मी अनपढ़ हैं और आए दिन शोधकार्यों का ज्ञान उन तक नहीं पहुंच पाता है क्योंकि अधिकतर पाठ्य-सामग्री अंग्रेजी में होती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग हर कृषि कॉलेज या विश्विद्यालय में पादप प्रवर्धन एवं प्रबंधन पर कोर्स पढ़ाया जाता है। उत्तरी भारत में कई ऐसे महाविद्यालयों में हिंदी में पठन-पाठन किया जाता हैं और हिंदी में पाठ्य-सामग्री का हमेशा अभाव रहता है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के अधिकतर किसान पाठ्य-सामग्री हिंदी में चाहते हैं क्योकि वे हिंदी जानते हैं। इन्हीं बातों के मद्देनजर 'पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन' विषय पर यह पुस्तिका लिखने की कोशिश की गई है। इस पुस्तक में सारी बिखरी जानकारी को एक सूत्र में पिराने की कोशिश की गई है। इस पुस्तक को लिखने के लिए कई पुस्तकों, शोधग्रंथों, लोकप्रिय लेखों से सामग्री ली गई है और सारी जानकारी को सरलतम भाषा में लिखने की कोशिश की गई है।

इस पुस्तक को लिखने में मेरे कई साथी वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, किसानों एवं विषम विशेषज्ञों ने सहायता की है। मैं उनका दिल से धन्यवाद करता हूँ।

मैं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार का आभारी हूं जिन्होंने यह जिम्मेदारी मुझे सौपी है।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक किसानों, वैज्ञानिकों, शोध कर्ताओं, विषय विशेषज्ञों, प्रसार कर्मियों एवं छात्रों में अत्यंत लोकप्रिय होगी।

डॉ. राम रोशन शर्मा

विषय सूची

क्र.स.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
	आमुख	iii
	प्राक्कथन	iv-v
	संपादकीय	vi
	लेखकीय	vii
	समन्वय तथा संपादन	x
	वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत	xi-xiii
	Principles for Evolution of Terminology Approved by the Standing Commission for Scientific and Technical Terminology	xvi-xvi
1.	जनन के प्रकार	1-4
2.	पादप संरचना	5-12
3.	प्रवर्धन माध्यम: गुण एवं प्रकार	13-16
4.	मृदा शोधन	17-18
5.	पादप प्रवर्धन में प्रयुक्त आवश्यक संरचनाएं	19-23
6.	लैंगिक प्रवर्धन: लाभ एवं सिद्धांत	24-31
7.	बीज की जीवनक्षमता एवं परीक्षण	32-36
8.	बीजों में प्रसुप्ति: प्रकार, कारण एवं समापन	37-41
9.	बीजोपचार: कब, क्यों और कैसे	42-44
10.	बीज बोआई	45-48
11.	हार्मोनी पाउडर, घोल एवं लेई	49-52
12.	पादप प्रवर्धन में रसायनों का प्रयोग	53-55
13.	पादप प्रवर्धन में प्लास्टिक का प्रयोग	56-58
14.	पौधशाला: महत्व, वर्गीकरण एवं रूपरेखा	59-65
15.	पौधशाला में नेमी कर्षण क्रियाएं	66-69

16. पौधशाला में पौद की देखभाल 70-77
17. पौद एवं पौध का विपणन 78-80
18. औजार, उपकरण एवं अन्य सहायक सामग्री 81-87
19. अलैंगिक अथवा कायिक प्रवर्धन: लाभ एवं सीमाएं 88-89
20. कायिक प्रवर्धन के सिद्धांत 90-99
21. असंगजनन: प्रकार एवं महत्व 100-103
22. कलम द्वारा प्रवर्धन: लाभ, सिद्धांत एवं कारक 104-112
23. कलम के प्रकार 113-116
24. दाबा द्वारा प्रवर्धन: लाभ, सीमाएं एवं विधियां 117-124
25. कलम-बंधन व कलिकायन से प्रवर्धन के सिद्धांत 125-127
26. कलमी मिलाप को प्रभावित करने वाले कारक 128-131
27. फलोत्पादन में मूलवृंत का महत्व 132-134
28. मूलवृंत एवं सांकुर संबंध 135-139
29. कलम-बंधन एवं कलिकायन में असंगतियां 140-144
30. कलिकायन द्वारा प्रवर्धन: लाभ एवं विधियां 145-149
31. कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धन: लाभ, सीमाएं एवं विधियां 150-159
32. विशेष कायिक भागों द्वारा प्रवर्धन 160-163
33. सूक्ष्म प्रवर्धन 164-167
34. फलवृक्षों के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां 168-199
35. सब्जियों, मसालों व बागानी फसलों के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां 200-203
36. पुष्पीय एवं शोभाकारी पौधों के प्रवर्धन की प्रमुख विधियां 204-213
(i) औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन से संबंधित कुछ छायाचित्र 214-218
(ii) संदर्भ साहित्य 219-220
(iii) हिंदी अंग्रेजी शब्दावली 221-231

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादक
प्रो. के. बिजय कुमार

संपादक
अशोक एन. सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

पुनरीक्षक
डॉ. मनीष श्रीवास्तव
वरिष्ठ वैज्ञानिक, फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110 012

भाषा संपादन
देवेंद्र नौटियाल
पूर्वसचिव, वै.त.श. अयोग

प्रकाशन
डॉ. पी.एन शुक्ल
सहायक निदेशक

श्री आलोक वाही
कलाकार

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :

   (क) तत्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;

   (ख) तौल और माप की इकाइयाँ तथा भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

   (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए है, जैसे मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ, गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फारेनहाइट तापमान (मि. फारेनहाइट) आदि;

   (घ) वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;

   (ड.) स्थिरांक, जैसे, g आदि;

   (च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि।

   (छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएंगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों से भी, विशेषत: साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे सेन्टीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे क, ख, ग, या अ, ब, स परंतु त्रिकोणीमितीय संबंधी में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे लाइन A कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत; अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्यिों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथसंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो:
   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और
   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसी देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण** : अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** : हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द** : पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा सुबोधता, उपयोगित और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** : कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहां तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित

संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है। परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** : नए अपनाए गए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** : पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

PRINCIPLES FOR EVOLUTION OF TERMINOLOGY APPROVED BY THE STANDING COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

1. 'International terms' should be adopted in their current English forms, as for as possible, and transliterated in Hindi and other languages according to their genius. The following should be taken as examples of international terms:

   a) Names of elements and compounds, e.g. Hydrogen, Carbon dioxide, etc.,

   b) Units of weights, measures and physical quantities, e.g. dyne, calorie, ampere, etc.,

   c) terms based on proper names e.g. marxism (Karl Marx), braille (Braille), boycott (Capt. Boycott), guillotine (Dr. Guillotion), gerrymander (Mr. Gerry), ampere (Mr. Ampere), fahrenheit scale (Mr. Fahrenheit), etc.,

   d) Binomial nomenctature in such sciences as Botany, Zoology, Geology, etc.,

   e) Constants, e.g., π g, etc.,

   g) Numerals, symbols, signs and formulae used in mathematics and other sciences e.g., sin. cos, tan, log etc., (Letters used in mathematical operation should be Roman or Greek alphabets).

2. The symbols will remain in international form written in Roman script, but abbreviations may be written in Dev Nagari and standardised form, specially for common weights and measures, e.g. the symbol 'cm' for centimetre will be used as such in Hindi, but the abbreviaiton in Dev nagari may be से.मी. This will apply to books for children and other popular works only, but in standard works of science and technology, the international symbols only, like cm., should be used.

3. Letters of Indian scripts may be used in geometrical figures e.g., क, ख, ग or अ, ब, स, but only letters of Roman and Greek alphabets should be used in trigonometrical relations e.g., sin A, cos B etc.

4. Conceptual terms should generally be translated.

5. In the selection of Hindi equivalents simplicity, precision of meaning and easy intelligibility should be borne in mind. Obscurantism and purism may be avoided.

6. The aim should be achieve maximum possible identity in all Indian languages by selecting terms:

   a) common to as many of the regional langauges as possible, and

   b) based on Sanskrit roots.

7. Indigenous terms, which have come into vogue in our languages for certain technical words of common use, such as तार for telegraph/ telegram, महाद्वीप for contient, डाक for post etc., should be retained.

8. Such loan words for English, Portugese, French, etc., as have gained wide currency in Indian languages should be retained e.g., ticket, signal, pension, police, bureau, restaurant, deluxe etc.

9. Transliteration of International tems into Devanagari Script-The transliteration of English terms should not be made so complex as to necessitate the introduction of new signs and symbols in the present Devanagari characters. The Devanagari rendering of English terms should aim at maximum approximation to the standard English pronunciaiton with such modifications as prevalent amongst the educated circle in India.

10. **Gender :** The International terms adopted in Hindi should be used in the masculine gender, unless there are compelling reasons to the contrary.

11. **Hybrid formation :** Hybrid forms in technical terminilogies e.g., गारंटित for guaranteed, क्लाकिसी for 'classical', कोडकार for 'codifier' etc., are normal and natural linguistic phenomeha and such form may be adopted in practice keeping in view the requirements for technical terminology, viz., simplicity, utility and precision.

12. **Sandhi and Samasa in technical terms :** Complex forms of Sandhi may be avoided and in cases of compound words, hyphen may be placed in between the two terms, becauses this would enable the users to have an easier and quicker grasp of the word structure of the new terms. As regards आदिवृद्धि in Sanskrit-based words, it would be desirable to use आदिवृद्धि in prevalent Sanskrit tatasama words e.g., प्यावहारिक, लाक्षणिक etc. but may be avoided in newly coined words.

13. **Halanta :** Newly adopted terms should be correctly rendered with the use of 'half' wherever necessary.

14. **Use of Pancham Varma :** The use of अनुस्वार may be preferred in place of पंचक वर्ण, but in words like 'lens', 'patent' etc., the transliteration should be लेन्स, पेटेन्ट and not लेंस, पेटेंट or पेटेण्ट

अध्याय-1

जनन के प्रकार

इस धरती पर पौधों का होना मानव जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक है क्योंकि पौधे जहां एक ओर मानव की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं वहीं वे ऑक्सीजन भी छोड़ते हैं जो मानव के जीवित रहने के लिए भी आवश्यक है। मानव अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सदियों से प्रकृति से छेड़छाड़ करता आ रहा है। यही कारण है कि उसने अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई जंगली फसलों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ढाला तथा प्रचलित जातियों में सुधार किया। मानव की घरेलूकरण की यह सारी प्रक्रिया धरी की धरी रह जाती यदि पौधों का प्रवर्धन नहीं होता। अत: मानव सभ्यता के विकास के साथ पौधों के प्रवर्धन की विभिन्न तकनीकों का भी विकास हुआ। साधारणत: सभी पौधे बीज या कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित किए जाते हैं। मानव ने अब प्रवर्धन की कई आधुनिक तकनीकें विकसित कर ली हैं।

प्रवर्धन सभी सजीव प्राणियों (पेड़-पौधों व जीव जंतुओं) की एक महत्वपूर्ण व मौलिक प्रक्रिया है जिससे वे अपनी ही तरह के नए प्राणी या पौधे तैयार करते हैं अर्थात् वंशानुगत श्रेणी की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को जन्म देती है। यही कारण है कि पौधों एवं प्राणियों के जीवन की कड़ी प्राचीन काल से लेकर आज तक जुड़ी हुई है। अत: पौध प्रवर्धन का मुख्य उद्देश्य मातृ पौधे द्वारा अपनी ही तरह की नई पीढ़ी को जन्म देना होता है एवं पौध प्रवर्धन का उपयोगी तरीका भी वही होता है जो मातृ पौधे जैसे समान गुणों वाले नए पौधे तैयार करे। आधुनिक प्रौद्योगिकी के युग में आए दिन नई किस्मों एवं संकरों का विकास हो रहा है। लेकिन यदि उनके दक्ष प्रवर्धन हेतु कोई विधि उपलब्ध न हो तो उनके विकसित या चयनित करने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। साधारणत: अधिकतर फलदार पौधे, लैंगिक (बीज) या अलैंगिक (कायिक) विधियों द्वारा ही प्रवर्धित किए जाते हैं।

प्रवर्धन विधि का चयन

किसी भी प्रवर्धन विधि का पहला उद्देश्य मातृ पौधे के समरूप नए पौधे तैयार करना ही होना चाहिए। अत: पादप प्रवर्धन की सफल विधि भी वही है जो मातृ पौधे के सभी वांछनीय गुणों को संतति में स्थानांतरित करे। यदि प्रवर्धन विधि ऐसा करने में असमर्थ

हो तो जहां तक संभव हो उस विधि द्वारा हमें पौधे तैयार नहीं करने चाहिए। आजकल के अधिकतर कृषीय औद्यानिक पौधों का जनन या चयन जंगली जातियों से कुल या कुदरती तौर पर हुए संकरण या उत्परिवर्तन के द्वारा हुआ है। अत: यदि इन चयनित जातियों के गुणों को वांछित विधियों द्वारा प्रवर्धित न किया जाए तो प्रजनकों द्वारा किए गए सारे के सारे वैज्ञानिक शोध एवं प्रयास बेकार चले जाएंगे। अत: औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन हेतु हमें जाति-विशेष या फसल-विशेष को ध्यान में रखकर प्रवर्धन विधि का चयन करना चाहिए।

साधारणत: प्रमुख सब्जियों एवं एकवर्षीय पुष्पीय पादपों को बीज द्वारा प्रवर्धित करने पर वे मातृ पौधे के वांछित गुणों को संजोए रखते हैं क्योंकि ये सभी स्व-परागित होते हैं। इनकी अपेक्षा अधिकतर फलवृक्षों के पौधे पर-परागित होते हैं और उन्हें बीज द्वारा प्रवर्धित कर उनकी संतति में मातृ पौधे से भिन्नता आ जाती है। अत: उनके प्रवर्धन हेतु मुख्यत: कायिक विधियों का प्रयोग करते हैं। प्रवर्धन विधि का विकल्प लगभग प्रत्येक जाति, किस्म आदि में आनुवंशिक विभिन्नता, जलवायु में विभिन्नता आदि के कारण भिन्न-भिन्न होता है। प्रमुख औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन विधियों की सूची निम्नलिखित है:

1. लैंगिक या बीज द्वारा प्रवर्धन

बीज द्वारा एकवर्षीय पुष्पों, अधिकतर सब्जियों, रोपणी फसलों, कई शोभाकारी झाड़ियों व वृक्षों, औषधीय फसलों एवं कुछ फलवृक्षों का प्रवर्धन किया जाता है।

2. अलैंगिक या कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन

1. असंगजात पौध द्वारा प्रवर्धन: आम, नींबू वर्गीय फल, सेब आदि।
2. कायिक संरचना द्वारा प्रवर्धन।

अ. कायिक अंगों के विभाजन द्वारा प्रवर्धन

तने के खंड: आलू, जेरूसलेम आर्टीचोक, क्लैडियम आदि।

कंदीय जड़ों के खंड: केना, हल्दी, डहेलिया, चुकंदर, बिगोनिया आदि।

प्रकंद के खंड: अदरक, केला, ब्लूबेरी, बांस, ऑक्सेलिस आदि।

ब. पृथकन द्वारा प्रवर्धन

शल्क कंद द्वारा: प्याज, डेफोडिल, ट्यूलिप, ट्यूबरोज, लिली, हाईसिंथ आदि।

घनकंद द्वारा: ग्लैडियोलस, फिरेसिया, क्रोकस आदि।

स. **अंत:भूस्तारी द्वारा:** अनन्नास, केला, गुलदाऊदी, रसभरी, ब्लैकबेरी आदि।

द. **उपरिभूस्तारी द्वारा:** स्ट्राबेरी।

ई. **भूस्तारी द्वारा:** दूब घास।

फ. **अन्य कायिक संरचनाओं द्वारा।**

बलबिल द्वारा: लिली आदि।

भूस्तारिका द्वारा: अनन्नास, केला, खजूर, ट्यूलिप, आइरिस आदि।

क्राउन द्वारा: स्ट्रॉबेरी, अनन्नास आदि।

3. **कलमों द्वारा प्रवर्धन**

अ. **तने की कलम**

सख्त काष्ठीय कलम: अंगूर, अंजीर, अनार, शहतूत, गुलाब आदि।

अर्ध सख्त काष्ठीय कलम: आम, अमरूद, केमेलिया, नींबू, कटहल आदि।

मृदु कलम: जूनीफर, लिलेक, अजेलिया आदि।

शाकीय कलम: गुलदाऊदी, डहेलिया, बिगोनिया, कोलियस, कार्नेशन आदि।

ब. **पत्ती कलम द्वारा:** सेंसबिया, बिगोनिया, ब्रायोफाइलम आदि।

स. **पत्ती कलिका कलम द्वारा:** ब्लैकबेरी, नींबू, केमेलिया आदि।

द. **जड़ कलम द्वारा:** ब्लैकबेरी, अंजीर, चेरी, सेब, नाशपाती आदि।

4. **दाबा द्वारा प्रवर्धन**

अ. **शीर्ष दाबा:** ब्लैकबेरी, रसभरी आदि।

ब. **साधारण दाबा:** आरोही लताएं, बोगेनविलिया, अंगूर, नींबू आदि।

स. **स्टूलिंग:** सेब के मूलवृंत, अमरूद, लीची आदि।

द. **सर्पिल दाबा:** क्लीमेटिस, अंगूर आदि।

ह. **खाई दाबा:** चेरी, सेब के मूलवृंत, अलूचा आदि।

स. **गूटी दाबा:** लीची, अमरूद, नींबू, रबड़ आदि।

5. **कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धन**

अ. **काशा कलम-बंधन:** कई फलवृक्ष।

ब. **जिह्वा कलम-बंधन:** एवोकेडो, सेब, नाशपाती, अलूचा आदि।

स. **विनियर कलम-बंधन:** आम, चीकू आदि।

द. **प्रांकुर कलम-बंधन:** आम।

झ. **मृदु शाख कलम-बंधन:** आम, चीकू, काजू आदि।

6. **कलिकायन द्वारा प्रवर्धन**

अ. **टी कलिकायन:** नींबूवर्गीय फल, बेर, आंवला, आड़ू, गुलाब आदि।

ब. **पैबंदी कलिकायन:** अखरोट, पीकननट आदि।

स. **चिप्पी कलिकायन:** आम, अंगूर आदि।

द. **छल्ला कलिकायन:** आड़ू, अलूचा, बेर, शहतूत आदि।

7. **सूक्ष्म संवर्धन द्वारा प्रवर्धन**

कई फलवृक्षों, सब्जियों एवं पुष्पी पादपों का प्रवर्धन सूक्ष्म संवर्धन द्वारा भी किया जाता है।

❐

अध्याय-2

पादप संरचना

पादप प्रवर्धन के व्यवसाय में चाहे वैज्ञानिक लगे हों या पौधशाकर्मी हों, उन्हें पौधे की संरचना का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि पादप प्रवर्धन की विभिन्न विधियों का पादप के विभिन्न अंगों या कार्यों से सीधा संबंध होता है। पौधों के मुख्य भाग जड़, तना, कलिकाएं, फूल, फल व बीज होते हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

जड़तंत्र

जड़ पौधे का प्रमुख व अत्यंत महत्वपूर्ण भाग होता है। जड़ें पौधों को जहां सीधा खड़ा रखने में सहायता करती हैं वहीं ये भूमि से पानी व पोषक तत्व एवं भोजन पदार्थ ग्रहण कर पौधे के अन्य भागों को पहुंचाती हैं। कई पौधों में ये भोजन संग्रहण के अंग के रूप में भी कार्य करती हैं। औद्यानिक पौधों में मुख्यत: दो प्रकार की जड़ें पाई जाती हैं, मूसला जड़ें व अपस्थानिक जड़ें। मूसला जड़ें सीधी बढ़वार करती हैं व जमीन के नीचे तक जाती हैं। यह मुख्यत: एक जड़ होती है व उसके बाद इससे पार्श्व शाखाएं (जड़ें) निकलती हैं। जड़ों की कोई मुख्य जड़ नहीं होती तथा ये जड़ें जमीन में गहरी नहीं जाती हैं। कई पौधों में मूसला जड़ें काफी गहरी जाती हैं (जैसे आम), और कई पौधों में बहुत गहरी नहीं जाती हैं क्योंकि इनमें मूसला जड़ के साथ कई पार्श्व शाखाएं भी निकल पड़ती हैं, जैसे सेब। एक बीजपत्री व द्विबीजपत्री फसलों में भी जड़तंत्र भिन्न-भिन्न होता है। अत: यह कहना उचित होगा कि पौधे विशेष में प्रवर्धन की विधि उसके जड़तंत्र द्वारा अवश्य प्रभावित होती है।

तना

तना, पौधे को ढांचा प्रदान करता है, जिस पर शाखाएं, टहनियां, पत्तियां, फूल और फल आते हैं। यह जड़ों और पत्तियों के बीच संवाहक का कार्य भी करता है। जड़तंत्र की तरह एक बीजपत्री एवं द्विबीजपत्री फसलों का तना भी भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणत: द्विबीजपत्री फसलों में 'जाएलम' व 'फ्लोएम' ऊतकों के बीच 'कैम्बियम' ऊतक की तह होती है व एक बीजपत्रीय फसलों के तनों में यह तह नहीं होती। पादप प्रवर्धन में 'कैम्बियम' का विशेष महत्व है क्योंकि इसी भाग से नए पौधों में जड़े निकलती हैं। एकबीजपत्री फसलों में 'कैम्बियम' न होने के कारण ही उनका प्रवर्धन कायिक विधियों से संभव नहीं हो पाता है।

कलिकाएं

कई पौधों की गांठों पर विशेष प्रकार की हल्की सरंचना बनती है, जिसे 'आंख' या 'कलिका' कहा जाता है। इन कलिकाओं को कई तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है। साधारणत: ये कलिकाएं पत्तियों के अक्ष में बनती हैं, अत: इन्हें 'कक्षीय कलिकाएं' कहा जाता है। हालांकि कई फलवृक्षों (जैसे आड़ू, तुंग आदि) में कक्षीय कलिकाएं नहीं बनती, अत: इन्हें 'अंधी कलिकाएं' कहा जाता है। कई बार एक स्थान विशेष पर 3-4 कलिकाएं तैयार हो जाती हैं। उनमें से एक कलिका अधिक वृद्धि करती है, जिसे 'मुख्य कलिका' कहा जाता है, व अन्य कम वृद्धि करती हैं, जिन्हें द्वितीयक कलिकाएं' कहा जाता है। कार्य के आधार पर कलिकाएं दो प्रकार की होती हैं: वानस्पतिक कलिकाएं व पुष्पीय कलिकाएं। इनसे क्रमश: पत्तियां व फूल तैयार होते हैं। वानस्पतिक कलिकाएं नुकीली व पुष्पीय कलिकाएं मोटी होती हैं। वृद्धि के आधार पर कलिकाएं या तो 'प्रसुप्त' होती हैं या 'गुप्त' होती हैं। इस प्रकार की कलिकाएं मुख्यत: शीतोष्णवर्गीय फलों में बनती हैं।

जलीय प्ररोह एवं अंत:भूस्तारी

कुछ सजावटी पौधों एवं फलवृक्षों में कुछ प्ररोह अन्य प्ररोहों की अपेक्षा बहुत तेजी से वृद्धि करते हैं। ऐसे प्ररोह मुख्य तने से न निकलकर पार्श्व शाखाओं से निकलते हैं। जो प्ररोह अपस्थानिक कलिका से निकलते हैं, उन्हें 'अंत:भूस्तारी' कहते हैं। कई फलवृक्षों, जैसे-ब्लैकबेरी, सेब के बौने मूलवृंत, अनन्नास एवं खजूर में अंत:भूस्तारी निकलते हैं, जिन्हें प्रवर्धन हेतु प्रयोग किया जाता है। कई पौधों में कई बार बहुत ओजस्वी प्ररोह निकलते हैं जिन्हें 'जलीय प्ररोह' कहते हैं। ये प्ररोह गुप्त कलिकाओं से निकलते हैं। ऐसे प्ररोह सामान्यत: सेब, नींबूवर्गीय फलों, गुलाब, अंगूर व गुलदाऊदी में निकलते हैं। जलीय प्ररोह को प्रवर्धन हेतु प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनसे जड़ें नहीं निकलती हैं।

पत्तियां

पत्तियों का पौधे हेतु विशेष महत्व है, क्योंकि पत्तियां पौधे के लिए भोजन तैयार करती हैं, जो पौधे की वृद्धि, पुष्पन व फलन हेतु आवश्यक होता है। विभिन्न औद्यानिक फसलों में कई प्रकार व रूप की पत्तियां आती हैं (रेखाचित्र - 1)। परंतु उनके कार्य एक जैसे ही हैं। कुछ पौधों में पत्तियां सदैव हरी रहती हैं। ऐसे पौधों को 'सदा हरित' पौधे कहते हैं। ऐसे पौधों में दो तरह की पत्तियां आती हैं, और उन्हें (1) चौड़ी पत्तीदार सदा हरित पेड़ (जैसे आम, लीची, अमरूद आदि) व (2) नुकीली पत्तीदार सदैव हरित पेड़ (जैसे चीड़, देवदार आदि) कहते हैं। कुछ पौधों की पत्तियां सर्दियों में पीली पड़कर झड़

जाती हैं। ऐसे पौधों को 'पर्णपाती' पौधे कहते हैं, जैसे सेब, नाशपाती, अंगूर, अंजीर, अखरोट आदि। पर्णपाती पौधों से जाड़े में कलम द्वारा प्रवर्धित करना काफी आसान व सस्ता साधन माना जाता है जबकि सदा हरित पौधों को साधारणत: कलम द्वारा प्रवर्धित करना काफी कठिन होता है।

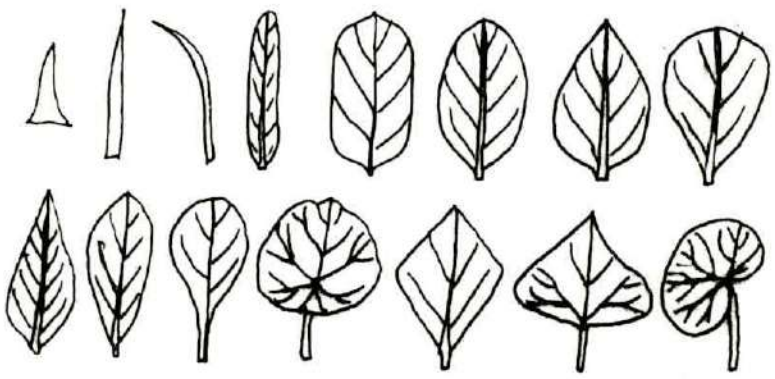

रेखाचित्र 1: औद्यानिक पौधों में पाए जाने वाली विभिन्न प्रकार की पत्तियां

पुष्प

किसी भी पौधे के प्रवर्धन में बीज की मुख्य भूमिका होती है, और बीज बनने के लिए पौधे में फूल आने चाहिए। अधिकतर पौधों में निश्चित वानस्पतिक वृद्धि के बाद जननात्मक वृद्धि होती है। जननात्मक वृद्धि फूल आने की क्रिया से आरंभ होती है।

वानस्पतिक व जननात्मक वृद्धि की अवस्था विभिन्न पौधों में भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरणत: एकवर्षीय पौधों (कुछ पुष्पीय पौधे एवं सब्जियां) में वानस्पतिक वृद्धि की अवधि बहुत कम (लगभग 3-4 महीने) होती है जबकि बहुवर्षीय पौधों (जैसे आम, कटहल, सेब, लोकाट आदि) में यह अवधि 4-5 वर्ष या उससे अधिक होती है।

पुष्प मुख्यत: पत्तियों के अक्ष या तने की चोटी पर अकेले या समूह में आते हैं। पुष्पों का आकार, रूप, रंग विभिन्न औद्यानिक पौधों में भिन्न-भिन्न होता है। पुष्प के मुख्यत: बाह्यदल, पंखुडियां, पुंकेसर व स्त्रीकेसर चार भाग होते हैं। जहां बाह्यदल पुष्प की रक्षा करता है, वहीं पंखुड़ियां कीटों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। कीटों द्वारा

पुंकेसर से परागकण, स्त्रीकेसर तक जाते हैं जहां निषेचित होकर फल व बीज का निर्माण करते हैं।

कुछ पौधों में पूर्ण पुष्प आते हैं व कुछेक में अपूर्ण पुष्प। पूर्ण पुष्प वे होते हैं, जिनमें 'पुंकेसर' व 'स्त्रीकेसर' दोनों हों। अपूर्ण पुष्प में इन दोनों में से कोई एक भाग नहीं होता। जिन फूलों में केवल स्त्रीकेसर हो व पुंकेसर नहीं, उन्हें 'स्त्रीकेसरी' पुष्प कहते हैं, तथा जिनमें केवल पुंकेसर हों, स्त्रीकेसर नहीं, उन्हें 'पुंकेसरी पुष्प' कहते हैं।

पौधों में पुष्प भी विभिन्न तरह से लगते हैं। उदाहरणत: कुछ पौधों में (जैसे, खजूर, पपीता, पिस्ता आदि) पुंकेसरी व स्त्रीकेसरी पुष्प अलग-अलग पौधों पर आते हैं, इन्हें 'एकलिंगाश्रयी' पौधे कहते हैं। कुछ पौधों (जैसे नारियल, अखरोट, कद्दूवर्गीय सब्जियां आदि) में पुंकेसरी व स्त्रीकेसरी पुष्प एक पौधे की विभिन्न जगहों पर आते हैं, उन्हें 'उभयलिंगायश्रयी' पौधे कहते हैं।

पुष्पक्रम

पौधे के तने के अक्ष पर पुष्पों के विन्यास को 'पुष्पक्रम' कहते हैं। पुष्पक्रम मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं: (1) असीमाक्षी (2) ससीमाक्षी। कभी-कभी कुछ पौधों में ये मिश्रित भी पाए जाते हैं (रेखाचित्र-2)।

अ. असीमाक्षी पुष्पक्रम

इस पुष्पक्रम में पुराने पुष्प आधार पर व नए पुष्प सबसे ऊपर होते हैं। ये पांच प्रकार के होते है:

1. **स्पाइक:** इस पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष लंबा होता है तथा पुष्प, पुष्पवृंत रहित होते हैं। यह केले, ग्लैडियोलस, कटहल, शहतूत, खजूर व अखरोट में पाया जाता है।
2. **असीमाक्षी:** इस पुष्पक्रम में पुष्प का मुख्य अक्ष तथा पुष्पों में पुष्पवृंत लंबा होता है। यह फूलगोभी, पत्तागोभी व जलकुंभी में पाया जाता है।
3. **समशिख:** इस पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष लंबा होता है और पुराने पुष्पों का पुष्पवृंत नए पुष्पवृंतों की अपेक्षा लंबा होता है। इस प्रकार के पुष्पक्रम चेरी, नाशपाती आदि में पाए जाते हैं।
4. **पुष्पछत्र:** इस पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष छोटा व गठीला होता है। पुष्पों के पुष्पवृंत भी छोटे-छोटे होते हैं। ये पुष्पक्रम प्याज, लहसुन व गाजर में पाए जाते हैं।
5. **हेड (शीर्ष):** इस प्रकार की पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष बहुत ही छोटे होते हैं और पुष्प पुष्पवृंत रहित होते हैं। कभी-कभी इस पुष्पवृंत को एक पुष्प ही समझा जाता है, परंतु

यह तो एक पुष्पक्रम होता है जिसमें असंख्य फूल होते हैं। ये सूर्यमुखी, सलाद, गुलदाऊदी आदि में पाए जाते हैं।

ब. ससीमाक्षी पुष्पक्रम

इस पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष की वृद्धि रुक जाती है, क्योंकि इसके अग्र भाग में पुष्प आ जाते हैं। इस पुष्पक्रम में सबसे दिलचस्प बात यह है कि सबसे बाद में खिलने वाला पुष्प मुख्य अक्ष की चोटी से सबसे अधिक दूरी पर होता है। ये तीन प्रकार के होते हैं -

1. **एकल:** कुछ पौधों के वृंतक पर केवल एक ही फूल आता है जैसे गुलाब की कुछ किस्में, ट्यूलिप, अमरूद, पोश्त आदि।
2. **पूलिका:** इस पुष्पक्रम में पुष्प वृंतक पर गुच्छे के रूप में आते हैं। उदाहरणत: सेब, फ्लोक्स आदि।
3. **गुच्छ:** इस पुष्पक्रम में पुष्प पूलिका से भी घने आते हैं। हालांकि इस पुष्पक्रम के मध्य में पुष्प पहले खिलते हैं और धीरे-धीरे बाद के। यह पुष्पक्रम डॉगवुड में पाया जाता है।

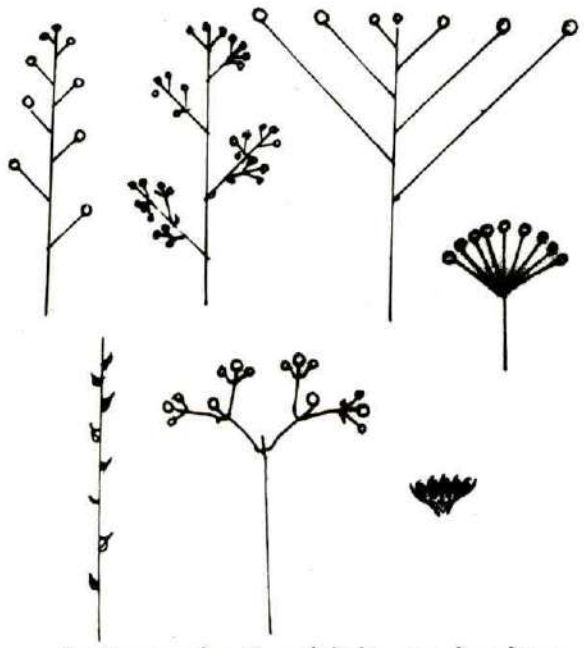

रेखाचित्र 2: औद्यानिक पौधों में पाए जाने वाले पुष्पक्रम

स. मिश्रित पुष्पक्रम

कुछ औद्यानिक फसलों में असीमाक्षी व ससीमाक्षी दोनों प्रकार के पुष्पक्रम पाए जाते हैं, जिन्हे मिश्रित पुष्पक्रम कहते हैं। मिश्रित पुष्पक्रम के कई प्रकार हैं, परंतु 'पुष्पगुच्छ' सबसे अधिक पाए जाने वाले पुष्पक्रम हैं। ये आम, अंगूर, लीची आदि में पाए जाते हैं।

परागण की क्रिया

परागकणों के परागकोषों से वर्तिकाग्र तक स्थानांतरण की क्रिया को 'परागण' कहते हैं। निषेचन व बीज बनने की क्रिया हेतु परागण आधारभूत प्रक्रिया मानी जाती है, क्योंकि यदि परागण ही नहीं होगा तो न तो निषेचन होगा और न ही बीज बनेगा। प्रभावी परागण के लिए जहां एक ओर परागकोष में पर्याप्त संख्या में परागकण होने चाहिए वहीं दूसरी ओर वर्तिकाग्र भी ग्राही होना चाहिए।

परागण क्रिया की आवश्यकता के आधार पर औद्यानिक फसलों को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है (1) स्वपरागी, एवं (2) पर-परागी। स्वपरागी वे फसलें होती हैं जिनमें परागकण एक ही फूल को स्वयं परागित करते हैं। परपरागी फसलों को परागण हेतु परागकण बाह्य कारक द्वारा पहुंचाए जाते हैं। साधारणत: अधिकतर औद्यानिक फसलें पर-परागी होती हैं। एकलिंगाश्रयी पौधों (जैसे, पपीता, खजूर आदि) व उभयलिंगाश्रयी पौधों (जैसे नारियल, अखरोट आदि) में पर-परागण कुदरती तौर पर होता है क्योंकि ऐसे पौधों में पुंकेसरी व स्त्रीकेसरी पुष्प अलग-अलग स्थानों एवं पुष्पों पर आते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पौधों में कुदरत ने भिन्नकाल-पक्वता (जैसे अखरोट, पीकन नट), स्व:बंध्यता (जैसे बादाम, प्याज, गेंदा आदि) एवं स्व-अनिषेच्यता जैसे आम, बेर, लोकाट, सेब, गोभी, लिली आदि कई आनुवंशिक गुण प्रदान किए हैं जिस कारण भी ऐसे पौधों में पर-परागण कुदरती तौर पर आवश्यक हो जाता है।

निषेचन

परागण की सफल क्रिया के बाद, परागकण पुष्प के वर्तिकाग्र पर अंकुरित होकर बीजांड तक पहुंचकर निषेचन की क्रिया को पूर्ण करते हैं। ये पराग नली के एक केंद्रकीय अंडे को निषेचित कर बीज के भ्रूण का निर्माण करते हैं व अन्य दो ध्रुवीय केंद्रकीय भ्रूणपोष बनाते हैं। इस सारी क्रिया को दोहरी निषेचन क्रिया कहते हैं। निषेचन की क्रिया के बाद फल तैयार होता है। निषेचन की क्रिया को कई कारक प्रभावित करते हैं।

फल

वानस्पतिक तौर पर परिपक्व बीजांडाशय को ही फल कहते हैं। हालांकि कई फलों में फल बनने की क्रिया में फूल के अन्य भाग भी हिस्सा लेते हैं। फलों के बनने हेतु

परागण की आवश्यकता होती है, परंतु कुछ फल बिना परागण के ही बन जाते हैं। ऐसे फल बीजरहित (जैसे केला, अनन्नास आदि) होते हैं। फलों में बीजांडाशय की संख्या के आधार पर उन्हें विभिन्न वर्गों में बांटा गया है। एक बीजांडाशय से तैयार होने वाले फलों को 'साधारण फल' कहते हैं। फलभित्ती की सरंचना के आधार पर साधारण फल दो प्रकार के होते हैं: गूदेदार व सूखे फल। जो फल पकने पर फट जाते हैं उन्हें स्फुटनशील, व जो नहीं फटते हैं उन्हें अस्फुटनशील फल कहते हैं। जो फल एक ही फूल व कई बीजांडाशयों से बनते हैं उन्हें 'पुंजफल' (जैसे स्ट्राबेरी) कहते हैं। जो फल कई फूलों के बीजांडाशयों से बनते हैं उन्हें 'संग्रथित' फल कहते हैं (जैसे अनन्नास, अंजीर व शहतूत आदि)। फलों के वानस्पतिक वर्गीकरण का ब्योरा सारणी- 1 में दिया गया है।

(अ) एकबीजपत्री (ब) द्विबीजपत्री

रेखाचित्र 3: आवृतबीजी पौधों के (अ) एकबीजपत्री (ब) द्विबीजपत्री पौधें

बीज

परिपक्व बीजांड को ही बीज कहा जाता है, जिसमें भ्रूण, भंडारण ऊतक (बीजपत्र व भ्रूणपोष) व बीजचोल होता है। कुछ पौधों में बीज ढके होते हैं, और वे दिखाई नहीं देते। ऐसे पौधों को 'आवृतबीजी पौधे' (ऐंजियोस्पर्म) कहते हैं, जैसे धान्य फसलें, लगभग सभी सब्जियां, फलवृक्ष व फूल आदि। अन्य में बीज ढके नहीं होते हैं और उन्हें नंगी आँखों से देखा जा सकता है। ऐसे पौधों को 'अनावृतबीजी पौधे' (जिम्नोस्पर्म) कहते हैं, जैसे चीड़, देवदार आदि। कुछ पौधों के बीज में एक ही बीजपत्र होता है, इन्हें 'एकबीजपत्री' पौधे कहते हैं। जिन पौधों के बीज में दो बीजपत्र होते हैं, उन्हें 'द्विबीजपत्री' पौधे कहते हैं (रेखाचित्र-3)। अधिकतर औद्यानिक फसलों (जैसे सब्जियां, पुष्प आदि) में बीज को ही मुख्यत: प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

सारणी- 1. वानस्पतिक आधार पर फलों का वर्गीकरण

साधारण फल			पुष्पपुंज फल	संग्रथित फल	सहायक फल
1. गूदेदार फल	2. सूखे फल		(स्ट्रॉबेरी, सीताफल आदि)	(अनन्नास, अंजीर आदि)	(ड्यूबेरी, ब्लैकबेरी आदि)
	स्फुटनशील फल	अस्फुटनशील फल			
अ. बेरी (केला, अंगूर, पपीता, टमाटर, शिमला मिर्च, बैंगन आदि)	अ. कैप्सूल (आइरिस, लिली, ग्लेडियोलस, पोस्त आदि)	अ. एकीन (सूर्यमुखी, बटरकप आदि)			
ब. हेस्परीडियम (संतरा, नींबू, चकोतरा आदि)	ब. फॉलिकल (गेंदा, पियोनी, निर्विषी आदि)	ब. कैरियोप्सिस (गेहूं, धान, मक्का, जौ एवं अनेक प्रकार की घासें आदि)			
स. पीपो (तरबूज, खरबूज, खीरा, कद्दू, सीताफल आदि)	स. सिलिकुआ (सरसों, स्टॉक, गोभी, मूली, शलजम आदि)	स. नट (दृढ़फल) (अकोर्न, पीकननट, अखरोट, हेजलनट ओक, काजू आदि)			
ड. पोम (सेब, नाशपाती, क्विंस, लोकाट आदि)	ड. फली (मटर, सभी प्रकार की बीनें आदि)	ड. समारा (मेपल, ऐश, एल्म, डाइ-ऑक्सीरिया आदि)			
द. अष्ठिल (आम, आडू, अलूचा, चेरी, बादाम आदि)		द. भिदुर फल (पार्सनिप, सेलेरी, मैलो, गाजर, पार्सले आदि)			

प्रवर्धन माध्यमः गुण एवं प्रकार

पौधशालाकर्मी के पास औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन हेतु कई प्रकार के अच्छे व आधुनिक माध्यम प्रचुर मात्रा में होने चाहिए। एक आदर्श माध्यम में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए :

1. माध्यम सघन व ठोस होना चाहिए ताकि उसमें लगाई जाने वाली कलमें या अंकुरण के समय बीज एक ही अवस्था में बने रहें।
2. गीला करने या सुखाने पर भी आदर्श माध्यम का आयतन एक समान रहना चाहिए।
3. इसमें आवश्यकतानुसार जल ग्रहण व निकास की क्षमता होनी चाहिए।
4. माध्यम का पी.एच मान 5.5-7.0 के बीच होना चाहिए ताकि उसमें सभी प्रकार की पौद को लगाया जा सके।
5. यह कवकों, कीटों और खरपतवारों के बीजों से रहित होना चाहिए।
6. इसमें पोषक तत्व भरपूर मात्रा में होने चाहिए ताकि वे बीजों के अंकुरण एवं कलमों में मूलन उत्प्रेरित कर सकें।
7. यह भाप या रसायनों से पाश्चुरीकरण के उपयुक्त होना चाहिए।
8. इसमें लवणों की मात्रा कम से कम हो।

प्रवर्धन माध्यम के चयन हेतु मानक

किसी प्रवर्धन माध्यम के प्रयोग या चयन करने से पहले पौधशालाकर्मी को निम्नलिखित बातों पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए:

1. जहां तक संभव हो, प्रवर्धन माध्यम हेतु स्थानीय सामग्री का ही चयन करना चाहिए।
2. खरीदने से पहले माध्यम की गुणता की जांच अवश्य कर लें।
3. माध्यम के चयन से पहले किसी तकनीकी विशेषज्ञ को, जो पौधशाला के व्यवसाय से जुड़ा हो, सलाह अवश्य लेनी चाहिए।

4. चयनित माध्यम में उचित सरंध्रता एवं आदर्श पी.एच मान (5.6 से 6.5) होना चाहिए।
5. चयनित माध्यम दूसरे माध्यम में आसानी से मिलाया जा सकता हो।

प्रमुख प्रवर्धन माध्यम

भारत में पौधशालाओं में प्रयुक्त होने वाले मुख्य प्रवर्धन माध्यमों के गुणों की संक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही है -

अ. मिट्टी: प्रवर्धन हेतु मिट्टी सर्वोचित एवं अधिकाधिक प्रयुक्त होने वाला माध्यम है। मृदा के चयन में इसके भौतिक गुणों को ध्यान में रखना चाहिए। मृदा का गठन उसका मुख्य भौतिक गुण है, जो बीजांकुरण या दाबा या कलम के मूलन को प्रभावित करता है। यह गुण, मृदा में बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका के अंश के आधार पर निर्भर करता है। ऐसी मृदा जिसमें इनकी मात्रा क्रमशः 40 प्रतिशत, 40 प्रतिशत व 20 प्रतिशत हो, बहुत से बीजों के अंकुरण हेतु सर्वोत्तम मानी गई है। साधारणतः जीवांशयुक्त, बलुई दोमट मिट्टी, जिसका पी.एच मान 5.5 से 7.0 के बीच हो तथा उसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, व्यावसायिक पौधशाला के लिए ठीक रहती है। भारी, कंकरीली, चिकनी, ऊसर भूमि पौधशाला के लिए ठीक नहीं रहती।

ब. रेत या बालू : नदियों से प्राप्त बालू (रेत) का प्रयोग भी पौधशाला में अधिकाधिक किया जाता है। बालू को अधिकतर दूसरे माध्यमों के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है। अक्सर बीज की क्यारियों के ऊपर इसकी एक पतली तह बिछा दी जाती है जो बीजांकुरण में सहायता करती है। प्रायः यह देखा गया है कि बालू का प्रयोग करने से जड़ें निकलने में सुगमता रहती है। बालू में कोई पोषक तत्व नहीं होता है। अतः कलमों में जड़ें निकलते ही या बीजों के स्तरण के बाद माध्यम बदल देना चाहिए, क्योंकि बालू में कवक या कीट हो सकते हैं, अतः इसे प्रयोग से पहले इसे साफ करके हमेशा 'फॉर्मेलिन' या ऊष्मा से उपचारित कर लेना चाहिए।

स. सेवार (मॉस): सेवार (मॉस) अक्सर पहाड़ी स्थानों में बरसात में उगने वाला पौधा है जिसे सुखाकर प्रयोग करते हैं। इसे मुख्यतः गूटी बांधने, कलमों को कुछ समय के लिए भंडारित करने व दूर-दराज के क्षेत्रों में भेजने के लिए किया जाता है। प्रयोग से पहले इसे अच्छी तरह साफ करके पानी में भिगो लेना चाहिए। मॉस काफी हल्की होती है तथा इसमें पानी ग्रहण करने की क्षमता भी अच्छी होती है। इसका पी.एच मान 3.5 से 4.0 के बीच अम्लीय होता है।

द. वर्मिकुलाइट: यह एक अभ्रकी खनिज है, जो गर्म होने पर काफी हल्का हो जाता है। रासायनिक तौर पर यह जलयोजित मैग्नीशियम ऐल्युमिनियम आयरन सिलीकेट है जो पानी में अघुलनशील होता है। परंतु इसमें पानी ग्रहण करने की क्षमता अच्छी होती है। इसमें मैग्नीशियम व पोटेशियम प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। दानों के आकार के आधार पर औद्यानिक वर्मिकुलाइट को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। यही कारण है कि बाजार में इसके चार व्यावसायिक ग्रेड उपलब्ध हैं। परंतु पौधशाला में अच्छी सफलता के लिए औद्योगिक ग्रेड-2 ही अच्छा रहता है। विदेशों में इसका प्रयोग अधिक होता है।

च. पत्तियों की खाद (लीफ मोल्ड): पौधों की पत्तियों की सड़ी खाद का प्रयोग भी प्रवर्धन के लिए व्यापक तौर पर होता है। लीफ मोल्ड बनाने के लिए पौधों की गिरी हुई पत्तियों को गड्ढों में डालकर उनके ऊपर यूरिया छिड़क कर सिंचाई कर देते हैं। लगभग एक वर्ष बाद लीफ मोल्ड अच्छी तरह सड़कर तैयार हो जाती है। लीफ मोल्ड में सूत्रकृमियों, कवकों या हानिकारक कीटों का हमेशा भय रहता है। अत: प्रयोग से पहले इसे निर्जर्मित कर लेना चाहिए। लीफ मोल्ड के साथ कभी-कभी उर्वरक, गोबर खाद आदि भी मिला लिए जाते हैं।

छ. पर्लाइट: यह एक हल्के भूरे रंग का खनिज है जिसे कूटकर भट्टियों में 760 सेल्सियस तापमान पर तापित किया जाता है जिसके फलस्वरूप यह निर्जम पदार्थ हल्के पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसका पीएच. मान 6 से 8 व जल-धारिता काफी अधिक होती है। बाजार में इसके कई ग्रेड उपलब्ध होते हैं। पर्लाइट का प्रयोग अन्य माध्यमों को मिलाकर यौगिक या मिश्रण के रूप में किया जाता है। इसमें भी पानी धारण करने की अच्छी क्षमता होती है। इसमें कोई पोषक तत्व नहीं होता परंतु यदि इसे पीट मॉस के साथ प्रयोग किया जाए तो यह कलमों में मूलन हेतु सबसे अच्छा माध्यम है।

ज. पीट: यह जलीय तथा दलदल में उगने वाले पौधों के अपघटन से प्राप्त अवशेष है जिसका संघटन वहां पर मौजूद वनस्पतियों और अपघटन की अवस्था पर निर्भर करता है। इसका पीएच. मान प्राय: अम्लीय होता है। इसमें जल धारण करने की अच्छी क्षमता होती है। प्रयोग से पहले इसे अच्छी तरह पानी से नम कर लेना चाहिए। पीट को अन्य माध्यमों के साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में इस प्रवर्धन माध्यम का प्रयोग मुख्यतौर पर होता है।

झ. झांवा: इस माध्यम का प्रयोग अकेले या अन्य माध्यमों को साथ मिलाकर कई विकसित देशों में किया जाता है। इसमें मुख्यत: सिलिका एवं ऐल्युमिनियम ऑक्साइड पाए जाते हैं और यही कारण है कि इसमें कैल्सियम, सोडियम, मैग्नीशियम आदि ऑक्साइड के रूप में होते हैं। बाजार में इसके कई औद्योगिक ग्रेड उपलब्ध हैं। अन्य माध्यमों में मिलाने पर यह उन माध्यमों के जल निकास व वातन में सहायता करता है।

प. कंपोस्ट: कंपोस्ट को कई अपशिष्ट कार्बनिक पदार्थों को विशेष पात्र में सड़ाकर तैयार किया जाता है। इसकी जलधारिता शक्ति बहुत अच्छी होती है और यह पोषक तत्वों से भी भरपूर होती है। इसे मुख्यत: मिट्टी के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है। कंपोस्ट के गड्ढ़ों में कई जीवाणु, फफूंदी, कटुआ कीट, भृंग आदि होते हैं। अत: प्रयोग से पहले इसे पाश्चुरीकृत कर लेना ठीक रहता है।

फ. मिट्टी के मिश्रण: मिट्टी के कई प्रकार के मिश्रणों का प्रयोग प्रवर्धन माध्यम के रूप में किया जाता है। ऐसे माध्यम, बालू, मृत्तिका एवं लीफ मोल्ड आदि को विभिन्न अनुपात में मिलाकर तैयार किए जाते हैं। हालांकि वही मिश्रण ठीक माने जाते हैं जो सरंध्र हों और उनकी जल धारिता क्षमता भी अच्छी हो।

व. प्लास्टिक के पुंज: यूरोप के कुछ देशों में बालू व पर्लाइट के बजाए प्लास्टिक के पुंज का प्रयोग प्रवर्धन माध्यम के रूप में किया जाता है। इसी का एक रूप यूरिया फोम भी है जो एक स्पंजी संरचना होती है। इसकी जलधारिता क्षमता अति उत्तम होती है तथा इसमें नाइट्रोजन भरपूर मात्रा में पाई जाती है।

भ. लकड़ी की छीलन व बुरादा: लकड़ी की छीलन व बुरादे को अन्य माध्यमों में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। कम कीमत, भार में हल्का व आसानी से उपलब्ध होने के कारण, इसका प्रयोग पात्रे उत्पादित पौधों में किया जाता है। इनमें पोषक तत्व न के बराबर होते हैं। अत: ऐसे माध्यम में कई अतिरिक्त पोषक तत्व डालने पड़ते हैं। ऐसे माध्यम में कई हानिकारक पदार्थ, जैसे फिनोल, रेजिन एवं टैनिन आदि होते हैं। अत: प्रयोग से पहले इसे अच्छी तरह सड़ा लेना चाहिए।

म. कोकोपीट: हमारे देश में इस माध्यम का प्रयोग अब बड़े स्तर पर हो रहा है। इसे नारियल के अवशेषों को सड़ाकर तैयार किया जाता है। इसमें वातन बहुत ही अच्छा (20-30 प्रतिशत) होता है एवं कण बहुत महीन होते हैं। अत: यह बहुत-से बीजों के अंकुरण एवं कलमों में मूलन हेतु अति आदर्श प्रवर्धन माध्यम माना गया है। इसके अतिरिक्त इसमें पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं व इसे आसानी से दूसरे माध्यमों में भी मिलाया जा सकता है।

❐

मृदा शोधन

अक्सर यह देखा गया है कि पौधशाला के लिए प्रयोग की जाने वाली मृदा में विभिन्न प्रकार के खरपतवारों के बीज, विभिन्न प्रकार के कवक, जीवाणु एवं सूत्रकृमि आदि के होने की अधिकाधिक संभावना रहती है। प्राय: यह देखा गया है कि बीज प्रवर्धन द्वारा तैयार पौध में आर्द्रपतन रोग आधिकाधिक लगता है जो मुख्यत: विभिन्न प्रकार के कवकों द्वारा फैलाया जाता है। अत: इन समस्याओं से बचने के लिए पौधशाला का काम शुरू करने से पहले ही मृदा का शोधन कर लेना चाहिए। मृदा शोधन निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है:

(क) ऊष्मीय उपचार

इस विधि में मिट्टी को उच्च तापमान पर अवन में निश्चित समय तक उपचारित किया जाता है। इसके अतिरिक्त भाप द्वारा भी मिट्टी का उपचार किया जा सकता है। परंतु मिट्टी को उच्च तापमान पर उपचारित करने से कभी-कभी लाभदायक जीवाणुओं के मरने की संभावना रहती है। अत: मृदा शोधन हेतु तापमान 60 सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए।

ख. रसायनों का उपयोग

कुछ रसायनों के उपयोग से भी मृदा का शोधन किया जाता है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

1. फार्मेल्डिहाइड

फार्मेल्डिहाइड मिट्टी शोधन के लिए सबसे उपयोगी रसायन है। इस रसायन द्वारा धूमित करके मिट्टी में मौजूद कवक व खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं। 5 लीटर फॉर्मेलिन को 250 लीटर पानी में मिलाकर 500 वर्ग फुट की मिट्टी को शोधित किया जा सकता है। शोधन के बाद मिट्टी को 24 घंटे तक पॉलिथीन से ढक देना चाहिए। इसके 8-10 दिनों तक खुला छोड़ने के बाद जब मिट्टी से इसकी गंध खत्म हो जाए तभी इस शोधित मिट्टी का प्रयोग बीज बोने या पौधे लगाने हेतु करना चाहिए। इस रसायन का प्रयोग अन्य प्रवर्धन माध्यमों, जैसे पीट, बालू आदि के लिए भी किया जाा सकता है।

2. अश्रुगैस

अश्रु गैस (क्लोरोपिक्रिन) भी भूमि शोधन करने के लिए बेहुत अच्छी पाई गई है। शोधन के लिए द्रवरूपी गैस को 7-10 सेमी. गहराई तक 20 से 25 सेमी. की दूरी पर बनाए गए छिद्रों में पिचकारी द्वारा प्रविष्ट किया जाता है जहां पर यह गैस रूप में परिवर्तित होकर भूमि को शोधित करती है। प्रयोग के बाद भूमि को पॉलिथीन से ढ़क देना चाहिए। शोधित मिट्टी को 15-20 दिनों के बाद ही प्रयोग करना चाहिए। यह गैस मृदा में व्याप्त फफूंदियों, सूत्रकृमियों, जीवाणुओं आदि को नष्ट कर देती है।

3. मेथिल ब्रोमाइड

उपरोक्त दोनों रासायनों में मेथिल ब्रोमाइड का प्रयोग महंगा व कठिन होता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव जहरीला भी होता है। अत: इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए। प्रयोगों से पता चलता है कि 10 मिली. मेथिल ब्रोमाइड एक घन मीटर मिट्टी के शोधन हेतु पर्याप्त होता है। इस रसायन को दवाब द्वारा मिट्टी में प्रविष्ट करवाया जाता है जो लगभग 48-50 घंटों में मिट्टी को शोधित कर देता है। यह सभी प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करता है।

इन रसायनों के अतिरिक्त डी.डी. मिश्रण, क्लोरोपिक्रिन एवं मेथिल ब्रोमाइड़ व अश्रुगैस के मिश्रण को मिट्टी के शोधन हेतु प्रयोग किया जाता है। इन्हीं रसायनों से मिट्टी के अतिरिक्त प्रवर्धन हेतु प्रयोग होने वाले औजारों व बर्तनों को भी उपचारित किया जाता है।

❐

अध्याय-5

पादप प्रवर्धन में प्रयुक्त आवश्यक संरचनाएं

विभिन्न औद्यानिक पौधों की प्रकाश, जल, तापमान, हवा और पोषक तत्वों के लिए भिन्न-भिन्न आवश्यकताएं होती हैं। यदि उनके प्रवर्धन में हमें सफलता प्राप्त करनी है तो इन सभी आवश्यकताओं को नियंत्रित करके उन्हें पौधशाला में उपलब्ध भी करवाना होता है। अत: पादप प्रवर्धन में उच्च दर्जे की सफलता के लिए आजकल की आधुनिक पौधशाला में विभिन्न प्रकार की पादप प्रवर्धन संरचनाओं का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की विभिन्न संरचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

1. हरित गृह

हरित गृह को मुख्यत: ग्रीन हाउस कहते हैं। इसका उपयोग पौधशालाकर्मी पादप प्रवर्धन के कई कार्यों में कर सकते हैं। परंतु मुख्यत: इसका उपयोग पौधों के मुलायम भाग की कलम द्वारा प्रवर्धन और गूटी या स्टूलिंग द्वारा परिवर्धित पौधों को उचित वातावरण प्रदान करने हेतु किया जाता है। ग्रीन हाउस पौधशाला के आकार एवं पौधशाला से प्राप्त आमदनी पर निर्भर करता है। साधारण प्रकार के हरित गृह में कंकरीट और सीमेन्ट की चारदीवारी पर लोहे के खंभे द्वारा संरचना बनाकर गैल्वेनाइज्ड लोहे अथवा प्लास्टिक के तारों की जाली का घरनुमा जाल विछा दिया जाता है। इस प्रकार से बने घर के अंदर सिंचाई के लिए नलों की व्यवस्था की जाती है। आदर्श पौधघरों में 'मिस्ट' (कुहासा) सिंचाई की भी व्यवस्था की जाती है। पौधशाला के लिए प्रयुक्त हरित गृह बड़े वृक्षों, मकान एवं अन्य बड़ी संरचनाओं से दूर होना चाहिए। आधुनिक हरित गृह की छत अधिकतर फाइबर के शीशे की बनी होती है तथा इसमें तापमान, आर्द्रता व प्रकाश को नियंत्रित करने हेतु सारे उपकरण लगे होते हैं। ऐसे पौधघरों को बनाने में काफी अधिक लागत आती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने 'कम कीमत' वाले ग्रीन हाउस का विकास किया है जिसे किसान आसानी से व कम पैसे से बनवा सकते हैं। ऐसे हरित गृह को 0.10 से 0.15 मिमी. मोटाई की पॉलिथीन से ढकते हैं और ढांचों को मुख्यत: बांस या स्थानीय उपलब्ध सामग्री से तैयार किया जाता है।

2. कांच गृह

कई देशों में पौधशाला में कांच घर का प्रयोग किया जाता है। कांच घर का उपयोग

बीजों के अंकुरण, कलम द्वारा प्रवर्धन व नए पौधों के अनुकूलन हेतु किया जाता है। कांच घर का निर्माण कई बातों पर निर्भर करता है। परंतु यह मुख्यत: पौधशाला के आकार, पौधशालाकर्मी की आवश्यकता एवं लागत पर निर्भर करता है। साधारणत: इसकी 1-1.5 मीटर मोटी दीवार सीमेंट और कंकरीट से बनाई जाती है। दीवार के ऊपर, उचित दूरी पर लोहे के खंभे लगाए जाते हैं जिन पर लोहे से आयताकार ढ़ांचा तैयार करके कांच लगाई जाती है। आधुनिक कांच के घरों में तापमान व आर्द्रता पर पूरा नियंत्रण होता है जिसके लिए ताप एवं आर्द्रता नियंत्रक लगाए जाते हैं। शुद्ध हवा के लिए निष्कासन पंखों एवं खिड़कियों का प्रबंध भी होता है। ठंडे क्षेत्रों में गर्म पानी की व्यवस्था के लिए बिजली से संचालित तापक का प्रयोग किया जाता है। घरों के अंदर नमी बनाने हेतु कुहासे का प्रबंध आवश्यक होता है।

3. प्लास्टिक गृह

प्लास्टिक गृह छोटी-छोटी पौधशालाओं के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं और यही कारण है कि आजकल इनका प्रचलन मुख्य तौर से बीज बोने या फलदार पौधों के प्रवर्धन हेतु काफी तेजी से बढ़ रहा है। प्लास्टिक गृह बनाने हेतु 750 गेज की मोटी पॉलिथीन का प्रयोग किया जाता है। यह प्लास्टिक बांस के डंडों से बने पंडाल के ऊपर बिछा दी जाती है। ध्यान रखने योग्य बात है कि ऐसे घरों में दिन का तापमान व रात को आर्द्रता बढ़ने की संभावना रहती है। अत: ऐसे घरों को आंशिक छायादार स्थान पर बनाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिन में प्लास्टिक के दोनों किनारों को थोड़ी देर के लिए खोल देना चाहिए और अपराह्न चार बजे के आस-पास बंद कर देना चाहिए ताकि पौधों को दिन के झुलसाने वाले तापमान से बचाया जा सके और रात्रि का तापमान भी कम न हो सके। ऐसे गृहों को 3-4 वर्ष तक प्रयोग किया जा सकता है। बाद में इनकी पॉलिथीन को बदलना पड़ता है क्योंकि ये फट जाती है। ऐसे गृहों का प्रयोग शाकीय एवं कोमल पौधों के प्रवर्धन, बीज बोने एवं पौधों के कठोरीकरण हेतु किया जा सकता है।

4. कुहासा गृह (मिस्ट हाउस)

बहुत-से विकसित देशों में आधुनिक पौधशाला में सापेक्ष आर्द्रता बनाए रखने हेतु कुहासा गृहों की व्यवस्था की जाती है। जैसे ही पौधों की पत्तियों से पानी सूख जाए, कुहासों द्वारा पानी का छिड़काव शुरू हो जाना चाहिए। अत: कुहासे में अंतराल टाइमर की व्यवस्था होती है जो प्राय: 30-45 मिनट के अंतराल पर 5-10 सेकंड के लिए पानी का छिड़काव करता है और बाद में बंद हो जाता है। सतत कोहासे में पानी का छिड़काव लगातार होता रहता है, परंतु सविराम कोहसे में एक निश्चित समय में पानी का छिड़काव होता है।

5. गर्म क्यारी

विदेशों में शीतोष्णवर्गीय फलवृक्षों के प्रवर्धन हेतु गर्म क्यारी के प्रयोग का प्रचलन है। इसकी उपयोगिता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। यह शीतोष्णवर्गीय फलों के प्रवर्धन हेतु अत्यंत लाभदायक है। गर्म क्यारी का प्रयोग मुख्यत: शीतोष्ण फलों की कलमों में जड़ें प्रेरित करने हेतु किया जाता है। गर्म क्यारी बनाने के लिए सबसे पहले कच्चे गोबर की मोटी तह बिछा दी जाती है, जिसके ऊपर 20-25 सेमी. मोटी मिट्टी या कोई अन्य मिश्रण फैला दिया जाता है। क्यारी के चारों ओर नल द्वारा गर्म पानी या गर्म हवा प्रवाहित करके क्यारी का तापमान बढ़ाया जाता है। आजकल ऐसी क्यारियों में तापक का प्रयोग भी किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त क्यारी के नीचे बिजली के तार द्वारा बनी जाली का उपयोग किया जाता है। क्यारी को ऊंचे स्थान पर बनाया जाता है और अब गोबर के स्थान पर बजरी और कंकरीट का प्रयोग होता है।

6. ठंडी क्यारी (फ्रेम)

ठंडी क्यारी (फ्रेम) की बनावट लगभग गर्म क्यारी-जैसी ही होती है, परंतु इसमें ताप हेतु कोई व्यवस्था नहीं होती । ऐसी क्यारी में सूर्य की कुदरती ऊष्मा का प्रयोग किया जाता है। अत: ऐसी फ्रेम बनाने हेतु वैसे तो सामान्य कांच (0.9 1.8 मी.) का प्रयोग करते हैं, परंतु पॉलिथीन या फाइबर कांच का प्रयोग भी कर सकते हैं। (रेखांचित्र-4)। ऐसी फ्रेम बनाने हेतु सबसे पहले लकड़ी का ढांचा बनाया जाता है व उसी के ऊपर कांच या पॉलिथीन का ढक्कन लगाया जाता है। ऐसी फ्रेम का प्रयोग जड़युक्त कलमों के कठोरीकरण एवं शाकीय पौधों के मृदुकाष्ठ कलमों के प्रवर्धन हेतु किया जा सकता है।

7. लैथ गृह

ऐसे गृह हरित गृह, गर्म क्यारी व ठंडी फ्रेम के मध्यस्थ का काम करते हैं, क्योंकि ये पौधों को अधिकाधिक गर्मी, रोशनी व सर्दी से बचाने हेतु प्रयोग किए जाते हैं। ये गृह पौधों से वाष्पोत्सर्जन की क्रिया को कम करने में सहायता करते हैं। अत: ये मृदु पौध या पात्रे उत्पादित शाकीय पौधों को कठोर गर्मी व सर्दी से बचाते हैं। ऐसे गृह का ढांचा ऐल्युमिनियम या लकड़ी से तैयार किया जाता है। छाया हेतु बुनी हुई प्लास्टिक प्रयोग की जाती है तथा गर्मियों में फुहारे लगाए जाते हैं।

8. जालीय गृह

जालीय गृह आधुनिक पौधशाला का अभिन्न अंग है। इसका प्रयोग उन स्थानों पर अधिक किया जाता है जहां बाहरी गर्मी की आवश्यकता नहीं होती है और बनावटी ठंडक

प्रदान करना महंगा होता है। इन क्षेत्रों में ऐसे गृह बनाए जाते हैं जिनकी छतें जालीदार होती हैं। जालीदार होने के कारण पौधों को कुछ छाया तो मिलती ही है साथ में हवा व रोशनी भी सुचारु रूप से मिलती है। जालीय गृह का आकार, आवश्यकतानुसार बड़ा या छोटा हो सकता है।

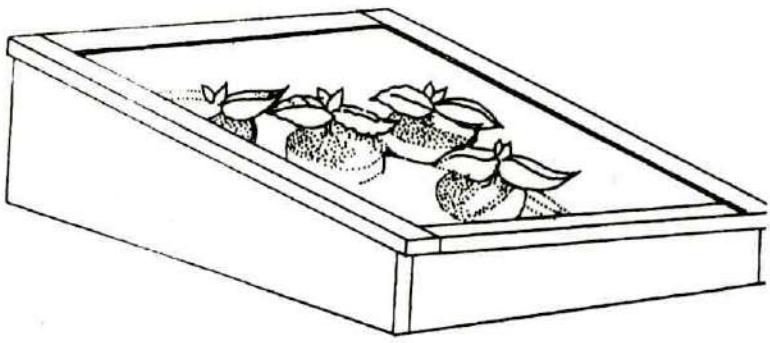

रेखाचित्र 4: ठण्डी क्यारी में उगते पौधे

9. प्लास्टिक टनल

प्लास्टिक टनल का सर्वप्रथम उपयोग इंग्लैंड में शुरू हुआ। ऐसी टनल को लोहे की तार (0.2 इंच व्यास) के सहारे तैयार किया जाता है, जिस पर पॉलिथीन की सफेद चादर (रेखाचित्र-5) चढ़ाई जाती है। ऐसी टनल के अंदर मृदा में बीज की बोआई या अन्य प्रवर्धन-सामग्री को सर्दियों में बोया जाता है। हवा के लिए कभी-कभी इनमें छिद्र भी किए जाते हैं।

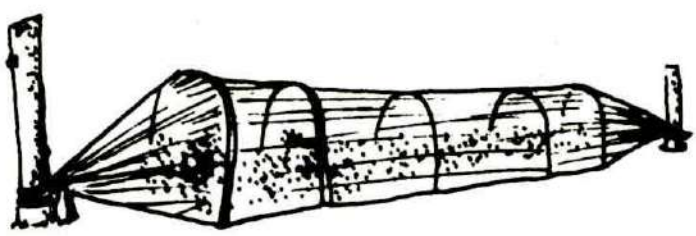

रेखाचित्र 5: पॉलीटनल

10. प्रवर्धनी यूनिट

विदेशों में कई पौधशालाकर्मी प्रवर्धनी यूनिट का प्रयोग करते हैं। ये यूनिट वैसे तो कई प्रकार के होते हैं परंतु साधारणत: यह एक प्रकार की प्लास्टिक की ट्रे होती है (रेखाचित्र-6) जिसमें बीज बोए जाते हैं। इनमें हवा व रोशनी के लिए छिद्र भी होते हैं। इनके ऊपर कांच या प्लास्टिक का ढक्कन भी होता है। अब ऐसे यूनिट भी तैयार किए जाते हैं जिनमें ऊष्मा, आर्द्रता आदि को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

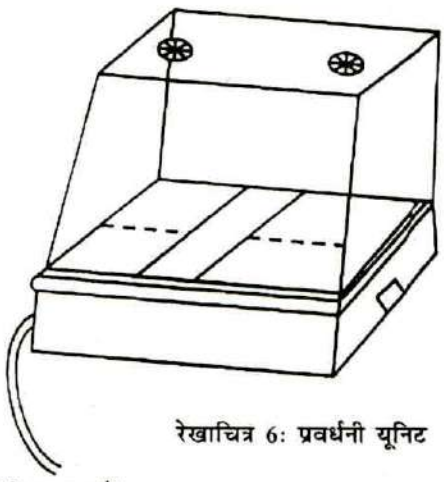

रेखाचित्र 6: प्रवर्धनी यूनिट

11. प्रवर्धनी ताप चैंबर

यह एक साधारण सा चैंबर होता है जिसका प्रयोग उन फलों की कलमों द्वारा प्रवर्धन हेतु किया है जिनमें मूलन की समस्या होती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने फलों के प्रवर्धन हेतु पेंदी ताप (बॉटम हीट) चैम्बर के प्रयोग का अनुमोदन किया है। इसमें दो जस्तेदार चादरों द्वारा एक आयताकार आकार का चैम्बर बना लिया जाता है। बाहरी चद्दर की लंबाई 70 सेमी., चौड़ाई 46 सेमी. व भीतरी चद्दर की लंबाई 68 सेमी. तथा चौड़ाई 44 सेमी. रखी जाती है। दोनों चद्दरों के बीच की जगह में कांच की रूई (फाइबर ग्लास) ताप अवरोधक के रूप में भर दी जाती है। दूसरे जैकेट की लंबाई और चौड़ाई 35 सेमी. रखी जाती है। दोनों जैकटों के बीच में चार बिजली के बल्ब लगाने की व्यवस्था होती है जिन्हें थर्मोस्टेट से जोड़ा जा सकता है। इससे ताप नियंत्रित रहता है। इस चैंबर के ऊपरी हिस्से में मिट्टी या अन्य माध्यम भर दिया जाता है जिसमें पौधों की कलमें रोपी जाती हैं। इस चैंबर में आम तथा अमरूद की कलमों में जड़ें आसानी से व अधिक संख्या में निकलती हैं। ❐

अध्याय-6

लैंगिक प्रवर्धन: लाभ एवं सिद्धांत

बीज द्वारा नए पौधे तैयार करने की विधि को 'लैंगिक प्रवर्धन' कहते हैं। इसे 'बीज द्वारा प्रवर्धन' भी कहा जा सकता है। लैंगिक प्रवर्धन में पौधे के फूल के नर एवं मादा भाग परागण एवं निषेचन आदि क्रियाओं में भाग लेते हैं, जिससे बीज का निर्माण होता है। ये बीज उगने पर नए पौधे को जन्म देते हैं। बीज में मुख्यत: तीन भाग, जैसे भ्रूण, भ्रूणपोष एवं बीजावरण होते हैं। इनमें से भ्रूण एक आधारभूत भाग है जो सामान्य परिस्थितियों में नए पौधों को जन्म देता है। भ्रणपोष नन्हें पौधे को पोषक तत्व प्रदान करता है, व बीजावरण बीज को बाहरी प्रतिक्रियाओं से बचाने का काम करता है।

लैंगिक प्रवर्धन के लाभ

1. यह प्रवर्धन की सबसे सस्ती एवं आसान विधि है।
2. बीजू पौधे दीर्घजीवी होते हैं।
3. बीजू पौधों का मूलतंत्र बहुत मजबूत होता है, जिससे मिट्टी में उनकी पकड़ काफी मजबूत होती है।
4. संकर किस्में पहले बीज द्वारा ही तैयार की जाती हैं।
5. प्रयोगात्मक तौर पर पपीता, फालसा, मैंगोस्टीन आदि फलों का प्रवर्धन बीज द्वारा ही संभव होता है क्योंकि उन्हें कायिक विधियों से प्रवर्धित करना बहुत कठिन है।
6. कलिकायन व कलम-बंधन हेतु मूलवृतों को मुख्यत: बीज द्वारा ही तैयार किया जाता है।
7. साधारणत: बीजू पौधे कीट एवं व्याधियों के प्रति सहिष्णु होते हैं।
8. बीजों को आसानी से लंबे समय तक भंडारित किया जा सकता है।
9. बीजों को आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है।
10. बीजू पौधों को तैयार करने हेतु किसी विशेष तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है।

लैंगिक प्रवर्धन की सीमाएं

1. बीजू पौधों की वृद्धि, फलत एवं फलों के गुणों में साधारणत: समरूपता नहीं होती है।
2. बीजू पौधों का आकार व फैलाव बहुत अधिक होता है, जिस कारण उनकी देख-रेख व सस्य-क्रियाओं आदि में मुश्किलें आती हैं।
3. बीजू पौधों की किशोरावस्था देर तक बनी रहती है, जिससे उनमें फलन देरी से शुरू होता है।
4. अधिकतर बीजों को फलों से निकालने के बाद उनकी जीवनक्षमता बहुत कम होती है और उन्हें तुरंत ही बोना पड़ता है जो कि कभी-कभी संभव नहीं होता है।
5. कुछ पौधों, जैसे अनन्नास, केला आदि में जीवित बीज नहीं बन पाते हैं अत: उन्हें बीज द्वारा प्रवर्धित नहीं किया जा सकता है।
6. बीज प्रवर्धन द्वारा मूलवृंत के सांकुर पर अनुकूल प्रभावों को प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है।

बीज प्रवर्धन के सिद्धांत

बीजांकुरण

बीजांकुरण एक ऐसी क्रिया है जिसमें भ्रूण में कई उपापचयी क्रियाओं के बाद उससे मूलांकुर व प्रांकुर निकलते हैं और पौद का रूप धारण करते हैं। बीजांकुरण की प्रक्रिया एक बहुत ही जटिल क्रिया होती है क्योंकि इस क्रिया में बीज में कई शारीरिक, कार्यिकीय एवं आकारिकय बदलाव आते हैं। बीजांकुरण की शुरुआत हेतु मुख्यत: तीन मूलभूत आवश्यकताएं होनी चाहिए: (1) बीज जीवनक्षम होना चाहिए, (2) बीज प्रसुप्त नहीं होना चाहिए, और (3) वातावरण की सभी अवस्थाएं जैसे नमी, तापमान, आर्द्रता, हवा एवं प्रकाश आदि बीजांकुरण के अनुकूल होनी चाहिए।

बीजांकुरण की अवस्थाएं

बीजांकुरण हेतु मुख्यत: तीन अवस्थाएं होती हैं, जो एक दूसरे से जुड़ी होती हैं और एक-दूसरे पर निर्भर होती हैं। ये अवस्थाएं हैं सक्रियण अवस्था, स्थानांतरण अवस्था व पौद वृद्धि अवस्था।

1. सक्रियण अवस्था

इसे 'जलयोजन' अवस्था भी कहते हैं क्योंकि इस अवस्था में सूखे बीज अंत:शोषण एवं परासरण की क्रियाओं द्वारा जल चूसते हैं। ऐसा होने से बीजावरण मुलायम हो जाता है, जिससे बीज का प्रोटोप्लाज्म जलयोजित हो जाता है। बाद में बीज फूलता है और बीजावरण फट जाता है व प्रोटोप्लाज्म में उपापचयी क्रियाएं कई एन्जाइमों को उत्प्रेरित करती हैं। ये एन्जाइम कोशिकाओं की वृद्धि में सहायता करते हैं जिससे मूलांकुर निकलने लगता है।

2. स्थानांतरण अवस्था

भोज्य-सामग्री, जैसे वसा, कार्बोहाइड्रेट या प्रोटीन आदि बीज के भ्रूणपोष या बीजपत्रों में भंडारित होते हैं। ये पदार्थ साधारण रूप में परिवर्तित होकर बीज के भ्रूण के प्ररोही बिंदुओं पर स्थानांतरित हो जाते हैं। यह परिवर्तन की क्रिया बीज में व्याप्त भोज्य सामग्री पर निर्भर करती है। उदाहरणत: वसा एवं तेल पहले एन्जाइमों द्वारा वसीय अम्लों में परिवर्तित किए जाते हैं और उसके बाद साधारण शर्करा में। प्रोटीन को ऐमीनो अम्ल व नाइट्रोजन तथा स्टार्च को साधारण शर्करा में परिवर्तित किया जाता है। परिवर्तन की उपापचयी क्रियाएं विशेष प्रकार के एन्जाइमों द्वारा नियंत्रित की जाती हैं।

3. पौद वृद्धि अवस्था

इस अवस्था में भ्रूण के प्ररोही बिंदुओं में कोशिका-विभाजन द्वारा पौधों का विकास होता है तथा इसके बाद में पौध की वृद्धि होती है। जैसे-जैसे अंकुरण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है, पौध के विभिन्न अंग तैयार होते हैं और वे वृद्धि करते दिखाई देते हैं।

फल बीजों में अंकुरण दो प्रकार से होता है। कई बीजों में पत्राधार वृद्धि करके बीजपत्र को भूमि के ऊपर कर देते हैं, जिसे 'अधिभौम अंकुरण' कहते हैं। आंवला, इमली, चेरी एवं करौंदा आदि फलों एवं प्याज आदि सब्जियों के बीजों में इस प्रकार का अंकुरण पाया जाता है। अन्य बीजों में बीजपत्र भूमि में पड़े रह जाते हैं, जिसे 'अधोभूमिक अंकुरण' कहते हैं (रेखाचित्र-7)। यह मुख्यत: आम, नींबू, सेब, आड़ू, अखरोट, पीकननट, मटर, चना आदि में पाया जाता है।

बीजांकुरण को प्रभावित करने वाले कारक

बीजांकुरण को प्रभावित करने वाले कारकों को मुख्यत: बाह्य कारक, अंत:कारक एवं भंडारीय कारक आदि तीन वर्गों में बांटा गया है -

अ. बाह्य कारक

निम्नलिखित बाह्य कारक बीजांकुरण को प्रभावित करते हैं:

1. जल

बीजांकुरण को प्रभावित करने वाले कारकों में जल सभी कारकों में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। जल अवशोषण के बाद ही बीज सक्रिय हो पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि अंकुरण प्रतिशत मुख्यत: बीज की जल अवशोषण की दर पर ही निर्भर होता है। परंतु साधारणत: 40 से 60 प्रतिशत नमी धारण करने पर ही अधिकतर बीजों में बीजांकुरण प्रारंभ होता है। बीज द्वारा नमी अवशोषण की क्रिया कई बातों, जैसे वातावरण की प्रकृति, तापमान एवं उपलब्ध जल की मात्रा पर निर्भर करती है। परंतु यह सर्वमान्य बात है कि बीजांकुरण हेतु पर्याप्त नमी का होना अति आवश्यक होता है।

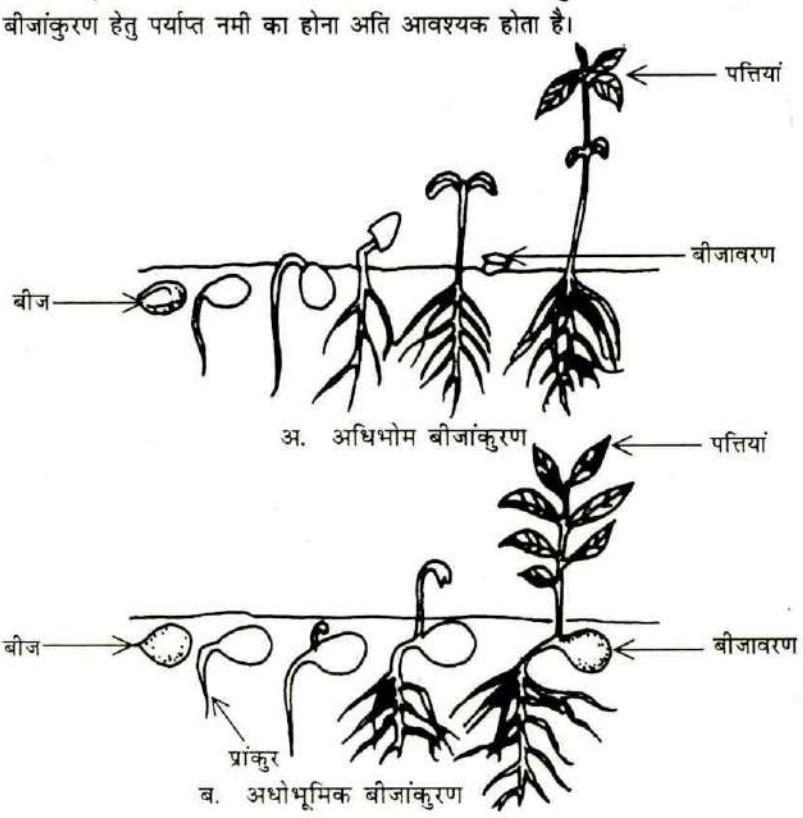

रेखाचित्र 7: बीजांकुरण के प्रकार

2. तापमान

तापमान बीजांकुरण की शुरुआत व उसे व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह बीजांकुरण दर व प्रतिशत दोनों को प्रभावित करता है। प्रत्येक बीज के बीजांकुरण हेतु अनुकूलतम तापमान की आवश्यकता होती है जिसके कम या अधिक होने पर बीजांकुरण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। उदाहरणत: ठंडे जलवायु में उगने वाली सब्जियों (जैसे, पत्तागोभी, सेलेरी आदि) के 4° सेल्सियस या उससे कम तापमान पर और गर्मी में उगाई जाने वाली सब्जियों, (जैसे बैंगन, टमाटर आदि) के बीज 10-15° सेल्सियस तापमान पर आसानी से उगते हैं परंतु अधिकतर सब्जियों के बीजांकुरण हेतु अनुकूलतम तापमान 25 से 30 सेल्सियस है।

3. हवा

उगते हुए बीज बड़ी तेजी से श्वसन करते हैं। अत: प्रवर्धन माध्यम व भ्रूण के बीच हवा का सामान्य आवागमन होना चाहिए ताकि बीजांकुरण की क्रिया प्रभावित न हो और न ही पौध की वृद्धि पर इसका कोई असर पड़े। यही कारण है कि जलाक्रांत मृदा, प्रवर्धन माध्यम या क्यारी में बीजांकुरण कम होता है क्योंकि अंकुरित बीजों को श्वसन हेतु सामान्य रूप से हवा नहीं मिल पाती है।

4. प्रकाश

हालांकि प्रत्येक बीज को अंकुरित होने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है, परंतु कुछ पौधों के बीजों के अंकुरण हेतु यह अति आवश्यक होता है। उदाहरणत: ब्लूबेरी, स्ट्राबेरी, रसभरी, गाजर, सेलेरी आदि के बीजों में अंकुरण हेतु प्रकाश अति आवश्यक होता है। साधारणत: बीजांकुरण हेतु प्रकाश की आवश्यकता एक जटिल क्रियाविधि मानी जाती है जो बीज के प्रकार, आकार, जल अवशोषण, तापमान, हार्मोन की सांद्रता आदि कई कारकों द्वारा प्रभावित की जाती है।

5. प्रवर्धन माध्यम की क्षारीयता

प्रवर्धन माध्यम (मिट्टी, पीट, मॉस, कोकोपीट आदि) में व्याप्त लवणों की सांद्रता भी बीजांकुरण की क्रिया को प्रभावित करती है। यह समस्या हल्की मृदा या उन क्षेत्रों में और भी विकट हो जाती है जहां सिंचाई हेतु लवणीय जल का प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि पौधाघरों में मृदु जल का स्रोत अवश्य होना चाहिए।

6. रोगाणु

बीजावरण, जल या प्रवर्धन माध्यम में व्याप्त रोगाणु भी बीजांकुरण को प्रभावित करते हैं।

उदाहरणत: पौधघरों में पौद आर्द्रपतन रोग मुख्यत: बीज में व्याप्त रोगाणुओं के कारण ही होता है।

ब. अंत:कारक

1. बीज की प्रसुप्ति

कई बीजों में प्रसुप्ति के कारण भी अंकुरण प्रभावित होता है। यह समस्या शीतोष्ण जलवायु के कई औद्यानिक फसलों के बीजों में पाई जाती है।

2. बीजावरण अवरोध

कई बीजों के बीजावरण में कई प्रकार के अवरोधक होते हैं, जो बीजांकुरण की क्रिया को प्रभावित करते हैं। उदाहरणत: कुछ बीजों के बीजावरण में अवरोधक कोशिकाएं बन जाती हैं जो बीज द्वारा पानी का अवशोषण नहीं होने देतीं। पानी का कम अवशोषण होने की स्थिति में जीवित भ्रूण भी सक्रिय नहीं हो पाता, जो बीजांकुरण को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त कई फलों, जैसे अखरोट, पीकननट आदि के बीजावरण बहुत ही कठोर होते हैं। उन्हें जब तक तोड़ा न जाए तब तक बीजांकुरण की कोई भी संभावना नहीं होती है।

स. भंडारीय कारक

भंडारण के समय बीज की नमी, भंडारण की लंबी अवधि, भंडारण कक्ष का कम या अधिक तापमान आदि कुछ ऐसे कारक हैं, जो बीजांकुरण को प्रभावित करते हैं।

बीजांकुरण सुगमीकरण हेतु उपचार

बीजांकुरण को प्रेरित करने हेतु कई भौतिक एवं रासायनिक विधियां अपनाई जा सकती हैं, हालांकि इन विधियों की क्षमता बीज के प्रकार, आकार एवं प्रसुप्ति की दशा आदि पर निर्भर करती है। ऐसी कुछ विधियों का विवरण निम्नलिखित है:

1. बीजों को पानी में भिगोना

बीजों की बुआई से पहले उन्हें पानी में भिगोने की प्रथा सदियों से चलती आ रही है। ऐसा करने से बीजावरण मुलायम हो जाता है एवं एन्जाइम सक्रिय व निरोधक रसायन कमजोर पड़ते हैं। तप्त जलोपचार कई बीजों में प्रसुप्ति समापन में सहायक होता है। इस विधि में बीजों को 80-100° सेल्सियस तापित पानी में 12-24 घंटे तक भिगोया जाता है। कभी-कभी बीजों को ठंडे पानी में भी भिगोया जाता है। सेलेरी के बीजों को एक दिन,

सेब के बीजों को दो दिन, और शहतूत के बीजों में अंकुरण हेतु तीन दिनों तक क्रमश: ठंडे पानी में रखा जाता है।

2. स्तरण

स्तरण में भीगे बीजों को 0-5° सेल्सियस तापमान पर कुछ समय के लिए रखा जाता है। ऐसा करने से बीज के भ्रूण में कई कार्यिकीय बदलाव आते हैं, जो बीजांकुरण को सुगम बना देते हैं। स्तरण हेतु समयावधि 1 से 6 महीने हो सकती है, परंतु यह कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है। शीतोष्ण वर्गीय फलों के बीजों के स्तरण हेतु समयावधि एवं तापमान का ब्योरा सारणी-2 में दिया है।

सारणी-2 : शीतोष्णवर्गीय फलों के बीजों के स्तरण हेतु आवश्यकताएं

फल-बीज	अनुकूलतम तापमान (° सेल्सियम)	अवधि (दिन)
सेब	3	70 से 80
नाशपाती	3	70 से 80
अलूचा	3	70 से 80
आड़ू	5	60 से 100
अंगूर	5	90
चेरी	3	180

3. क्षतचिह्नन

इस क्रिया में बीजावरण में किसी न किसी तरीके से क्षतचिह्न किया जाता है ताकि पानी एवं गैसों का भ्रूण एवं भूणपोष में आवागमन हो सके। ये बीजांकुरण में सहायता करते हैं। बीजों में क्षतचिह्नन कई तरीकों से करते हैं, जिसका ब्योरा पहले भी दिया जा चुका है।

4. हॉर्मोनी उपचार

बीजांकुरण को कई पादप वृद्धि नियामकों के उपचार से सुगम बनाया जा सकता है। जिब्रैलिक अम्ल (200-500 पी.पी.एम.) या साइटोकाइनिन (10-100 पी.पी.एम.) आदि वृद्धि नियामकों का उपयोग बीजों में प्रसुप्ति समापन हेतु किया जाता है, जो बीजांकुरण को और भी सुगम बना देते हैं।

5. रासायनिक उपचार

कुछ रसायन भी बीजों में प्रसुप्ति समापन हेतु प्रयोग किए जाते हैं। उदाहरणत: पोटैशियम नाइट्रेट (0.1-2.0 प्रतिशत), थायोयूरिया (0.5-30 प्रतिशत) या हाइड्रोजन परॉक्साइड आदि रसायन बीजांकुरण को तेज करते हैं।

6. शुष्क भंडारण

कुछ औद्यानिक पौधों के ताजे बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। ऐसे बीजों को 37 से 40° सेल्सियस तापमान पर 3 से 5 दिन तक सुखाया जाता है। तदुपरांत ऐसे बीजों में अंकुरण शीघ्र हो पाता है।

❐

अध्याय-7

बीज की जीवनक्षमता एवं परीक्षण

बीज की जीवनक्षमता

अनुकूल परिस्थितियों में बीज के अंकुरित होने से लेकर पौद तैयार होने की क्षमता को बीज की जीवनक्षमता कहते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज के मात्र मूलांकुर निकलने का अभिप्राय बीज की जीवनक्षमता नहीं होती है। ठीक इसी प्रकार पूर्णमृत बीज वह होता है जो जीवन-अक्षम है। अत: जीवन-अक्षम बीज केवल मृत या रोगी बीज को ही नहीं कहते परंतु वे बीज भी इस श्रेणी में आते हैं जो सही प्रकार की पौद न तैयार कर सकें। बीजों की जीवनक्षमता विभिन्न प्रकार के बीजों में भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरणत: कुछ फलों जैसे आम, नींबूवर्गीय फल, लीची, कटहल, अखरोट आदि के बीज अल्प आयु के होते हैं और अन्य (जैसे मुख्यत: सब्जियों) के बीज कई दिनों तक जीवनक्षम होते हैं। कुछ बीजों को यदि कम तापमान (0-4 सेल्सियस) तथा कम आर्द्रता पर भंडारित करें तो वे दीर्घजीवी होते हैं, परंतु कई बीज (जैसे लीची, आम, नींबू, अखरोट आदि) अल्प आयु के होते हैं यदि उन्हें शुष्क स्थिति में भंडारित किया जाए। नमी के संबंध में बीजों को भंडारण अवधि के आधार पर रूढ़ी एवं अरूढ़ी (दुस्साध्य) वर्गों में श्रेणीवद्ध किया गया है:

1. **रुढि (ऑर्थोडॉक्स) बीज:** ऐसे बीज जिन्हें कम नमी तक सुखाया जा सकता है और जैसे ही नमी बढ़ाई जाए तो उनकी जीवन क्षमता कम हो जाती है, उन्हें 'रुढि बीज' कहते हैं। ऐसे बीज बेर, सीताफल, खजूर, अनार आदि में पाए जाते हैं।

2. **दुस्साध्य (रिकैलसिट्रैन्ट) बीज:** जो बीज नमी की उच्च दशा में जीवित रहते हैं, परंतु एक निश्चित नमी तक सुखाए जाने की स्थिति में उनकी जीवनक्षमता खत्म हो जाती है, उन्हें दुस्साध्य बीज कहते हैं। इस प्रकार के बीज आम, लीची, मैंगोस्टीन, रेंबूटान, नींबू वर्गीय फल, अखरोट, एवोकेडो, बार्बेडोस चेरी, कमरख, दूरियन आदि में पाए जाते हैं। साधारणत: दूसरी श्रेणी के बीज अल्प आयु होते हैं और उन्हें लंबी अवधि तक भंडारित करना कठिन होता है।

बीज की जीवनक्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

बीज की जीवनक्षमता को वैसे तो कई कारक प्रभावित करते हैं, परंतु ऐसे प्रमुख कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

1. यांत्रिक क्षति

बीजों की जीवनक्षमता को प्रभावित करने वाले कारकों में यांत्रिक क्षति का प्रमुख स्थान है। इस प्रकार की चोट बीजों में प्राय: फसल कटाई या गहाई के समय आती है। यदि बीज यांत्रिक क्षति से अत्यधिक क्षतिग्रस्त हुआ हो तो जीवनक्षमता तुरंत प्रभावित होती है। परंतु कभी-कभी ऐसी चोटें बीज की जीवन क्षमता को धीरे-धीरे प्रभावित करती हैं। इस प्रकार की चोटें बड़े बीजों को अधिक प्रभावित करती हैं। ठीक इसी प्रकार लंबे बीजों की अपेक्षा गोल बीजों को यांत्रिक चोटें कम लगती हैं। उदाहरणत: फूलगोभी या पत्तागोभी के बीज गोल होते हैं तथा उन्हें कटाई या गहाई के दौरान कम चोटें लगती हैं।

2. वातावरणीय दशाएं

साधारणत: विभिन्न जातियों एवं किस्मों के बीजों की जीवनक्षमता साल दर साल भिन्न-भिन्न होती है। ऐसा प्राय: बीज की परिपक्वता, पक्वता एवं कटाई के दौरान विद्यमान वातावरण एवं जलवायु की दशाओं के कारण होता है। साधारणत: बीज की परिपक्वता के दौरान मौसम गर्म, साफ एवं शुष्क होना चाहिए। परंतु यदि परिपक्वता के समय मौसम में अधिक नमी हो या अनावश्यक सूखा पड़ जाए तो बीज की गुणवत्ता अवश्य ही प्रभावित होगी, जो बीज की जीवनक्षमता को भी निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं।

3. आनुवंशिक कारण

बहुत से वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि बीजों की जीवनक्षमता सीधे तौर पर पौधे या किस्म विशेष के आनुवंशिक गुणों द्वारा प्रभावित होती है। उदाहरणत: आम की गुठली की जीवनक्षमता काजू की अपेक्षा हमेशा कम होती है, हालांकि दोनों ही 'एनाकर्डिएसी' कुल के सदस्य हैं। कमल का बीज 100 साल तक जीवित रहता है, लेकिन अन्य फूलों का नहीं।

4. भंडारण की दशाएं

बीज को जीवनक्षम रखने हेतु भंडारण की दशाएं आदर्श होनी चाहिए क्योंकि भंडारण की दशाएं भी बीज की जीवनक्षमता को प्रभावित करती हैं। यदि भंडारण कक्ष में तापमान, आर्द्रता, नमी, वातन आदि की दशाएं बीज-विशेष के लिए अनुकूल नहीं हों तो वे अवश्य ही बीज की जीवनक्षमता को प्रभावित करेंगी। भंडारण में प्रतिकूल दशाएं जीवाणुओं एवं कीट-पीड़कों को भी आमंत्रित करती हैं जो बीज की जीवनक्षमता में और भी कमी लाती हैं।

ग. वृद्धि नियामकों का प्रयोग

कुछ फलवृक्षों के बीजों में प्रसुप्ति अवस्था, निरोधक और वृद्धिकारक नियामकों के आपसी समन्वय द्वारा निर्धारित होती है। अत: वृद्धि नियामक रसायनों के उपचार से भी प्रसुप्ति समाप्त की जा सकती है। प्रसुप्ति समापन हेतु विभिन्न वृद्धि नियामकों में जिब्रैलिक अम्ल का प्रयोग सबसे अधिक सफल पाया गया है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि जिब्रैलिक अम्ल के 500-1,000 पी.पी.एम. सांद्रता वाले घोल में 24-48 घंटे तक उपचार के पश्चात् बोने पर सेब, चेरी, अंगूर, स्ट्राबेरी आदि फलवृक्षों के बीजों में अच्छा अंकुरण होता है। आजकल इथरेल का प्रयोग भी प्रसुप्ति की प्रतिपूर्ति हेतु किया जा रहा है। स्ट्राबेरी, सेब, अमरूद के बीजों को 5,000 पी.पी.एम. इथरेल से उपचारित करने पर इनमें अच्छा अंकुरण होता है। 10-20 पी.पी.एम. बेन्जाइल एडिनाइन के घोल में सेब, आड़ू आदि के बीजों को उपचारित करने से उनके अंकुरण में अच्छी वृद्धि होती है, परंतु यह व्यावसायिक स्तर पर बहुत महंगा रहता है।

घ. रासायनिक उपचार

कुछ रसायन कठोर बीजावरण में छंदन करके बीजों की प्रसुप्ति से छुटकारा दिलवाते हैं। उदाहरणत: 'थायोयूरिया' के 5,000-10,000 पी.पी.एम. सांद्रता वाले घोल में आड़ू व अंगूर के बीजों को 24-48 घंटे उपचारित करके बोने से उनकी अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है। अमरूद के बीजों को गाढे सल्फ्यूरिक अम्ल में तीन मिनट तक तथा बेर के बीजों को 5-6 घंटे तक उपचारित करने के पश्चात् बोने पर अंकुरण शीघ्र और अच्छा होता है। इसी प्रकार स्ट्राबेरी के बीजों को 0.25 प्रतिशत नाइट्रिक अम्ल से उपचार के बाद बोने पर अच्छे अंकुरण की संभावना रहती है। कभी-कभी बीजों को गर्म पानी में भिगोने पर भी उनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है।

च. पानी द्वारा निरोधक रसायनों का निक्षालन

कुछ फलवृक्षों के बीजों में प्रसुप्ति हेतु उनमें विद्यमान अंकुरण निरोधक रसायन, जैसे फिनोल आदि होते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें अंकुरण नहीं हो पाता। ऐसे बीजों को यदि कुछ समय के लिए बहते पानी में रख दिया जाए तो बीजों से अंकुरण निरोधक रसायनों का निक्षालन होने से उनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है। प्रयोगों से यह पाया गया है कि अंगूर व स्ट्राबेरी के ताजे निकाले गए बीजों को 10-12 दिन तक पानी द्वारा निक्षालन के बाद बोने पर अच्छे अंकुरण की संभावना रहती है।

छ. पूर्व द्रुतशीतन उपचार

कुछ बीजों से प्रसुप्ति समापन हेतु बीज बोआई से पूर्व बीज का द्रुतशीतन उपचार काफी लाभदायक रहता है। इस विधि में पानी में भिगोए बीजों को 5-7 दिन के लिए 5-10° सेल्सियस तापमान पर रखते हैं। इस उपचार के बाद बीजों को पौधशाला या खेत में बो दिया जाता है।

ज. शुष्कनपूर्व उपचार

कुछ बीजों में शुष्कनपूर्व उपचार भी प्रसुप्ति समापन में काफी सहायक होता है। इस विधि में सूखे बीजों को बोने से पहले 5-7 दिन के लिए 37-40 सेल्सियस तापमान पर रखते हैं। इस उपचार के बाद बीजों को तुरंत पौधशाला की क्यारियों या खेतों में बो दिया जाता है।

❐

वातावरणीय नियंत्रण

पौधशाला में कई रोगों से बचाव हेतु वातावरण की स्थितियों पर नियंत्रण करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरणत: पौद में 'आर्द्रगलन' रोग उसी दशा में अधिक लगता है जब पौधशाला या क्यारियों में जलनिकास की उचित व्यवस्था न हो। अत: ऐसी स्थिति को पौधशाला में उठी हुई क्यारियां बनाकर आसानी से बचा जा सकता है। अक्सर यह देखा गया है कि कम लागत के पॉलिथीन गृह में लगी पौद कई बार आर्द्रता अधिक होने के कारण कई रोगों द्वारा ग्रसित हो जाती है। अत: यदि समय-समय पर ऐसे पॉलिथीन गृह के दरबाजे को खोल दें तो ऐसी स्थिति से आसानी से बचा जा सकता है।

❐

बीज बोआई

पौधशाला में नए पौधे तैयार करने के लिए बीज की बोआई करते हैं। बीजों को मुख्यत: तीन प्रकार से बोया जाता है: (1) पौधशाला में बनी क्यारियों (बीजवाड़ी) में, (2) पॉलिथीन की थैलियों में, एवं (3) स्वस्थाने। इन विधियों का विवरण निम्नलिखित है:

बीजवाड़ी में बीजों की बोआई

क. क्यारी की तैयारी

बीजवाड़ी में बीजों की बोआई के लिए क्यारियों की तैयारी करनी होती है। क्यारियां बनाने के लिए गली-सड़ी गोबर की खाद, कंपोस्ट अथवा पत्ती की खाद मिलाकर खेत की 4-5 बार जुताई करके क्यारियों को अच्छी प्रकार तैयार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त क्यारियों में उचित मात्रा में उर्वरक भी डालने चाहिए। क्यारी की लंबाई 2-3 मीटर, चौड़ाई 1 मीटर तथा ऊंचाई 10-15 सेमी. होनी चाहिए। दो क्यारियों के बीच कम से कम 40-50 सेमी. चौड़ा रास्ता व सिंचाई हेतु 20-25 सेमी. चौड़ी नाली होनी चाहिए। जब क्यारियां भली-भांति तैयार हो जाएं तो उनमें बीज बो देने चाहिए।

ख. बोआई का समय

बीज बोने का समय विभिन्न फलों, सब्जियों एवं फूलों के लिए भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणत: उष्ण एवं उपोष्ण फलवृक्षों के बीज प्राय: मानसून प्रारंभ होने (जून-जुलाई) या बसंत ऋतु के आगमन (फरवरी-मार्च) में बोए जाने चाहिए। परंतु कुछ फलवृक्षों के बीजों की बोआई उनकी परिपक्वता पर भी निर्भर करती है। जैसे नींबूवर्गीय फलों के बीज मुख्यत: दिसंबर-जनवरी माह में मिलते हैं जिन्हें उसी समय बोना उचित है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने अनुमोदित किया है कि ऐसे फलवृक्षों के बीजों की क्यारी के ऊपर पॉलिथीन का तंबू बना देना चाहिए, अन्यथा अधिक ठंड के कारण इनके बीजों का अंकुरण बहुत कम होता है। आम, कटहल के बीज जून-जुलाई, अमरूद के जुलाई व सितंबर-अक्टूबर एवं बेर, आंवला आदि के बीज फरवरी-मार्च में बोए जाने चाहिए, क्योंकि इनकी उपलब्धता भी इसी समय रहती है। शीतोष्ण फलवृक्षों के बीजों की बोआई अक्टूबर-नवंबर में या उचित स्तरण के बाद करनी चाहिए। जिन बीजों की भंडारण क्षमता कम हो (जैसे आम, संतरा, लीची आदि) उन्हें फलों से निकालकर अतिशीघ्र बो देना चाहिए।

पौधशाला में सब्जियों एवं फूलों की पौद तैयार करने हेतु मौसम का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सब्जियों में पौद बैंगन, टमाटर, मिर्च, गोभी वर्गीय सब्जियों, प्याज आदि की तैयार की जाती हैं। इन सब्जियों के बीजों को समयानुसार बोना चाहिए। इसी प्रकार कुछ पुष्पीय पौधों की भी पौद तैयार की जाती है।

ग. बीज बोने की गहराई

बीज बोने की गहराई कई बातों, जैसे बीज के आकार, मिट्टी की बनावट, बीज बोने के समय आदि पर निर्भर करती है। जैसे आकार में बड़े बीजों को अपेक्षाकृत गहराई में तथा छोटे बीजों को उथला बोना चाहिए। साधारणत: हल्की मिट्टी में बीज गहरे व चिकनी मिट्टी में उथले बोए जाने चाहिए। परंतु मोटे तौर पर बीज की मोटाई के अनुसार उन्हें 4-5 गुना गहराई में बोना चाहिए। बीज बोने के लिए क्यारियों में उथली लकीर बनाकर उसी में बोआई करनी चाहिए। बुवाई के बाद बीजों को बालू या सड़ी पत्तियों की खाद से ढककर दबा देना चाहिए।

घ. पलवार का प्रयोग

बीजों की बोआई के बाद जल्दी से फौहारे से हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बोआई के उपरांत किसी पलवार, जैसे-पुआल, घास-फूस या पॉलिथीन का प्रयोग बीजों में जल्दी व अच्छा अंकुरण लाने में बहुत ही सहायक रहता है। इसके अतिरिक्त, पलवार के प्रयोग से सिंचाई द्वारा छोटे बीजों के बहने की भी कम संभावना रहती है। पलवार क्यारियों में उचित नमी, तापमान व खरपतवारों को भी नियंत्रित रखने में लाभप्रद रहती है। ठंडे क्षेत्रों में पलवार का प्रयोग बहुत ही लाभदायक पाया गया है, क्योंकि इन क्षेत्रों में पाले से सुरक्षा के लिए पलवार से उत्तम और कोई साधन नहीं है। पलवार को बीजों में अंकुरण आने के तुरंत बाद हटा देना चाहिए।

च. पौधों का स्थानांतरण

बीजवाड़ी में बीजों को पास-पास बोया जाता है। अत: अंकुरण के बाद जब पौद 10-15 सेमी. की हो जाए तो इसे अलग क्यारियों, गमलों या पॉलिथीन की थैलियों में स्थानांतरित कर देना चाहिए। यह प्रक्रिया कभी-कभी दो या तीन बार भी करनी पड़ती है। ऐसा करने से मूसला जड़ों की वृद्धि रुक जाती है तथा अपस्थानिक (झकड़ा) जड़ें प्रोत्साहित होती हैं, जबकि पौधे को एक जगह ही रहने से मूसला जड़ों का अधिक विकास होता है और झकड़ा जड़ों का कम, जिससे ऐसे पौधों को पौधशाला या खेतों में लगाने से उनके मरने का अत्यधिक भय रहता है। उष्ण व उपोष्ण वर्गीय फलों के पौधों के स्थानांतरण हेतु बरसात एवं शीतोष्ण फलवृक्षों के लिए फरवरी-मार्च का समय उचित रहता

है। उष्ण व उपोष्ण जलवायु वाले फलों की पौद को मिट्टी की पिंडी खोदकर स्थानांतरित करना चाहिए, अन्यथा वे खेत में लगाने पर मर जाते हैं। अधिकतर सब्जियों की पौद एक से डेढ महीने बाद खेत में लगाने हेतु तैयार हो जाती है।

2. पॉलिथीन की थैलियों में बोआई

आजकल पॉलिथीन की थैलियों, विभिन्न मिट्टी एवं प्लास्टिक के गमलों में या अन्य पात्रों में बीज बोने का प्रचलन भी बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। गमलों या थैलियों में बीज बोने से रख-रखाव अच्छा हो जाता है। गमलों या पॉलिथीन की थैलियों में उन बीजों के बोने की सिफारिश की जाती है, जिनकी मूसला जड़ें अधिक विकसित होने के कारण स्थानांतरण या रोपण के समय समस्या होती है। वैसे तो बीज बोने के लिए किसी भी आकार की पॉलिथीन की थैलियों का प्रयोग किया जा सकता है, परंतु 20×15 सेमी. आकार की थैलियां कई मायनों में उचित रहती हैं। ऐसी थैलियों का व्यावसायिक स्तर पर दिन प्रतिदिन प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

3. स्व स्थाने बोआई

कुछ फलवृक्षों, जैसे आम, अखरोट, पीकननट, बेर आदि की पौध की मूसला जड़ें बहुत अधिक विकसित हो जाती हैं। अत: जब पौधों की खुदाई की जाती हैं तो ऐसी जड़ों को, अत्यधिक सावधानी अपनाने के बावजूद, कोई न कोई क्षति हो जाती है, जिससे रोपण करने के बाद पौधों के मरने की बहुत संभावना रहती है। अत: ऐसे फलों के बीजों को 'स्व स्थाने' लगाने की सिफारिश की जाती है। यह प्रक्रिया उन क्षेत्रों में अत्यंत लाभदायक रहती है जहां मिट्टी पथरीली व रेतीली हो। यही कारण है कि गुजराज व उड़ीसा में आम व काजू के 'स्व स्थाने' बाग लगाने की सिफारिश की जाती है। ऐसी परिस्थितियों में रेखांकन के अनुसार उचित दूरी पर गड्ढे खोदकर और उन्हें अच्छी प्रकार भरकर, 2-3 स्वस्थ बीजों को 'स्व स्थाने' बोया जाना चाहिए। अंकुरण के एक से डेढ़ वर्ष बाद इन पौधों पर मनचाही या व्यावसायिक किस्मों का प्रवर्धन कर देते हैं। ऐसे में लगाए गए पौधों में मूसला जड़ें अच्छी तरह विकसित होने के कारण ये दीर्घजीवी, अपेक्षाकृत आकार में बड़े तथा सहिष्णु होते हैं।

बीजू पौधों की देखभाल

बीजू पौधे अक्सर कायिक विधियों द्वारा तैयार पौधों से अधिक सहिष्णु होते हैं। परंतु उनके लिए भी समयानुसार सिंचाई, निराई व गुड़ाई तथा कीट व रोगों की रोकथाम की लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए। बीजबाड़ी में पौद में अक्सर 'आर्द्रपतन' रोग का प्रकोप अधिक होता है, जिसके बचाव हेतु नियंत्रण समय से पहले किया जाना चाहिए।

पपीते की पौद में 'तना सड़न' रोग लग सकता है। अत: क्यारियों या गमलों में पानी के ठहराव को कम करना चाहिए। नींबू वर्गीय फलों की पौधशाला में 'कैंकर रोग' व 'पर्ण सुरंगी' कीट काफी हानि पहुंचाते हैं। कैंकर की रोकथाम के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) एवं पर्ण सुरंगी कीट की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव लाभप्रद रहता है। इसके अतिरिक्त नीम की खली (1 किलो, 200 लीटर पानी में) का छिड़काव भी लाभदायक पाया गया है। आम के पौधों में वानस्पतिक गुच्छा रोग लग सकता है, जिसकी रोकथाम के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए ताकि रोग आगे न फैल सके। सेब व नाशपाती की पौध में सफेद चूर्णिल रोग एवं रोयेंदार तेला (वुली एफिड) कीट काफी हानि पहुंचाते हैं। चूर्णिल रोग हेतु केराथेन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव एवं वूली एफिड के लिए थीमेट (10 जी.) या टेमिक (10 जी.) नामक दानेदार कीटनाशियों का प्रयोग जमीन में करना चाहिए।

पौधों के मुख्य तने से निकल रही शाखाओं को भी समय-समय पर निकालते रहना चाहिए। प्रयोगों से एवं विभिन्न वैज्ञानिकों के अनुभवों से यह पाया गया है कि बीजू पौधों की पौधशाला में यूरिया (5 प्रतिशत) के घोल का पर्णीय छिड़काव बहुत ही लाभदायक रहता है।

❐

अध्याय-11

हॉर्मोनी पाउडर, घोल एवं लेई

हॉर्मोन उस पदार्थ को कहते हैं, जिसका उत्पादन पादप के किसी एक हिस्से में होता हैं, जहां से यह स्थानांतरित होकर किसी दूसरे भाग में पौधे के किसी विशेष कार्य को प्रभावित करता है। अत: हॉर्मोन का उत्पादन कहीं होता है और प्रयोग कहीं और। इनका उपयोग बहुत ही कम मात्रा में किसी कार्य-विशेष को प्रभावित करने के लिए होता है। अब हॉर्मोन के लिए 'पादप वृद्धि नियामक' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। पादप वृद्धि नियामकों को अब व्यावसायिक स्तर पर कृत्रिम तौर पर बनाया जाता है।

औद्यानिक फसलों के उत्पादन में पादप वृद्धि नियामकों का उपयोग बड़े स्तर पर हो रहा है। औद्यानिक फसलों के प्रवर्धन में भी पादप वृद्धि नियामकों का उपयोग व्यावसायिक स्तर पर हो रहा है। इन्हें जहां बीजों में प्रसुप्ति समापन के लिए प्रयुक्त किया जाता है वहीं दाबा, स्टूलिंग तथा ऊतक संवर्धन में इनके प्रयोग के बगैर सफलता संभव नहीं हो सकती है। पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग मुख्यत: पाउडर, घोल या लेई के रूप में होता है, जिन्हें तैयार करने हेतु तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। परंतु हमें एक मुख्य बात ध्यान में अवश्य रखनी चाहिए कि एक पी.पी.एम का घोल या लेई बनाने हेतु हमें एक किलोग्राम पानी या लेई में एक मिलिग्राम शुद्ध वृद्धि नियामक की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अधिकतर हॉर्मोनी पाउडर पानी में घुलनशील नहीं होते। अत: इनका घोल बनाने से पहले इन्हें 'ऐल्कोहल' की कुछ बूंदों में घोल लेना चाहिए। तदुपरांत ही इसमें पानी मिलाना चाहिए।

हॉर्मोन पाउडर, घोल व पेस्ट तैयार करने की विधियां

अ. हॉर्मोनी पाउडर बनाना

हॉर्मोनी पाउडर बनाने हेतु, पहले हॉर्मोन की आवश्यक मात्रा को वैद्युत् तुला से तोल लें। इसे 1/2 लीटर इथेनोल, एसीटोन या मिथेनोल में बीकर में घोल लें तथा इसे एक किलोग्राम टैल्क (धूलि) में अच्छी तरह मिला दें। अच्छी तरह मिलाने के बाद इस मिश्रण को 2-3 घंटों के लिए खुली हवा में रखें। धीरे-धीरे ऐल्कोहल उड़ जाएगा। शेष बची धूलि को महीन पीस लें। इस महीन पाउडर को बाद में हवारहित कांच के पात्रों में रखें। बाद में जब हॉर्मोनी पाउडर की आवश्यकता पड़े तो प्रयोग करके पात्रों को सही ढंग से बंद कर दें।

ब. हॉर्मोनी घोल तैयार करना

हॉर्मोनी घोल बनाने के लिए सबसे पहले हॉर्मोन की मात्रा को सही से तोल लें। इसके बाद इसे ऐसीटोन या ऐल्कोहल की कुछ बूंदों में घोल लें। जब हॉर्मोन पूरी तरह घुल जाए तो इसमें आवश्यक पानी की मात्रा डालें। इस घोल का पी.एच. मान लगभग 7 होना चाहिए। यदि घोल का पी.एच कम या अधिक हो तो यह प्रभावी रूप से काम नहीं कर पाता है। अत: प्रयोग से पहले इसका पी.एच मान 0.1N हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या 0.1N सोडियम हाइड्रोक्साइड से ठीक करें। हॉर्मोनी घोल हमेशा ताजे ही तैयार करने चाहिए, क्योंकि कई दिनों तक कमरे में रखने पर ये अप्रभावी हो जाते हैं। यदि इन्हें कई दिनों तक रखना हो तो इन्हें फ्रिज में रखें।

स. हॉर्मोनी लेई तैयार करना

हॉर्मोन की लेई तैयार करने के लिए पहले वांछित मात्रा में हॉर्मोन को तोल लें। फिर इसे ऐल्कोहल की कुछ बूंदों में घोल लें। बाद में वांछित मात्रा में लेनोलिन को तोल लें। जब हार्मोन पूर्णरूप से घुल जाए तो इसे लेनोलिन में डालकर अच्छी तरह से मिला लें। बाद में इसे कमरे के तापमान पर रख दें। प्रयोग से पहले इस लेई को किसी ठंडे स्थान पर रखें।

हॉर्मोनी पाउडर, घोल एवं लेई के प्रयोग में सावधानियां

हॉर्मोनी पाउडर, घोल एवं लेई का प्रयोग अब पादप प्रवर्धन हेतु रीढ़ की हड्डी बन चुका है। इनका प्रयोग मुख्यत: कलमों या दाबा द्वारा पौधे तैयार करने हेतु किया जाता है। ये कलमों या दाबा में जड़ें उत्प्रेरित करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। ऐसे पाउडर अब बाजार में सुगमता से मिल जाते हैं। परंतु हमें इन्हें घर पर ही तैयार करना चाहिए। ये हॉर्मोन, जड़ें उत्प्रेरित ही नहीं करते अपितु ये जड़ों की बढ़वार में भी सहायता करते हैं। इन हॉर्मोनों से अच्छे परिणाम पाने के लिए हमें निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिए:

1. हॉर्मोन की मात्रा का माप बिल्कुल सही लेना चाहिए। यदि मात्रा अधिक या कम होगी तो परिणाम भी अनचाहे ही होंगे।
2. कोई भी हॉर्मोन पानी में नहीं घुलता। अत: तोल के बाद इन्हें ऐल्कोहल या एसीटोन की कुछ बूंदों में घोल लें।
3. यदि हॉर्मोन बाजार से खरीदना हो तो पात्र पर इसके तैयार होने की तिथि का ब्योरा अवश्य पढ़ लें।

4. हॉर्मोन की बहुत की कम मात्रा की आवश्यकता होती है। अत: हमेशा कम से कम मात्रा (एक या पांच ग्राम) वाली शीशी खरीदें।
5. हॉर्मोन की शीशी को कभी भी गर्म स्थान पर न रखें, क्योंकि ऐसे में ये अपघटित हो जाते हैं। अत: ऐसी शीशी को किसी ठंडे स्थान या फ्रिज में रखें।
6. हॉर्मोनी घोल हमेशा ताजे ही बनाए जाने चाहिए। यदि भंडारण करना पड़े तो इन्हें फ्रिज में ही रखें।
7. हॉर्मोनी घोल को कलमों के उपचार के लिए तथा लेनोलिन की लेई को दाबा या स्टूलिंग में प्रयोग करें।

वृद्धि नियामकों के प्रयोग की विधियां

कलमों या दाबा में मूलन उत्प्रेरित करना केवल वृद्धि नियामक की सांद्रता पर ही निर्भर नहीं होता परंतु यह कलम के प्रकार, आयु, आकार एवं वृद्धि नियामक से उपचारित करने की विधि पर भी निर्भर करता है। वृद्धि नियामकों द्वारा कलमों या दाबा आदि को उपचारित करने हेतु निम्नलिखित विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं:

1. दीर्घ भिगोने की विधि

इस विधि में कलमों के निचले सिरों को वृद्धि नियामक के कम सांद्रता के घोल (20 से 200 पी.पी.एम.) में किसी ठंडे स्थान पर 24 घंटों तक भिगोया जाता है। उपचार के बाद कलमों की सीधे पौधशाला या प्रवर्धन माध्यम में रोपाई कर दी जाती है। यह विधि मुख्यत: उन कलमों में प्रयुक्त की जाती है, जिनमें जड़ें सुगमता से नहीं निकलती हों। पौधशाला विशेषज्ञ इस विधि का प्रयोग कम ही करते हैं क्योंकि अन्य विधियों की अपेक्षा यह खर्चीली व कठिन विधि है।

2. त्वरित डुबोने की विधि

यह उपरिलिखित विधि का सुधरा हुआ रूप है। इस विधि में कलमों के निचले सिरों को वृद्धि नियामकों के उच्च सांद्रता के घोल (500 से 10,000 पी.पी.एम.) में बहुत ही कम समय (5 सेकंड से 2 मिनट) तक उपचारित करते हैं। उपचारित कलमों की पौधशाला या प्रवर्धन माध्यम में रोपाई कर दी जाती है। इस विधि का प्रयोग कलमों में जडें उत्प्रेरित करने हेतु काफी लोकप्रिय है।

स. पाउडर में डुबोने की विधि

इस विधि में ताजी तैयार की गई कलमों के निचले सिरों को हॉर्मोनी पाउडर में

कुछ समय तक उपचारित किया जाता है। ऐसा करने से हॉर्मोनी पाउडर कलमों पर लगा रहता है। अत: इसे उपचार के बाद हटा देना चाहिए। यदि इस विधि का प्रयोग करना हो तो कलमों को पहले पानी में भिगो लेना चाहिए ताकि हॉर्मोनी पाउडर कलमों से अच्छी तरह चिपक जाए।

ड. छिड़काव विधि

इस विधि में हॉर्मोनी घोल का मातृ पौधों पर छिड़काव किया जाता है। यह छिड़काव सामान्यत: मातृ पौधे से कलमें लेने से लगभग 30-40 दिन पहले किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि ऐसे पौधों से कलमें लेने पर उनमें अच्छी जड़ें आती हैं।

द. लेनोलिन लेई विधि

लेनोलिन लेई का प्रयोग गूटी, स्टूलिंग व दाबा द्वारा प्रवर्धन की अन्य विधियों में किया जाता है। इस विधि में प्ररोहों के निचले हिस्सों से छाल की रिंग निकाली जाती है। प्ररोहों के जिस हिस्से से छाल निकाली जाती है उसी के ऊपरी हिस्से पर लेनोलिन की लेई लगाई जाती है। लेनोलिन की लेई में मुख्यत: इन्डोल ब्यूटेरिक अम्ल नामक पादप वृद्धि नियामक डाला जाता है। यह वृद्धि नियामक दाबा में जल्दी जड़ें निकालने में सहायता करता है।

❐

अध्याय-12

पादप प्रवर्धन में रसायनों का प्रयोग

औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन में कई रसायन एवं पादप वृद्धि नियामक अहम भूमिका अदा करते हैं। ये रसायन बीजों के अंकुरण, बीजों में प्रसुप्ति समापन एवं दाबा व प्ररोहों में जड़ें निकालने में सहायता करके पादप प्रवर्धन में सहायक होते हैं। इस अध्याय में रसायनों के लैंगिक (बीज) व अलैंगिक (कायिक) प्रवर्धन में प्रयोग के बारे में जानकारी दी गई है।

अ. लैंगिक प्रवर्धन

कई औद्यानिक फसलें बीज द्वारा प्रवर्धित की जाती हैं। इन फसलों के लैंगिक प्रवर्धन में कई रसायन एवं पादप वृद्धि नियामक एक या दूसरे तरीके से सहायता करते हैं।

(1) मृदा एवं अन्य पादप प्रवर्धन माध्यम के उपचार में प्रयोग

मृदा एवं प्रवर्धन माध्यम में कई प्रकार के खरपतवारों के बीज, सूत्रकृमि, एवं कई अन्य रोगाणु होते हैं जो मुख्य फसल के बीज को किसी न किसी तरीके से क्षति पहुंचा कर उनके अंकुरण को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसे हानिकारक कारकों की क्षति से बचने के लिए मृदा एवं अन्य प्रवर्धन माध्यमों के उपचार के लिए कई तरह के रसायन प्रयोग किए जाते हैं। इन रसायनों में प्रमुख हैं, फार्मेल्डिहाइड, क्लोरोपिक्रिन, मेथिल ब्रोमाइड, वेपाम, केप्टान, बिनोमिल आदि। इनमें से कुछ रसायन मृदा के धूमन (जैसे फार्मेल्हिाइड, मेथिल ब्रोमाइड आदि) के लिए प्रयोग किए जाते हैं तथा कुछ मृदा में कीटों, फफूंदियों व सूत्रकृमियों को मारने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इन रसायनों के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य पौधशाला या खेत में सफाई की व्यवस्था को बनाए रखना होता है ताकि पौधशाला में किसी फफूंद, कीट या सूत्रकृमि की बढ़ोतरी न हो।

(2) रोग रोकने के लिए बीजोपचार

पौधों के कई रोग बीज के कारण ही फैलते हैं। रोगी बीज या तो भंडारण के दौरान सड़ जाते हैं और यदि ऐसा नहीं होता है तो ऐसे बीज पौधशाला में रोगों को फैलाते हैं। रोगी बीज सही ढंग से अंकुरित नहीं हो पाते और यदि अंकुरित हो भी जाते हैं तो उनमें आर्द्र पतन या अन्य रोग लग जाता है, जिससे पौद के मरने का भय बना रहता है। अत:

बीजों को रोगाणुओं से बचाने के लिए रसायनों से उपचार की आवश्यकता होती है। बीजोढ़ रोगों को रोगाणुनाशियों, पीड़कनाशियों एवं रक्षण द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। रोगों से बचाव हेतु बीजोपचार के लिए एथिल एल्कोहल (50 प्रतिशत), कैल्सियम हाइपोक्लोराइट (2 प्रतिशत) एवं मरक्यूरिक क्लोराइड (0.1 प्रतिशत) आदि प्रमुख रोगाणुनाशी हैं। इन रसायनों द्वारा बीजोपचार की अवधि कई बातों पर निर्भर करती है। परंतु साधारणत: यह अवधि 5-10 मिनट होती है। कभी-कभी हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को भी रोगाणुनाशी के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है। रक्षण हेतु सूखे बीजों पर एग्रोसन, सिरेसन, ब्रासीकोल, केप्टान, थीरम एवं डाइथेन-एम-45 आदि का प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों का प्रयोग साधारणत: 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से किया जाता है।

(3) प्रसुप्ति समापन हेतु बीजोपचार

कई सब्जियों, फूलों एवं शीतोष्ण वर्गीय फलों के बीजों में प्रसुप्ति की समस्या पाई जाती है। प्रसुप्ति समापन हेतु कई रसायनों एवं पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग किया जाता है। कम सांद्रता के सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा बीजों में प्रसुप्ति समापन के लिए क्षतचिह्नन की प्रक्रिया की जाती है। इसी प्रकार कई बीजों में जिब्रैलिक अम्ल (500 से 1,000 पी.पी.एम), काइनेटिन (100 पी.पी.एम.) आदि पादप वृद्धि नियामक बीजों में प्रसुप्ति समापन हेतु काफी प्रभावी पाए गए हैं। कई रसायन जैसे-थायोयूरिया (3 प्रतिशत), सोडियम हाइपोक्लोराइट व कैल्सियम हाइपोक्लोराइट आदि रसायन भी कई बीजों में प्रसुप्ति समापन हेतु प्रभावी पाए गए हैं। इन रसायनों की सांद्रता कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है। किसी फसल के बीज में प्रसुप्ति समापन हेतु मानकीकृत सांद्रता दूसरी फसल के बीज के लिए प्रभावी हो भी सकती है और नहीं भी। अत: हमें वैज्ञानिकों द्वारा मानकीकृत सांद्रता का ही प्रयोग करना चाहिए।

(4) बीजों की जीवनक्षमता के परीक्षण हेतु प्रयोग

बीजों की जीवनक्षमता के परीक्षण हेतु कई विधियां व रसायन प्रयोग में लाए जाते हैं। विभिन्न विधियों में टेट्राजोलियम परीक्षण विधि सबसे प्रचालित एवं प्रभाव विधि है। इस विधि में बीजों को 2, 3, 5 ट्राइफिनाइल टेट्राजोलियम क्लोराइड में कुछ समय के लिए भिगोया जाता है। बीज के जीवित ऊतक इस रसायन को अघुलनशील लाल यौगिक (फोर्माजन) में बदल देते हैं जबकि मृत ऊतक वैसे के वैसे ही रह जाते हैं।

ब. अलैंगिक प्रवर्धन में प्रयोग

कुछ रसायन व पादप वृद्धि नियामक, औद्यानिक फसलों के कायिक प्रवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मुख्यत: कलमों या दाबा में जड़ें सुगमता, जल्दी एवं अधिक संख्या में आने में सहायता करते हैं। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. कलमों का पादप वृद्धि नियामकों से उपचार

इन्डोल ब्यूटेरिक अम्ल का प्रयोग कलमों में जड़ें लाने के लिए विश्व स्तर पर किया जाता है। इसे साधारणत: 'मूलोत्पत्ति हॉर्मोन' भी कहा जाता है। इसकी सांद्रता वैसे तो फसल-विशेष के लिए भिन्न-भिन्न होती है, परंतु साधारणत: 2,000-5,000 पी.पी.एम. सांद्रता ही प्रयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ पौधशालाकर्मी एवं पादक प्रवर्धक 2,4-डी एवं नेफ्थेलिन एसिटिक अम्ल का प्रयोग भी मूलोत्पत्ति हॉर्मोन के रूप में करते हैं। पर्ण कलम एवं मूल कलमों में मूलोत्पत्ति के साथ-साथ ये प्ररोहों की वृद्धि में भी सहायता करते हैं। अत: ऐसी कलमों में प्ररोह की वृंद्धि हेतु काएनेटिन एवं बेंजाइल एडिनिन का प्रयोग काफी लाभप्रद रहता है।

2. कलमों का कवकनाशियों से उपचार

मूलोत्पत्ति या उसके बाद, कलमों को कई फफूंद ग्रसित करती हैं। कलमों एवं उनसे निकली जड़ों को फफूंदियों से बचाने हेतु कलमों का कवकनाशियों से उपचार आवश्यक हो जाता है। ऐसे उपचार हेतु केप्टान की आवश्यक मात्रा को इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल की मात्रा में मिलाकर कलमों को रोपित करने से पहले उपचारित करते हैं। इसके अतिरिक्त इस काम के लिए बिनोमिल भी काफी प्रभावी कवकनाशी माना गया है।

3. दाबा का उपचार

कई औद्यानिक फसलों के दाबा द्वारा प्रवर्धन में इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का मूलोत्पत्ति में विशेष योगदान होता है। दाबा द्वारा मुख्यत: लीची, अमरूद, क्रोटोन, नींबू, रबड़ आदि पौधे प्रवर्धित किए जाते हैं। इन पौधों से दाबा द्वारा पौधे तैयार करने हेतु पादप वृद्धि नियामकों को लेनालिन की लेई में तैयार करके लगाया जाता है।

4. ऊतक संवर्धन में प्रयोग

ऊतक संवर्धन, पादप प्रवर्धन की नई एवं आधुनिक विधि है। विदेशों में इस तकनीक द्वारा लाखों की संख्या में नए पौधे तैयार किए जाते हैं। हमारे देश में भी यह तकनीक धीरे-धीरे प्रचलित हो रही है। इस तकनीक द्वारा पौधे तैयार करने हेतु कई तरह के रसायनों एवं पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग किया जाता है। प्रवर्धन माध्यम (जैसे मुराशिगे एवं स्कूग, 1962, गैम्बोर्ग माध्यम, 1968) में जहां कई तरह के पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए कई रसायनों की आवश्यकता होती है वहीं कर्तोतक से प्रचुरोद्भवन हेतु ऑक्सिन एवं साइटोकाएनिन की विभिन्न सांद्रता की आवश्यकता होती है। पादप में मूलोत्पत्ति हेतु माध्यम में इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल की विशेष मात्रा डाली जाती है। ये सभी कार्य वातावरण की नियंत्रित दशाओं में किए जाते हैं। ❐

अध्याय-13

पादप प्रवर्धन में प्लास्टिक का प्रयोग

आधुनिक बागवानी में प्लास्टिक की भूमिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज के पौधशालाकर्मियों पादप प्रवर्धकों या मालियों में प्लास्टिक काफी लोकप्रिय है। पॉलिथीन का आविष्कार इंग्लैंड में सन् 1933 में हुआ। मालियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्लास्टिक का सर्वप्रथम उत्पादन 1938 में शुरू हुआ। आज बाजार में प्लास्टिक कई रंगों एवं मोटाइयों में उपलब्ध है। औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन में प्लास्टिक को निम्न तरीकों से प्रयोग करते हैं :

1. हरित गृह तैयार करने में

पॉलिथीन से बनाए गए हरित गृह कई देशों में औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन में प्रयोग किए जाते हैं। वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि प्लास्टिक की 700 गेज मोटाई से बने हरित गृह, कांच गृह-जैसा प्रभाव देते हैं। प्लास्टिक के प्रयोग के कुछ लाभ ये भी हैं कि इनसे सूर्य की किरणें अच्छी तरह से गुजर जाती हैं और ये सर्दियों में काफी गर्मी संगृहीत कर लेती हैं जो काफी लाभ का सौदा होता है। इस तरह के गृह विकसित देशों, जैसे हालैंड, डेनमार्क, बेल्जियम, जापान एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में फूलों एवं सब्जियों की पौद तैयार करने हेतु काफी लोकप्रिय हैं। हमारे देश में अब कम लागत के पॉलीहाउस में पौद तैयार करना काफी लोकप्रिय है।

2. पॉली-टनल बनाने में

कई देशों में कलमों एवं मूलवृंतों के पौधे तैयार करने के लिए पॉली-टनल का प्रयोग होता है। पॉली-टनल बनाने हेतु 200 से 300 गेज मोटाई की पॉलिथीन शीट, दोनों तरफ से खूंटों से बांध दी जाती है। बीच-बीच में लोहे की तार के रिंग रखे जाते हैं ताकि प्लास्टिक की टनल का बीच का हिस्सा पौधों को छूने न पाए। पॉली-टनल का प्रयोग मुख्यत: सर्दियों में किया जाता है, जब तापमान काफी कम होता है। तब पॉली-टनल में तापमान साधारणत: 4^{0}-5^{0} सेल्सियस बढ़ जाता है। पॉली-टनल में तैयार पौधे ओजस्वी होते हैं और उनकी पत्तियों में चमकीला हरा रंग आता है।

3. कलमों द्वारा प्रवर्धन में प्रयोग

कई औद्यानिक पौधों को पर्णीय एवं मृदुकाष्ठ कलमों से प्रवर्धित करते हैं। इस तरह

की कलमों में मूलन तभी संभव होता है जब इन्हें छाया में रखा गया हो और वातावरण में नमी हो। अब आर्द्रीकरण एवं मिस्ट (फौहरी) विधियां विकसित की गई हैं जो ऐसी कलमों में लगातार पानी की पतली तह बनाती हैं, जिससे कलमों से वाष्पोत्सर्जन बहुत कम परंतु मूलन अधिकाधिक होता है। प्रवर्धन चैम्बर में लगातार अधिकाधिक आर्द्रता रखने के लिए एवं पत्तियों व कलमों में लगातार नमी बनाए रखने के लिए पॉलिथीन का ढक्कन लगाया जाता है।

4. गूटी में पॉलिथीन का प्रयोग

पुराने समय जब लीची, नींबू, अमरूद आदि फलवृक्षों के नए पौधे गूटी से तैयार करने होते थे, तो वातावरण में आर्द्रता व माध्यम में नमी बनाए रखने हेतु इन्हें लगातार पानी दिया जाता था। परंतु अब गूटी में गीली मॉस या गीली मिट्टी लगाकर उसे पॉलिथीन की पट्टी से लपेटकर कसकर बांध दिया जाता है। ऐसा करने से दाबा के आधार पर नमी बनी रहती है और उससे जड़ें सुगमता से निकलती हैं। इस काम के लिए वैसे तो कई रंगों की पॉलिथीन प्रयोग की जा सकती है, परंतु पारदर्शी सफेद पॉलिथीन सबसे अधिक सफलता देती है।

5. पॉलिथीन का कलिकायन एवं कलम बंधन में प्रयोग

कई फलवृक्षों एवं शोभाकारी पौधों के प्रवर्धन हेतु कलिकायन व कलम बंधन की अनेकों विधियां विकसित की गई हैं। मूलवृंत पर सांकुर या कलिका चढ़ाने के लिए दोनों को जकड़कर बांधने हेतु 150 गेज मोटाई की पॉलिथीन का प्रयोग व्यावसायिक स्तर पर किया जाता है। पुराने जमाने में इस कार्य हेतु कई तरह के रेशों एवं स्थानीय उत्पादों-जैसी उपलब्ध सामग्री का प्रयोग किया जाता था। प्लास्टिक से जहां सांकुर व मूलवृंतों को कसकर बांधना आसान होता है वहीं इससे मिलाप के स्थान पर पानी जाने की संभावना भी न के बराबर होती है। जैसे-जैसे मूलवृंत व सांकुर का मिलाप सुदृढ होने लगता है, यह प्लास्टिक भी धीरे-धीरे अपने आप फट जाती है।

6. पॉलिथीन का थैलों के रूप में उपयोग

कलम-बंधित पौधों को अधिकतर मिट्टी के गमलों में रखा जाता है। इन गमलों के प्रयोग के कई लाभ हैं, परंतु सबसे बड़ा अवगुण यह है कि ये एक दम टूट जाते हैं और इनमें पौधों को दूर-दराज के क्षेत्रों में भेजना काफी कठिन होता है। इसके अतिरिक्त ये भारी भी होते हैं तथा इनका रख-रखाव भी खर्चीला होता है। अत: अब इन कार्यो के लिए पॉलिथीन के थैले प्रचलन में हैं। इन थैलों में पौधों का रख-रखाव आसान व कम खर्चीला होता है। ऐसे थैलों को पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थानांतरित करना बहुत ही आसान होता है। अब प्लास्टिक के थैले भी कई रंगों में आते हैं।

7. प्लास्टिक का गमलों के रूप में उपयोग

आधुनिक समय में कुछ पौधशालाकर्मी मिट्टी के गमलों की अपेक्षा पौधशाला में प्लास्टिक के गमलों का प्रयोग कर रहे हैं। ये गमले हालांकि कुछ मंहगे होते हैं परंतु इनका रख-रखाव बहुत ही असान होता है। इन्हें बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इनके टूटने का कोई भय नहीं होता है। यदि स्थान की कमी हो तो सब्जियों की पौद भी ऐसे गमलों में तैयार की जा सकती है।

8. प्लास्टिक के अन्य उपयोग

ऊपरलिखित उपयोगों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की प्लास्टिक को पलवार के तौर पर प्रयोग किया जाता है। पलवार हेतु काली पॉलिथीन का प्रयोग किया जाता है, परंतु अब पलवार हेतु कई रंगों की प्लास्टिक बाजार में उपलब्ध है।

❐

अध्याय-14

पौधशाला: महत्व, वर्गीकरण एवं रूपरेखा

पौधशाला उस स्थान को कहते हैं जहां पर औद्यानिक पौधों के नए पौधे तैयार किए जाते हैं। सस्य फसलों की अपेक्षा अधिकतर औद्यानिक फसलें दीर्घजीवी होती हैं। अत: यदि शुरू में किसी गलत किस्म या निम्न गुणवत्ता के पौधे का चुनाव करके, उसकी बागवानी कर कोई भूल कर दी जाए तो उसे फिर सुधारना नामुमकिन हो जाता है। अत: शुरू से ही हमें उच्च गुणवत्ता एवं किस्म-विशेष के पौधे का चयन करना चाहिए। ये पौधे हमें पौधशाला से प्राप्त होते हैं। अत: यदि पौधशाला की व्यवस्था वैज्ञानिक ढंग पर न हो तो बागवान को अस्वस्थ अथवा गलत किस्म के पौधे मिल सकते हैं, जिनका भविष्य में फलोत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। केवल विश्वनीय पौधशाला से ही पौधे खरीदने चाहिए और यदि संभव हो तो पौधे स्वयं ही तैयार करने चाहिए। अत: फल उद्यान की सफलता और फल व्यवसाय की प्रगति में वैज्ञानिक ढंग पर आधारित पौधशाला का विशेष महत्व है।

पौधशाला का महत्व

पौधशाला का महत्व निम्नलिखित बातों से विदित होता है :

1. छोटे पौधों की खेतों की अपेक्षा पौधशाला में अच्छी देखभाल हो सकती है।
2. वानस्पतिक विधियों द्वारा तैयार पौधों की देखभाल हेतु विशेष तकनीकी ज्ञान व अनुभव की आवश्यकता होती है, जो पौधशाला में संभव होता है।
3. बहुत-से औद्यानिक फसलों जैसे टमाटर, गोभी, पपीता आदि को सीधे खेत में बोने पर उनके बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। अत: उन्हें पौधशाला में तैयार करना आवश्यक हो जाता है।
4. अच्छी देखभाल एवं प्रबंधन व्यवस्था के लिए कई फसलों की कलमों को पहले पौधशाला में ही लगाना पड़ता है।
5. किसी भी फसल की पौद, जड़युक्त कलमों या कलमी पौधों के कठोरीकरण हेतु पौधशाला सबसे अच्छा स्थान होता है।
6. पौधों को प्राकृतिक आपदाओं से बचाने हेतु पौधशाला सबसे सुरक्षित स्थान होती है।

पौधशाला का वर्गीकरण

आकार के आधार पर पौधशाला को मुख्यत: दो वर्गों में बांटा गया है -

1. घरेलू पौधशाला 2. व्यावसायिक पौधशाला

1. घरेलू पौधशाला

यह बाग में छोटा-सा क्षेत्र होता है, जिसमें बाग में पौधों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए नए पौधे तैयार किए जाते हैं। ऐसी पौधशाला का मुख्य उद्देश्य उच्च गुणवत्ता के पौधे तैयार करना होता है। ऐसी पौधशाला में नए पौधे तैयार करने हेतु अक्सर कीमती प्रवर्धन विधियों का प्रयोग किया जाता है।

2. व्यावसायिक पौधशाला

ऐसी पौधशाला का मुख्य उद्देश्य लागत पर अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। ऐसी पौधशाला किसी शहर/कस्बे (शहरी पौधशाला) या गांव (देहाती पौधशाला) में होती है। ऐसी पौधशाला काफी बड़े क्षेत्र में होती है और इसमें प्रवर्धन की खर्चीली विधियों का कम से कम प्रयोग होता है।

अ. **देहाती पौधशाला:** ऐसी पौधशाला गांव के किसी रेलवे स्टेशन या राष्ट्रीय सड़क के आस-पास होती है। ऐसी पौधशाला का आकार अक्सर बहुत बड़ा होता है क्योंकि गांव में जमीन व मजदूरों की उपलब्धता आसान और सस्ती होती है। इसके अतिरिक्त ऐसी पौधशाला में रोपण सामग्री भी सस्ती होती है।

ब. **शहरी पौधशाला:** ऐसी पौधशाला किसी शहर या कस्बे में होती है। देहाती पौधशाला की अपेक्षा इसका आकार बहुत छोटा होता है, क्योंकि यहां जमीन व मजदूरों की उपलब्धता बहुत महंगी होती है। अत: रोपण सामग्री भी महंगी होती है।

आदर्श पौधशाला की रूपरेखा

पौधशाला प्रारंभ करने से पहले इसकी रूपरेखा आवश्यक है। इसका क्षेत्रफल पौधे तैयार करने की क्षमता पर निर्भर करता है। एक आदर्श पौधशाला स्थापित करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

(1) पौधशाला के लिए ऐसे स्थान का चयन करें जहां पर्याप्त मात्रा में सूर्य की रोशनी उपलब्ध हो।

(2) जहां तक संभव हो, पौधशाला अच्छे उत्पादन या मांग वाले क्षेत्र में होनी चाहिए।

(3) पौधशाला के लिए स्थान-विशेष की मृदा गहरी उपजाऊ, मृदाजनित रोगाणु रहित एवं अच्छे जल-निकास वाली होनी चाहिए।

(4) स्थान-विशेष पर मृदु जल की उपलब्धता हो।

(5) स्थान-विशेष की जलवायु औद्यानिक फसल के अनुरूप हो।

(6) स्थान-विशेष, संचार की सुविधा से जुड़ा हो और वहां पर आसानी से पहुंचा जा सके।

(7) पौधशाला में विभिन्न कार्यों हेतु सारे साल मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है। अत: जहां पौधशाला का व्यवसाय शुरू करना हो वहाँ मजदूरों की आसानी से उपलब्धता होनी चाहिए।

(8) स्थान-विशेष में या उसके नजदीक उर्वरक, पीडकनाशी, पादप वृद्धि नियामक, कलम-बंधनी मोम, लेनोलिन की लेई एवं विभिन्न प्रकार के औजार आसानी से उपलब्ध होने चाहिए।

(9) प्रवर्धन हेतु पौधशालाकर्मी के पास में वांछित मात्रा में मातृ पौधे एवं अन्य संसाधन उपलब्ध होने चाहिए।

एक आदर्श पौधशाला में निम्नलिखित भाग होते हैं नीचे लिखे भागों को ध्यान में रखकर व्यवस्था तैयार करनी चाहिए।

1) मातृ पौधों का स्थान

2) बीज की क्यारियां (बीजवाड़ी)

3) कायिक विधियों द्वारा पौधों के प्रवर्धन हेतु स्थान

4) क्यारी चक्र हेतु खाली स्थान

5) गमला क्षेत्र

6) पैकिंग क्षेत्र

7) रास्ते व सड़कें

8) कुआं या तालाब के लिए स्थान

9) कार्यालय, कार्यशाला व भंडार

10) प्रवर्धन हेतु विशेष संरचनाएं

11) प्रवर्धन संबंधी माध्यम एवं अन्य सामग्री

12) खाद के गड्ढे आदि

13) चारदीवारी

मातृ पौधे

पौधशाला में स्वस्थ एवं अच्छे मातृ पौधों का विशेष स्थान है। मातृ पौधे जिनसे सांकुर द्वारा नए पौधे बनाने हों, स्वस्थ एवं सही गुणों वाला होने चाहिए। अत: मातृ पौधे किसी अच्छी पौधशाला से खरीदकर लगाने चाहिए और उनका पौधशाला में विशेष स्थान होना चाहिए, जिससे भविष्य में पौधे तैयार किए जा सकें। मातृ पौधों पर नामपत्र अवश्य होने चाहिए जिस पर किस्म, पौधे की आयु, फलोत्पादन की दशा, फलों के गुण, और रोगों के प्रति प्रतिक्रिया आदि का उल्लेख हो।

बीज की क्यारियां

बीजवाड़ी पौधशाला का वह स्थान है जहां मूलवृंत या बीज द्वारा पौधे तैयार किए जाते हैं। इस काम हेतु उठी हुई (ऊंची) क्यारियां खुले स्थान में बनाई जानी चाहिए। बीजवाड़ी की मिट्टी को भी प्रयोग से पहले शोधित कर लेना चाहिए तथा इसे 2-3 वर्षों के बाद बदलते रहना चाहिए।

प्रवर्धित पौधों के लिए स्थान

विशेष कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों के लिए खुले स्थान की आवश्यकता होती है क्योंकि इन्हें मिट्टी की पिन्डी के साथ खोदकर निकाला जाता है। अत: पौधशाला का रेखांकन करते समय कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों के लिए समुचित स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए।

गमलों का स्थान

पौधशाला में गमलों में उगाए जाने वाले पौधों को आवश्यकतानुसार धूप वाले खुले तथा आंशिक छायादार स्थानों में रखना होता है। खुले स्थान में बीज द्वारा उगाए गए पपीते, फालसा, कटहल, शरीफा आदि के पौधे एवं छायादार स्थान में कायिक विधियों द्वारा तैयार पौधे रखने चाहिए। गमलों में पौधशाला की मिट्टी, रेत, पत्तियों की खाद, बालू और गोबर की खाद का मिश्रण भरना चाहिए। गमले की पेंदी में छेद के ऊपर कंकड़ रखकर गमले का भराव करना चाहिए ताकि जल-निकास अच्छा बना रहे।

आजकल गमले की बजाए अधिकतर पौधशालाकर्मी पॉलिथीन के लिफाफे में बीजारोपण या पौध रोपण करते हैं। इस प्रकार पौधशाला से पौधों को उंठाने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाने में सुविधा रहती है और पौधे क्षतिग्रस्त होने से भी बच जाते हैं।

स्टूल क्यारी

स्टूल क्यारी में मातृ पौधे साधारणत: 3 × 3 फीट की दूरी पर लगाए जाते हैं। आजकल कई फलवृक्षों का प्रवर्धन स्टूलिंग द्वारा किया जा रहा है। स्टूल क्यारी ऐसी जगह पर बनाई जानी चाहिए जो खुली हो और जहां सूर्य की पर्याप्त रोशनी मिलती रहे।

क्यारी चक्र हेतु खाली स्थान

कई सालों तक एक ही स्थान पर फसल-विशेष का प्रवर्धन करने से वहां पर कई प्रकार के रोगाणु अपनी जगह पक्की कर लेते हैं। अत: एक आदर्श पौधाशाला में कुछ खाली स्थान अवश्य रखा जाना चाहिए ताकि समय-समय पर पौधशाला में बीजारोपण या क्यारियों की अदला-बदली की जा सके और विशेष प्रकार के रोगाणुओं से भी बचा जा सके।

पैकिंग स्थान

पौधशाला में पैकिंग क्षेत्र का विशिष्ट स्थान होता है क्योंकि यहां पर पौधों को बेचने या दूरदराज के क्षेत्रों में भेजने से पहले पैकिंग की जाती है। जहां तक संभव हो, पैकिंग क्षेत्र कार्यालय के समीप होना चाहिए जहां से पैकिंग हेतु सामग्री, जैसे पॉलिथीन की थैलियां, रस्सी, मॉस, घास, सरकंडा घास, नामपत्र, पुआल आदि आसानी से पहुंचाई जा सके। यह स्थान खुला होना चाहिए, क्योंकि कई बार पौधों को पैकिंग के बाद कई दिनों तक रखना पड़ता है।

प्रबंधन हेतु विशिष्ट संरचनाएं

एक आदर्श पौधशाला में प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त संरचनाओं, जैसे ग्रीन हाउस, कांच घर या पॉलिथीन घर के लिए विशेष स्थान होना चाहिए। ऐसे घर खुले स्थान पर बनाए जाने चाहिए क्योंकि ऐसी संरचनाओं के संचालन हेतु पानी व बिजली की आवश्यकता होती है, अत: इन संरचनाओं का निर्माण कार्यालय के समीप ही करना चाहिए।

कार्यालय एवं भंडार

पौधशाला में पौद या पौधे खरीदने हेतु कई लोग आते हैं। अत: पौधशाला में एक सुंदर कार्यालय होना चाहिए, जो संभवत: पौधशाला के मुख्य द्वार पर हो तो अच्छा होता है।

सड़क व रास्ते

कार्यालय व पौधशाला के सारे भाग सड़क एवं छोटे-छोटे कच्चे या पक्के रास्तों से जुड़े होने चाहिए। रास्तों के किनारे कोई आकर्षक व सुंदर झाड़ी लगी होनी चाहिए। यह पौधशाला को और भी सुंदर बनाती है।

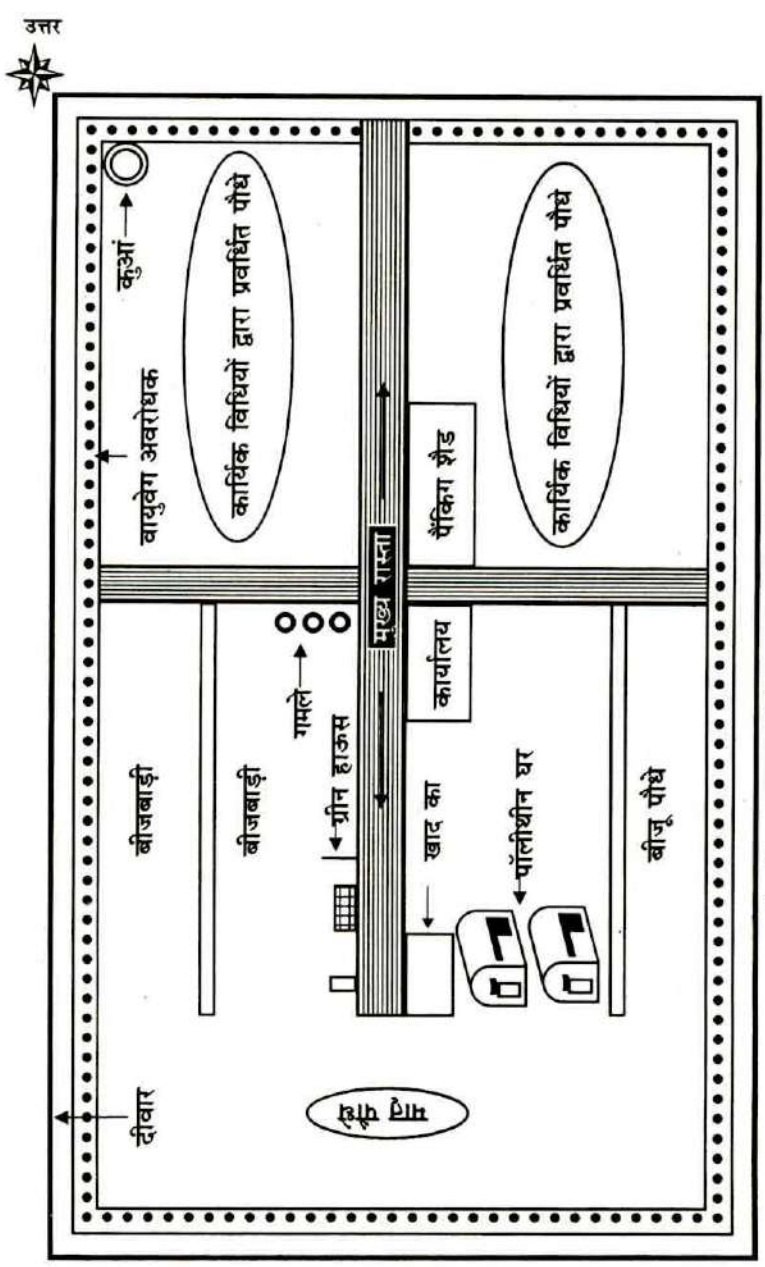

रेखाचित्र 8: आदर्श पौधशाला की रूपरेखा

सिंचाई की व्यवस्था

सिंचाई हेतु कुआं या तालाब की व्यवस्था पौधशाला के किसी विशेष स्थान पर होनी चाहिए। सिंचाई हेतु आधुनिक पौधशाला में कुहासा तकनीक, टपकाव विधि या छिड़काव प्रणाली की व्यवस्था होनी चाहिए।

खाद का गड्ढ़ा

एक आदर्श पौधशाला के किसी दूर कोने में खाद का गड्ढ़ा होना चाहिए। जगह-जगह खाद के गड्ढे होने से पौधशाला के आकर्षण व सुंदरता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आजकल केंचुआ खाद का प्रचलन भी बढ़ रहा है। यदि ऐसी खाद पौधशाला में ही तैयार कर ली जाए तो पौधशाला को और आकर्षक बनाने हेतु यह एक अच्छा कदम होगा।

प्रवर्धन माध्यम एवं अन्य सामग्री

पौधशाला में विभिन्न प्रवर्धन माध्यमों, जैसे पीट, वर्मिक्युलाइट, मॉस घास आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इनके भंडारण की भी सुरक्षित व्यवस्था होनी चाहिए। पौधशाला में प्रयुक्त होने वाले रसायनों एवं वृद्धि नियामकों को फ्रिज में रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

चारदीवारी व बाड़

जहां तक संभव हो, पौधशाला के चारों ओर ऊंची दीवार या कंटीले तार का बाड़ लगाया जाना चाहिए, जिससे जानवरों या तेज हवाओं से क्षति को रोका जा सके। पौधशाला के चारों ओर घनी झाड़ियों का बाड़ भी ठीक रहता है।

❐

अध्याय-15

पौधशाला में नेमी कर्षण क्रियाएं

पौधशाला में कई ऐसी क्रियाएं होती हैं जिन्हे हमें प्रतिदिन करते रहना चाहिए ताकि पौधशाला में लगे पौधों का ढांचा बना रहे और हमें उच्च गुणवत्ता के पौधे प्राप्त हो सकें। ऐसी कुछ क्रियाओं का वर्णन निम्नलिखित है:

1. कर्तन

पौधशाला में लगे झाड़ीदार पौधों को सही आकार व ढांचा प्रदान करने के लिए उनकी लगातार कटाई आवश्यक हो जाती है। उनमें लगातार कर्तन एवं काट-छांट से वे आकर्षक दिखते हैं और वे स्वस्थ भी रहते हैं। झाड़ीदार पौधों की सधाई वैसे तो कई आकारों में की जाती है, परंतु उनके वर्गाकार एवं पिरामिडीय रूप सबसे अच्छे लगते हैं। ये पौधे प्रतिदिन एवं शीघ्र वृद्धि करते हैं। अत: इनकी कर्तन एवं काट-छांट भी बार-बार करनी पड़ती है। कर्तन हेतु हमें हमेशा तेज एवं धारदार कर्तक का प्रयोग करना चाहिए।

2. निष्पत्रण

पौधों से पर्णसमूह हटाने की क्रिया को 'निष्पत्रण' कहते हैं। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य पौधों में वानस्पतिक वृद्धि को कम करके पुष्पन को बढ़ावा देना होता है। यह क्रिया विशेष रूप से शुष्क जलवायु में विशेष महत्व रखती है, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में अक्सर पानी का अभाव होता है और निष्पत्रण द्वारा वाष्पोत्सर्जन को कम करके पौधों की जल की मांग घटाई जाती है। पौधों को पौधशाला से खेत में स्थानांतरित करने या पैकिंग से पहले भी निष्पत्रण आवश्यक होता है। निष्पत्रण साधारणत: हाथों द्वारा किया जाता है, परंतु कई देशों में निष्पत्रक, जैसे पेंटाक्लोरोफिनोल आदि रसायन कुछ औद्यानिक पौधों में निष्पत्रण हेतु प्रयोग किए जाते हैं।

3. अप्ररोहन

अप्ररोहन क्रिया में पौधों के अवांछित प्ररोहों को हटाया जाता है। कुछ पुष्पीय पौधों के तने के किनारे से कई प्ररोह निकल आते हैं। यदि ऐसे प्ररोह पर पुष्प आने दिए जाएं, तो पुष्प का आकार, रंग व गुणवत्ता अनावश्यक रूप से प्रभावित होते हैं। अत: ऐसे अवांछित प्ररोहों को निकालकर पौधे में केवल कुछ ही प्ररोह रखे जाते हैं। प्ररोहों को हटाने

का कार्य मुख्यत: हाथों द्वारा किया जाता है। यह क्रिया पात्रे उत्पादित पुष्पीय पौधों में बहुत ही महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि ऐसे पौधों को हम प्रदर्शनी आदि में ले जाते हैं।

4. निष्कलिकायन

कई बार पौधशाला में पौधों में असंख्य वानस्पतिक व पुष्पीय कलिकाएं आ जाती हैं। ऐसी कलिकाएं पौधे की बाकी कलिकाओं के पोषक तत्वों एवं पानी आदि को बांटकर वांछित पुष्प के आकार व गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। अत: पौधे के रस को मुख्य टहनियों या कलिकाओं की ओर प्रेरित करने के लिए पौधों से अवांछित कलिकाओं को शुरू में ही हटा दिया जाता है। इस क्रिया को 'निष्कलिकायन' कहते हैं। यह क्रिया मुख्यत: एकवर्षीय पुष्पीय पौधों को या शाकीय बहुवर्षी पौधों, विशेष रूप से प्रदर्शनी हेतु तैयार करने के उद्देश्य से की जाती है।

5. पलवारना

पौधशाला में पलवारना हेतु किसी पलवार को क्यारियों में बिछाया जाता है, ताकि क्यारी का तापमान, नमी एवं खरपतवार आदि नियंत्रित रहे। क्यारियों में बोए बीजों को बार-बार सिंचाई करनी पड़ती है, जिससे बीजों के बहने का भय रहता है। अत: क्यारियों पर पलवार के प्रयोग से जहां बीज बहने से बच जाते हैं, वहीं इन्हें पक्षियों द्वारा क्षति से भी आसानी से बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पलवार, पौध को पाले से भी बचाती है। पलवार हेतु घासफूस, पुआल, सूखी पत्तियां या स्थानीय व्यर्थ सामग्री आदि का प्रयोग उचित रहता है। आजकल पलवारा हेतु विभिन्न रंगों की पॉलिथीन का प्रयोग भी किया जा रहा है।

6. संकुचन

संकुचन प्रक्रिया में प्ररोह की कुछ पत्तियों सहित अग्र भाग को निकाला जाता है। इस क्रिया को 'अवरोधन' भी कहते हैं। संकुचन का मुख्य उद्देश्य पौधे में झाड़ीदार वृद्धि को प्रोत्साहन देकर अधिकाधिक पुष्प प्राप्त करना होता है। यह क्रिया मुख्यत: एकवर्षीय पुष्पी एवं शाकीय बहुवर्षीय पौधों में की जाती है। कुछ फूलों जैसे डहेलिया, गुलदाऊदी, गेंदा, कार्नेशन आदि में तो यह अतिआवश्यक क्रिया मानी गई है। आम की आम्रपाली किस्म को बौना रखने एवं प्रतिवर्ष फलन हेतु विशेष प्रकार की संकुचन की विधि मानकीकृत की गई है। संकुचन हेतु किसी औजार की आवश्यकता नहीं होती और इसे आसानी से हाथों द्वारा किया जा सकता है। यदि पौधों को किसी प्रदर्शनी के लिए तैयार करना हो तो उनमें संकुचन प्रक्रिया अति आवश्यक हो जाती है।

7. द्वितीय स्थानांतरण

पौद को किसी एक स्थान या गमले से दूसरे स्थान या गमले में स्थानांतरण करने की क्रिया को द्वितीय स्थानांतरण कहते हैं। इस क्रिया से पौद में जड़ें अच्छी तरह विकसित होती हैं एवं उनकी वृद्धि भी अच्छी होती है। यह क्रिया बहुत ही सावधानी से करनी चाहिए क्योंकि पौद की जड़ें एवं प्ररोह बहुत ही नाजुक होते हैं और थोड़ी-सी असावधानी से ये टूट सकती हैं। इस क्रिया हेतु गमले या ट्रे में किसी छड़ी की सहायता से एक छेद किया जाता है। बाद में पौद इस छिद्र में रोपित कर दी जाती है। ऐसी पौद जिसमें 4-6 पत्तियां आ चुकी हों वे, द्वितीय स्थानांतरण हेतु ठीक रहती हैं।

8. छायाकरण

पौधशाला में लगे सभी पौधे बहुत ही नाजुक होते हैं और गर्मियों में सूर्य की गर्मी व सर्दियों में कम ताप द्वारा आसानी से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। अत: पौधों का गर्मी के दौरान छायाकरण एक बहुत आवश्यक क्रिया मानी जाती है। इसी प्रकार शीत ऋतु में पौधों की कम ताप से रक्षा भी आवश्यक हो जाती है। छायाकरण हेतु पौधशाला में घास या पुआल का छप्पर डालना लाभप्रद रहता है। सर्दियों में पौधशाला में कम लागत के हरित गृह बना लेने चाहिए। सर्दियों में प्रत्येक फलवृक्ष के पौधे को पुआल से ढक लेना चाहिए। पौधशाला के चारों ओर वायुरोधक वृक्षों की यदि दो कतारें लगी हों तो पौधों में गर्मियों में गर्मी से एवं सर्दियों में पाले एवं सर्दी से कम क्षति होती है।

9. खूंटी लगाना

पौधशाला में कुछ पौधे दुबले व पतले होते हैं और ठीक से वृद्धि नहीं कर पाते हैं। अत: उन्हें किसी सहारे की आवश्यकता होती है। ऐसे पौधों को किसी खूंटी से बांध दिया जाता है। खूंटीकरण हेतु बांस, काट-छांट से बची लकड़ी, पटसन, कपास या मक्का के सूखे ठंडलों का प्रयोग किया जा सकता है।

10. सधाई एवं काट-छांट

सधाई एवं कांट-छांट पौधशाला में की जाने वाली दो परस्पर सहयोगी क्रियाएं हैं। सधाई मुख्यत: पौधों को सही आकार देने व ढ़ांचा तैयार करने के लिए की जाती है जबकि काट-छांट का मुख्य उद्देश्य पौधे से फलन लेना होता है। दोनों क्रियाओं में पौधे के अवांछित भागों, जैसे शाखाओं, टहनियों, प्ररोहों, फूलों या फलों को हटाना होता है। इन दोनों क्रियाओं हेतु पौधशाला कर्मी को पौधे के पुष्पन, फलन आदि के बारे में तकनीकी ज्ञान की जानकारी होनी चाहिए। निष्कालिकायन, संकुचन, निष्पत्रण, अप्ररोहण आदि सभी क्रियाएं सधाई एवं काट-छांट आदि क्रियाओं का भी हिस्सा होती हैं।

11. पानी एवं पोषण देना

बहुत-से पौधशालाकर्मी अक्सर पौधशाला में प्रतिदिन पानी देते हैं जो एक बहुत गलत बात है। प्रतिदिन सिंचाई मात्र एक सप्ताह की पौद तक ही देनी चाहिए। उसके बाद बहाव विधि से पानी देना उचित रहता है। अब आधुनिक पौधशालाओं में सिंचाई की ड्रिप या फुहारी प्रणालियां लगाई जा रही हैं, जिससे एक ओर पानी की खपत कम होती है तो दूसरी ओर पौद भी स्वस्थ, हरी-भरी और रोगमुक्त मिलती है। पौधशाला के पौधों के पोषण हेतु द्रव उर्वरक प्रयोग करने चाहिए क्योंकि ऐसे उर्वरकों से छोटे पौधों को पोषक तत्व आसानी से एवं शीघ्र मिल जाते हैं।

❐

अध्याय-16

पौधशाला में पौद की देखभाल

ऐसा माना जाता है कि पौधशाला में नए पौधे तैयार करना तो आसान होता है परंतु उन्हें सही दशा में रखना काफी कठिन होता है। पौधों की संभाल एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। पौधशाला में पौधे नाजुक होते हैं और वे शीघ्र ही वातावरण को असामान्य दशाओं, रोगों एवं कीटों द्वारा प्रभावित होते हैं। अत: इन पौधों का हर अवस्था में प्रबंधन अति आवश्यक हो जाता है। पौधशाला के छोटे पौधों के प्रबंधन हेतु निम्नलिखित क्रियाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए :

1. सिंचाई समय से करें

पौध/पौद को पानी की निरंतर आवश्यकता होती है। शुरू में इन्हें लगातार सिंचाई की आवश्यकता होती है, और यदि इसमें थोड़ी-सी कमी हो जाए तो वे जल रहित हो जाते हैं। हालांकि अधिक सिंचाई भी पौद के लिए उतनी ही क्षति पहुंचाती है जितनी कि कम सिंचाई। पौद में स्फीति बनाए रखने के लिए गर्मियों में 2-3 दिनों के अंतराल व सर्दियों में साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। क्यारियों के नजदीक जलनिकास की भी सुचारु व्यवस्था होनी चाहिए नहीं तो जलभराव की स्थिति पौद के लिए काफी हानिकारक हो सकती है।

2. पोषण प्रबंधन

खेत में लगे पौधों की तरह पौधशाला के पौधों को भी उचित वृद्धि व बढ़वार के लिए संतुलित पोषण/आहार की आवश्यकता होती है। इन्हें भी मुख्य तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, केल्सियम, मैग्नीशियम व सल्फर आदि) एवं सूक्ष्म तत्वों (जिंक, लौह, बोरॉन, मॉलिब्डेनम, क्लोरिन आदि) की सुचारु मात्रा की आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों में से किसी एक की कमी भी पौद की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। अत: पौधशालाकर्मी को प्रवर्धन माध्यम में इन पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिए। पौधशाला में पौध में कई तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। परंतु वे लक्षण इतने विकट होते हैं कि पौधशालाकर्मी को यह पता ही नही चलता कि असल में कौन से पोषक तत्व की कमी है। इसके अतिरिक्त यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि कभी-कभी तत्व-विशेष प्रत्येक पौद में कमी के एक तरह के लक्षण नहीं देता है। उससे

समस्या और भी जटिल हो जाती है। फिर भी पौद में प्रमुख तत्वों की कमी के लक्षणों का ब्योरा निम्नलिखित सारणी-3 में दिया गया है:

सारणी 3: पौध/पौद में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

पोषक तत्व	कमी के लक्षण
नाइट्रोजन	पौध/पौद की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं उनमें हरिमाहीनता हो जाती है। पत्तियों के वृंत छोटे, पतले व कमजोर हो जाते हैं।
फॉस्फोरस	पत्तियां लाल या बैंगनी रंग की हो जाती हैं। नीचे की पत्तियां पीली पड़कर भूरी व अंत में काली पड़ जाती हैं।
मैग्नीशियम	पौद की निचली पत्तियां हरिमाहीन या चितकबरी हो जाती हैं एवं इनके किनारे ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं। पर्णवृंत छोटे व पतले हो जाते हैं।
पोटैशियम	निचली पत्तियों के सिरे व शिराओं में मृत चित्तियां बन जाती हैं। पूर्णवृंत व अंत:गांठे छोटी हो जाती हैं।
जिंक	निचली पत्तियों के काफी हिस्से पर मृत चित्तियां बन जाती हैं। पत्तियां मोटी व अत्यधिक छोटी पड़ जाती है जो दिखने में पुष्पाकार दिखती हैं।
कैल्सियम	शुरू में नई पत्तियों के सिरे 'हुक' जैसे बनकर पत्तियों के सिरे व किनारे धीरे-धीरे सूख जाते हैं।
बोरॉन	नई पत्तियों के सिरे की कलिकाओं के आधार हरे होते हैं। बाद में ये पत्तियां व्यवस्थित हो जाती हैं और सिरों से सूख जाती हैं।
कॉपर	नई पत्तियां या तो मुरझा जाती हैं या हरिमाहीन दिखाई पड़ती हैं। वृंत, पत्ती का भार सहने में अक्षम होता है एवं छाल भी फट जाती है।
मैंगनीज	नन्हीं पत्तियों में मृत चित्तियां बिखरी हुई पाई जाती हैं। पत्तियों की छोटी शिराएं गहरी हरी दिखती हैं।
सल्फर	नन्हीं पत्तियां हरिमाहीन हो जाती हैं परंतु शिराएं या शिराओं के बीच का हिस्सा हल्का हरा होता है। पौध/पौद का तना बारीक परंतु सीधा रहता है।
लौह	नन्हीं पत्तियां हरिमाहीन दिखती हैं परंतु मुख्य शिराएं हरी रहती हैं। पर्णवृत छोटे व बारीक होते हैं।

पोषक तत्वों की कमी को दूर करने की विधियां

पौधशाला के पौधों में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी को दूर करने हेतु उस तत्व को मृदा में मिलाकर या पर्णीय छिड़काव द्वारा दूर कर सकते हैं। प्रमुख पोषक तत्वों की कमी को दूर करने हेतु निम्नलिखित उपाय उपयोगी रहते हैं :

नाइट्रोजन

नाइट्रोजन की कमी को दूर करने के लिए किसी भी नाइट्रोजनी उर्वरक की आवश्यक मात्रा को मृदा में मिलाएं। इसके अतिरिक्त पौधों की वृद्धि के दौरान यूरिया (1 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव भी काफी लाभदायक रहता है।

फॉस्फोरस

फॉस्फोरस की मानकीकृत मात्रा का प्रयोग करें। हालांकि फॉस्फोरस का पर्णीय छिड़काव लाभकारी नहीं रहता है परंतु सिंगल सुपर फॉस्फेट (1 प्रतिशत) का छिड़काव फॉस्फोरस की तुरंत पूर्ति के लिए लाभ देता है।

पोटैशियम

पोटाश की पूर्ति हेतु पोटैशियम सल्फेट या पोटैशियम क्लोराइड (1 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव अत्यत लाभकर होता है, परंतु पोटैशियम क्लोराइड (म्यूरेट ऑफ पोटाश) का छिड़काव क्षारीय या लवणीय मृदा में कदापि नहीं करना चाहिए।

कैल्सियम

पौधशाला की मृदा या प्रवर्धन माध्यम में पी.एच. मान के अनुरूप चूने की भरपूर मात्रा डालनी चाहिए। परंतु फिर भी इसकी कमी होने पर कैल्सियम नाइट्रेट (1 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव करें।

मैग्नीशियम

पौधशाला की मृदा या प्रवर्धन माध्यम में डोलामाइट या जिप्सम डालने मैग्नीशियम

की कमी दूर होती है। मैग्नीशियम सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव भी काफी लाभकारी रहता है।

जिंक (जस्ता)

पौधशाला की मृदा या प्रवर्धन माध्यम में प्रति हेक्टेयर 20-25 किग्रा. जिंक सल्फेट डालने या इसके 0.5 प्रतिशत पर्णीय से जिंक की कमी दूर हो जाती है।

लौह

पौधशाला की मृदा या प्रवर्धन माध्यम में प्रति हेक्टेयर 40-50 किग्रा. फैरस सल्फेट डालने या इसके 0.5 प्रतिशत पर्णीय छिड़काव से लौह की कमी दूर हो जाती है।

मैंगनीज

पौधशाला की मृदा या पादप प्रवर्धन माध्यम में प्रति हेक्टेयर 20-25 किग्रा. मैंगनीज सल्फेट डालने या इसके 0.2-0.4 प्रतिशत पर्णीय छिड़काव से मैंगनीज की कमी को कम किया जा सकता है।

कॉपर

पौधशाला की मृदा में प्रति हेक्टेयर 10-12 किग्रा, सल्फेट डालने या इसके 0.5 प्रतिशत पर्णीय छिड़काव से इसकी कमी दूर की जा सकती है।

बोरॉन

पौधशाला की मृदा या प्रवर्धन माध्यम में 15-20 किग्रा. बोरेक्स डालने या इसके 0.2-0.5 प्रतिशत पर्णीय छिड़काव से पौधशाला के पौधों में बोरॉन की कमी दूर होती है।

मॉलिब्डेनम

अमोनियम मॉलिब्डेट (0.1 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव या प्रति हेक्टेयर 1-2 किग्रा. डालने से पौधशाला के पौधों में मॉलिब्डेनम की कमी दूर हो जाती है।

प्राय: यह देखा गया है कि इन पोषक तत्वों के लक्षण आने पर इन्हें मृदा में डाला जाता है जोकि ठीक नहीं होता है। इसके अतिरिक्त पौधशाला के पौधे पर्णीय छिड़काव हेतु अनुक्रियात्मक होते हैं। पर्णीय छिड़काव से हमें तुरंत लाभ मिलता है और पोषक तत्वों की क्षति भी कम होती है। अत: पौधशाला में हमें पोषक तत्वों की कमी दूर करने हेतु पर्णीय छिड़काव ही करना चाहिए। पर्णीय छिड़काव तभी करना चाहिए जब पौधों में भरपूर पर्ण समूह विकसित हों। इसके अतिरिक्त पर्णीय छिड़काव हमेशा सुबह या सायंकाल

करना चाहिए। जब आसमान में बादल हों या बरसात का माहौल हो तो पर्णीय छिड़काव कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे में पोषक तत्व धुल जाते हैं। इसके अतिरिक्त पर्णीय घोल में टवीन -20 या अन्य क्लेदक अवश्य डालना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार अवांछित पौधे होते हैं जो पोषक तत्वों एवं नमी को ग्रहण कर पौधशाला के पौधों की वृद्धि एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। कभी-कभी खरपतवार कई प्रकार के कीटों को भी आकर्षित करते हैं जो बाद में पौधों को खा जाते हैं। क्योंकि पौधशाला में पौधे अधिकतर छोटे-छोटे होते हैं और यदि वहां खरपतवार अधिक संख्या में हो जाएं तो फिर उन्हें नियंत्रित करना काफी कठिन हो जाता है। अत: पौधशाला की क्यारियां हमेशा खरपतवार रहित होनी चाहिए। पौधशाला में खरपतवार नियंत्रण हेतु निराई-गुड़ाई सबसे अच्छी विधि है। इससे क्यारियों एवं पौधों में हवा का आदान-प्रदान होता है। इसके अतिरिक्त किसी खरपतवार-विशेष के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी का प्रयोग भी किया जा सकता है। पौधशाला की क्यारियों के अतिरिक्त पानी का नालियां एवं क्यारियों के मुडेर आदि भी खरपतवार रहित होने चाहिए।

पादप रक्षण

पौधशाला में पौधे काफी छोटे होते हैं एवं वे अधिक व कम तापमान, कीटों एवं रोगों के आक्रमण हेतु काफी संवदेनशील होते हैं। गर्मियों में गर्म एवं शुष्क हवा (लू) एवं सर्दियों में अति ठंडी हवाएं पौधशाला के पौधों को क्षतिग्रस्त करते है। अत: पौध/पौद को गर्मियों में सूर्य की गर्मी एवं सर्दियों में सर्दी से बचाने हेतु कोई न कोई प्रबंध अवश्य होना चाहिए। गर्मियों में पौधशाला के ऊपर घास-फूस या पुआल का छप्पर बना देना चाहिए। सर्दियों में पौधों के ऊपर पॉलिथीन का तम्बू बनाना ठीक रहता है। पौधशाला के चारों ओर वायुरोधक पौधों के रोपण से गर्मियों व सर्दियों में लाभ रहता है। पौधशाला में पौधे पाले से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। अत: पाले से बचाने हेतु भी कोई न कोई प्रबंध अवश्य होना चाहिए।

मौसम के विभिन्न कारकों से बचाव के अतिरिक्त, हानिकारक कीटों एवं रोगों के प्रति भी सचेत रहना चाहिए। पौधशाला में पौध/पौद को भी कई प्रकार के कीट एवं रोग क्षति पहुंचाते हैं। अत: पौध/पौद को स्वस्थ रखने हेतु विशेष प्रबंधन व्यवस्था होनी चाहिए। पौध में लगने वाले प्रमुख हानिकारक कीटों एवं रोगों का ब्योरा सारणी-4 में दिया गया है।

सारणी-4: पौध/पौद में लगने वाले प्रमुख कीट, रोग एवं उनके नियंत्रण के उपाय

अ. प्रमुख कीट	प्रबंधन
शल्क कीट	ये कीट पौद से रस चूसते हैं। इनके नियंत्रण हेतु मेटासिस्टॉक्स (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें। 15 दिन बाद एक छिड़काव दोबारा करें। इसके नियंत्रण हेतु हिन्दूस्तान पेट्रोलियम तेल का छिड़काव भी लाभकारी रहता है।
थ्रिप्स	ये कीट भी पौध/पौद से रस चूसकर क्षति पहुंचाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए मेटासिस्टॉक्स या रोगर (0.05 प्रतिशत) के 15 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव लाभकारी रहते हैं।
मीली बग	मीली वग की मादाएं पौध की वानस्पतिक कलियों से रस चूसकर क्षति पहुंचाती हैं। इसके नियंत्रित करने के लिए निम्न उपाए अपनाने चाहिए : 1. प्रौढ़ मादाओं को एकत्रित कर मार डालें। 2. दिसंबर व जनवरी में मृदा की खुदाई करें ताकि इन कीटों के प्यूपे मर जाएं या उन्हें पक्षी खा जाएं। 3. फरवरी-मार्च में पौद पर मेटासिस्टॉक्स या रोगर (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें। 4. मातृ पौधे के तने पर प्लास्टिक की 15-20 सेमी. चौड़ी पट्टी बांधें।
सफेद मक्खी	सफेद मक्खी बहुत ही छोटी होती है जो पौद से रस चूसती हैं। ये रोगवाहक कीट का काम करती हैं और पौध में विषाणु रोग फैलाती हैं। इन्हें नियंत्रित करने के लिए फॉस्फेमिडॉन (0.02 प्रतिशत) या अन्य सर्वांगी कीटनाशी का छिड़काव करें।
बरूथी	पौध में कई तरह के बरूथी ग्रसित करते हैं। इन्हें नियंत्रित करने के लिए डाइकोफोल (0.05 प्रतिशत) एवं घुलनशील गंधक (0.02 प्रतिशत) या अन्य ऐकेरसनाशी का छिड़काव करना चाहिए।

पर्ण-भक्षी इल्लियां	ये कीट पत्तियों के कोमल हिस्सों को सफाचट कर जाते हैं। इनके नियंत्रण हेतु सेविन (0.01 प्रतिशत) या नीम तेल (1 प्रतिशत) का छिड़काव प्रभावी होता है।
कटुआ कीट	कटुआ कीट पौध का बहुत बड़ा दुश्मन है। यह रात के समय पौद की जड़ों को खाता है। इसे निम्न लिखित उपायों द्वारा नियंत्रित करते हैं 1. प्रौढ़ कीटों को पकड़ने हेतु पौधशाला में प्रकाशीय ट्रैप लगाएं। 2. विषाक्त विलोभक का प्रयोग करें जिसमें मेलाथियॉन (0.1 प्रतिशत), गुड़ व गेहूं का चोकर मिला हो। 3. कटुआ के संभावित आक्रमण से पहले ही पौधशाला में मेलाथियॉन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें।
पर्ण सुरंगक	ये कीट पौद की पत्तियों में सुरंगे बनाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए पत्तियों की वृद्धि (फरवरी-मार्च) के दौरान मेटासिस्टॉक्स (0.05 प्रतिशत) के 15 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव काफी प्रभावी रहते हैं।
घोंघे	बरसात के दिनों में घोंघे लगभग प्रत्येक पौधशाला में क्षति पहुंचाते हैं। इन्हें निम्नलिखित विधियों से नियंत्रित कर सकते हैं : 1. प्रौढ़ घोंघों को चुनकर मार डालें। 2. साधारण नमक (2 प्रतिशत) का छिड़काव करें या सीधा घोंघे पर बुरक दें। 3. मेटलाडिहाइड की गोलियों का प्रयोग करें।
ब. रोग	
आर्द्र पतन	1. इस रोग से बचाव हेतु बीजों को बोने से पहले सिरेसन, थीरम या एग्रोसन (2 ग्राम/किग्रा. बीज) से उचारित करें।

2. पौद पर केप्टॉन या बेविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता

चूर्णिल आसिता के संभावित आक्रमण से पहले पौधशाला में केराथेन या केलिक्सिन या घुलनशील गंधक (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। यदि आसमान में बार-बार बादल आएं या तो वर्षा हो तो एक छिड़काव पुन: करें।

पर्णचित्ती

पौध/पौद की पत्तियों में तरह-तरह के पर्ण चित्ती रोग लगते हैं। इनके नियंत्रण के लिए डाइथेन-जेड-78 या बेविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का एक छिड़काव काफी प्रभावी रहता है।

पर्ण अंगमारी

पौध में अंगमारी को रोकने या नियंत्रित करने हेतु डाइथेन-जेड-78 या बेविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का एक छिड़काव काफी प्रभावी होता है।

शीर्षारंभी क्षय

यह रोग पौधशाला में मातृ पौधों को लगता है। इसे रोकने हेतु निम्नलिखित उपाय कारगर रहते हैं :

1. पौधे के मृत भाग को काट दें।
2. काट-छांट के बाद कटे भाग पर बोर्डो (0.5 प्रतिशत) लेई अवश्य लगाएं।
3. जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई पड़ें, तो तुरंत बेनलेट (0. 2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

❐

अध्याय-17

पौध एवं पौद का विपणन

पौधशाला का मुख्य उद्देश्य या स्वयं के बाग, सब्जी उत्पादन या बाहरी लोगों हेतु पौध एवं पौद तैयार करना होता है, जिससे अधिक से अधिक आय हो। अत: पौधशाला से अधिकाधिक लाभ लेने हेतु प्रवर्धक को पौधशाला से पौध एवं पौद निकालने, पैंकिग एवं भंडारण आदि का संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

पौधशाला से पौध/पौद निकालना

पौधशाला में तैयार पौध को निकालकर किसी स्थायी स्थान में लगाना होता है। अत: नाजुक पौध को वहां से निकालना होता है। यह क्रिया करने में जितनी सरल है, व्यवहार में उतनी ही मुश्किल भी है, क्योंकि पौध निकालने में थोडी-सी असावधानी भी इसकी स्थायी स्थान पर स्थापना को प्रभावित कर सकती है।

अत: सदैव हरे रहने वाले पौधों, जैसे आम, अमरूद नींबू, लीची आदि की पौध को हमेशा मिट्टी की पिंडी के साथ निकालें। हालांकि पर्णपाती फलवृक्षों जैसे अंगूर, आड़ू, सेब, अखरोट, बादाम आदि की पौध को बिना मिट्टी की पिंडी से भी निकाल सकते हैं। पौध के जड़तंत्र को क्षति से बचाने हेतु पौध निकालने से 3-4 दिन पहले सिंचाई अवश्य कर लें। बरसात में यदि वर्षा हो रही हो तो पौध नहीं निकालनी चाहिए, क्योंकि ऐसे मौसम में मिट्टी की पिंडी नहीं बन पाती। एक पुरानी परंतु अति आवश्यक विधि के अनुसार पौध बेचने से लगभग एक महीना पहले इसकी मूसला जड़ें काट देनी चाहिए। ऐसा करने से पौध में द्वितीयक जड़ें निकल आती हैं जो पौध को स्थाई स्थान में लगाने पर उसकी शीघ्र स्थापना में सहायता करती हैं।

पौध एवं पौद की पैकिंग

हमारे देश में पौध की पैकिंग पर प्राय: ध्यान नहीं दिया जाता है। परंतु व्यावसायिक पौधशाला प्रबर्धक को समझ लेना चाहिए कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। यदि पौध को दूर-दराज के स्थान पर ले जाना हो तो पौध की पैकिंग पर और भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। पौध का अच्छा मूल्य प्राप्त करने हेतु पौध की पैकिंग आकर्षित होनी चाहिए। एक अच्छी पैकिंग सामग्री में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. पैकिंग सामग्री सस्ती हो एवं आसानी से प्राप्त हो।
2. जिस पौध की पैकिंग करनी हो, पैकिंग सामग्री उसी के अनुरूप हो।
3. यह पौध को सही दशा में रखे।
4. यह पौध की गुणवत्ता को प्रभावित न करे।
5. यह आकर्षक हो।
6. यह पौध के सूखने व अन्य क्षति के बचाए रखने में सक्षम हो।
7. ढुलाई के दौरान यह क्षतिग्रस्त न हो एवं पौधे को सुरक्षित रखने में सक्षम हो।
8. यह भारी न हो।

पैकिंग सामग्री

हमारे देश में पौध की पैकिंग हेतु कई प्रकार की सामग्री प्रयोग में लाई जाती है। जैसे हेसियन क्लॉथ (कपड़ा), सेकिंग क्लॉथ, पॉलिथीन, पुआल, मॉस एवं सूखी घास आदि। हेसियन एवं सेकिंग घास तो लगभग हर कोई पौधशालाकर्मी प्रयोग करते हैं, परंतु आधुनिक पौधशाला कर्मी पॉलिथीन का प्रयोग करते हैं। फलवृक्षों की पौध में मिट्टी की पिंडी के चारों ओर सूखी घास या पुआल लपेटना एक आम बात है। सब्जियों एवं फूलों की नाजुक पौध/पौद को पहले गीली मॉस में लपेटते है, एवं बाद में उन्हें हेसियिन क्लॉथ में पैक करते हैं। स्ट्राबेरी के उपरिभूस्तरी को भी पहले गीली मॉस से लपेटते हैं तथा बाद में हेसियन क्लॉथ या पुआल में पैक करते हैं।

पौध एवं पौद को बेचना

हमारे देश में विपणन सबसे कठिन कार्य है, क्योंकि हमारे देश में ऐसे कार्य के लिए कोई विपणन प्रणाली नहीं है। यही कारण है कि उच्च गुणवत्ता की पौध या पौद के भी भारतीय पौधशालाकर्मी को अच्छे दाम नहीं मिल पाते हैं। बाजार में पौध या पौद का अच्छा मूल्य प्राप्त करने के लिए पौधशालाकर्मी को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :

1. पौध/पौद उच्च गुणवत्ता की होनी चाहिए।
2. पौध/पौद एक समान आकार की होनी चाहिए।
3. पैकिंग से पहले पौध/पौद का श्रेणीकरण अवश्य कर लें।
4. पौध/पौद को पैकिंग हेतु आकर्षक सामग्री का प्रयोग करे।

5. पौध/पौद का पर्णसमूह अति आकर्षक हो एवं यह कीट एवं रोगों से मुक्त हो।
6. पौध/पौद पर लेबल लगा होना चाहिए जिस पर किस्म-विशेष का नाम आदि लिखा हो।
7. ढुलाई के दौरान इस प्रकार की सावधानियां बरतें ताकि पौध/पौद को किसी भी तरह की क्षति न हो।
8. जहां पौध/पौद रखी हो वहीं पर उसके लगाने, रख-रखाव, कर्षण क्रियाओं एवं अन्य प्रबंधन व्यवस्था के बारे में कुछ साहित्य सामग्री, जैसे पेम्फलेट, लीफलेट आदि अवश्य होनी चाहिए।

❐

अध्याय-18

औजार, उपकरण एवं अन्य सहायक सामग्री

पौधशाला में प्रतिदिन कई प्रकार के कार्य किए जाते हैं। इन कार्यों को पूरा करने हेतु कई प्रकार के औजार, उपकरण एवं अन्य सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। कुछ औजार तो साधारण होते हैं और कुछ नित्य दिन प्रयोग होते हैं। परंतु कुछ विशेष प्रकार के औजार होते हैं, जिन्हें विशेष मौके पर ही प्रयोग करते हैं। इस अध्याय में पौधशाला में प्रयुक्त होने वाले ऐसे ही प्रमुख औजारों (रेखाचित्र-9) एवं अन्य सामग्री का विवरण दिया गया है।

चाकू

पादप प्रवर्धन में दो तरह के चाकू प्रयोग किए जाते हैं (1) कलिकायन हेतु चाकू, व (2) कलम-बंधन हेतु चाकू। हालांकि कलम-बंधन हेतु भी कलिकायन करने वाला चाकू ही प्रयोग कर लिया जाता है। कलम-बंधन हेतु प्रयुक्त होने वाले चाकू का ब्लेड सीधा व 7.5 सेमी. लंबा होता है तथा इसकी हत्थी लम्बी व दृढ़ होती है। इसके विपरीत कलिकायन वाले चाकू का ब्लेड़ सीधा व तिरछा होता है। इसकी हत्थी के अंत में स्पैटुला बना होता है जो छाल निकालने के काम आता है। इन चाकुओं के ब्लेड तेज होने चाहिए, तभी ये सही कार्य करते हैं।

कुदाली

कुदाली गड्ढे खोदने या कई प्रकार की क्यारियां बनाने हेतु मिट्टी को खोदने के काम आती है। कुदाली में लोहे का ब्लेड़ होता है जिसके साथ लकंड़ी की हत्थी लगी होती है।

उद्यान दिशाखी (गार्डन फोर्क)

इसका प्रयोग मृदा के ढेलों को तोड़ने हेतु करते हैं। इससे पौधशाला में क्यारियां बनाना आसान हो जाता है।

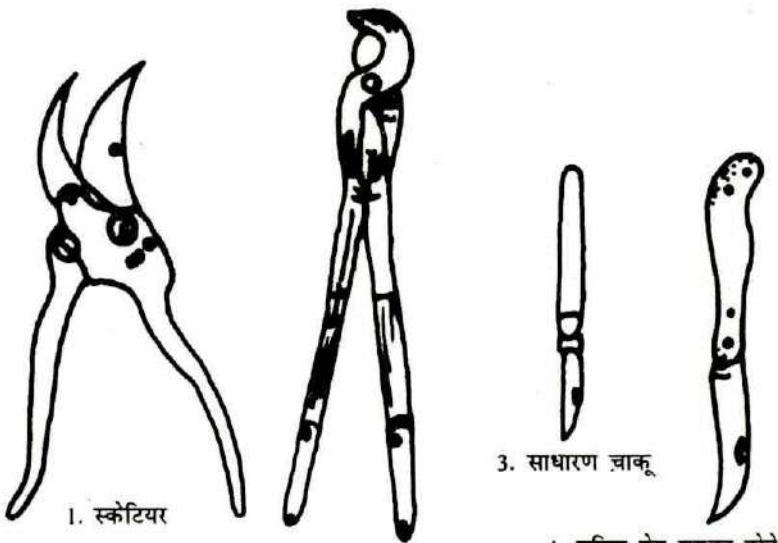

रेखाचित्र 9: पादप प्रवर्धन में प्रयुक्त होने वाले औजार

खरपतवारी फोर्क (द्विशाखी)

यह यंत्र मृदा को ढीला करता है एवं खरपतवारों को निकालने में सहायता करता है। इसमें दांतेदार ब्लेड होता है जो लंबी हत्थी से लगा होता है।

खुरपी

खुरपी का प्रयोग पौधशाला में कई कार्यों के लिए किया जाता है, परंतु यह मुख्यत: खरपतवारों को निकालने हेतु प्रयोग की जाती है। इसके तिकोने ब्लेड के किनारे अति तेज होते हैं। ब्लेड एक छोटी-सी हत्थी से जुड़ा होता है।

सब्बल (क्रो बार)

यह एक लोहे की छड़ होती है जिसका एक सिरा नुकीला व दूसरा फनाकार होता है। पौधशाला में इसे मुख्यत: गड्ढे खोदने हेतु प्रयोग करते हैं।

हजारा

हजारे का प्रयोग ताजे बोए सब्जियों या फलों के बीजों की क्यारियों में अथवा ताजी स्थानांतरित पौध/पौद में पानी देने के लिए किया जाता है। हजारे लोहे या प्लास्टिक के बने होते हैं। हजारे की नॉजल पर फौहारा होता है जिससे उगने वाली पौध या पौद पर पानी बराबर गिरता है।

गार्डन रेक

इस यंत्र का प्रयोग पौधशाला में बनी क्यारियों से पत्थरों एवं ईटों के टुकड़ों, सूखी पत्तियों एवं घास को एकत्रित करने के लिए किया जाता है। ऐसे कार्यों के लिए दांतेदार रेक अच्छा रहता है।

सिकेटियर

सिकेटियर पौधशाला का बहुत ही महत्वपूर्ण औजार माना जाता है। इसका प्रयोग सांकुर तैयार करने, मूलवृंत को काटने, अवांछित शाखाओं, प्ररोहों को हटाने एवं पौधों में काट-छांट हेतु किया जाता है। सिकेटियर का ब्लेड काफी तेज एवं अच्छी धातु से बना होना चाहिए।

कलम-बंधन हेतु मशीनें

कई विकसित देशों में कलिकायन एवं कलम-बंधन हेतु कई तरह की मशीनें विकसित की गई हैं, जिनका प्रयोग शाख, सांकुर या कलिकायन हेतु लकड़ी तैयार करने के लिए किया जाता है, हालांकि हमारे देश में ऐसी मशीनों का प्रचलन नहीं है।

काट-छांट की आरी

औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन में लगे लोगों को पौधशाला में विभिन्न प्रकार के कार्यों हेतु कई प्रकार की आरियों की आवश्यकता होती है। इन आरियों के दांते मजबूत व तेज होने चाहिए ताकि बड़े पौधों की हरी या सूखी टहनियों को आसानी से काटा जा सके। इन आरियों से वे टहनियां व शाखाएं काटी जाती हैं जिन्हें सिकेटियर से काटना कठिन होता है।

काट-छांट की कर्तनी

पौधशाला में कई प्रकार के कर्तकों या कर्तनियों की आवश्यकता होती है। यह कर्तनी अधिक कीमत की नहीं होनी चाहिए परंतु यह अच्छी स्टील की अवश्य बनी होनी

चाहिए। इसके अतिरिक्त कर्तनी ऐसी होनी चाहिए कि यह साफ-सुथरा चीरा दे ताकि पौध या मातृ पौधे की शाखाओं या टहनियों को कोई क्षति न हो।

सीढ़ी

पादप प्रवर्धन के कार्यों हेतु सीढ़ी की भी आवश्यकता होती है। सीढ़ी का प्रयोग मातृ पौधों से शाख तैयार करने हेतु, ओजस्वी पौधों की काट-छांट या पुराने बगीचों में जीर्णोद्धार हेतु किया जाता है।

बांधने एवं लपेटने हेतु सामग्री

कलम-बंधन एवं कलिकायन की लगभग सभी विधियों में मूलवृंत व सांकुर को बांधने हेतु अच्छी सामग्री की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए पौधशालाकर्मी अपनी सुविधानुसार कई प्रकार की सामग्री का प्रयोग करते हैं, परंतु मुख्यत: मोमी कपड़ा व डोरी, राफिया फाइबर, रबड़ की डोरी एवं पॉलिथीन की पट्टी का प्रयोग करते हैं। पॉलिथीन की पट्टी की मोटाई लगभग 150 गेज से अधिक नहीं होनी चाहिए।

टोकरियां

पौधशाला में अच्छी मात्रा में विभिन्न आकार की टोकरियां होनी चाहिए। इन टोकरियों का प्रयोग पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के लिए किया जाता है।

नामपत्र (लेबल)

एक व्यावसायिक पौधशालाकर्मी के पास कई प्रकार के नामपत्र होने चाहिए। पौध को बेचने से पहले इस पर किस्म आदि का नाम अंकित करने के लिए लेबल लगाना अच्छा रहता है। नामपत्र पेपर, कार्ड बोर्ड, लकड़ी, ऐल्युमिनियम या प्लास्टिक के बने होते हैं।

गमले

पौधशाला में विभिन्न आकार, आमाप एवं रूपों के गमले प्रयोग किए जाते हैं। परंतु मिट्टी एवं प्लास्टिक के गमले ही मुख्यत: प्रयोग किए जाते हैं। एकवर्षीय पौध के लिए 4 इंच, ताड़ एवं फर्न की पौध हेतु 6 इंच एवं फलवृक्षों की पौध हेतु 8 इंच के गमले प्रयोग किए जाते हैं। हालांकि हमारे देश में मुख्यत: मिट्टी के गमले ही प्रयोग होते हैं, परंतु अब धीरे-धीरे प्लास्टिक के गमलों का प्रचलन भी बढ़ रहा है।

बीज पात्र

बीज पात्र गमलों की अपेक्षा खुले एवं चौड़े होते हैं और इनका आकार 30-50 सेमी. व्यास का होता है। इन्हें मुख्यत: सब्जियों एवं फूलों की पौद तैयार करने हेतु प्रयोग किया जाता है।

पौद ट्रे (थाल)

पौद ट्रे का प्रयोग ऊतक संवर्धन से तैयार सीधे पौधों के कठोरीकरण एवं सब्जियों व फूलों के बीजों को बोने के लिए किया जाता है। पौद ट्रे का आकार, इसमें बनी 6 गुटिकाओं के आधार पर 25 से 250 सेमी. तक होता है।

रोपण सहायक सामग्री

आधुनिक पौधशाला में पौध को सहारा देने हेतु बांस, लोहे की छड़ें या काट-छांट से बची लकड़ी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

कलम-बंधनी मोम

पौधशाला-कर्मी कलम-बंधनी मोम का प्रयोग मुख्यत: दो उद्देश्यों हेतु करता है: (1) कलम बंधनी जुड़ाव को सील करने हेतु- ताकि वहां नमी बनी रहे और वे कोशिकाएं जो कलमी मिलाप के ठीक होने में सहायता करती हैं। (2) मिलाप के स्थान पर रोगाणुओं के प्रवेश को रोककर लकड़ी की सड़न को रोकना। एक अच्छे कलम-बंधनी मोम के निम्नलिखित गुण होने चाहिए:

1. यह मूलवृंत एवं सांकुर से अच्छी तरह से चिकपने वाला होना चाहिए।
2. यह वर्षा से एक दम धुलने वाला न हो।
3. यह इतना नाजुक न हो कि सर्दियों में इसमें दरारें पड़ जाएं।
4. यह इतना अधिक मुलायम भी न हो कि गर्मी में एक दम पिघल जाए।
5. यह मूलवृंत व शाख के मिलान के स्थान की वृद्धि में अवरोधक न बने।

पौधशाला में मुख्यत: दो प्रकार की मोम- गर्म मोम एवं ठंडी मोम ही प्रयोग की जाती हैं।

गर्म मोम: गर्म मोम को घर पर ही आसानी से तैयार किया जा सकता है। हालांकि अब बना बनाया मोम भी बाजार में उपलब्ध है। गर्म मोम को घर पर तैयार करने के लिए रेजिन,

मधुमक्खी का मोम, अलसी का तेल, चारकोल एवं कुछ गोंद की निम्नलिखित आवश्यकता होती है:

रेजिन	–	2.25 किग्रा.
मधुमक्खी का मोम	–	0.40 किग्रा.
अलसी का तेल	–	240 मिली.
चारकोल	–	40 ग्राम

सबसे पहले एक पात्र में गोंद को पानी में उबाला जाता है व दूसरे में रेजिन व मधुमक्खी की मोम को। बाद में इन्हें ठंडा किया जाता है। इसके बाद चारकोल और अलसी के तेल को इस मिश्रण में डालकर धीरे-धीरे हिलाया जाता है। इस मिश्रण को बाद में एक ग्रीज लगे खुले पात्र में डाला जाता है। अब इसे धीरे-धीरे कठोर होने दें। इसके प्रयोग हेतु, इसका छोटा-सा हिस्सा काटें। इसे किसी पात्र में गर्म करें और मूलवृंत व शाख के मिलाप पर पेंट करने वाले ब्रश से लगा दें।

ठंडी मोम: ठंडी मोम में मुख्यत: एस्फाल्ट और पानी होते हैं। इसका प्रयोग कम ही होता है।

मोमी टेप

मोमी टेप घरेलू कपड़े की पट्टियां काटकर बनाई जाती है। इन पट्टियों को रेजिन, मधुमक्खी के मोम, पैराफिन व अलसी के तेल में डुबोया जाता है। बाद में 1/3 या 1/2 इंच आकार की पट्टियां काट ली जाती हैं।

कपास की डोरी

कपास की छोटी-छोटी डोरियां कलियों एवं शाख आदि बांधने हेतु मुख्यत: प्रयोग की जाती हैं। ओजस्वी मूलवृंत पर लगभग 10-12 प्लाई की मोटी डोरी कलम बांधने में प्रयोग की जाती है। परंतु बौने मूलवृंत हेतु कम मोटाई की डोरी प्रयोग होती है। मूलवृंत एवं सांकुर कों क्षति से बचाने हेतु हमें अच्छी गुणवत्ता की डोरी का प्रयोग करना चाहिए।

रक्षण सामग्री

काट-छांट के बाद मातृ पौधे पर कई घाव या चीरे लग जाते हैं, जिनके द्वारा पौधों में रोगाणु प्रवेश कर काफी क्षति पहुंचा सकते हैं। अत: इन घावों को किसी रक्षण पदार्थ द्वारा उपचारित जरूर करना चाहिए। रक्षण पदार्थ के निम्नलिखित गुण होने चाहिए:

1. यह प्रत्येक रोगाणु से रक्षा करने वाला हो।
2. यह घाव वाली जगह में अच्छी तरह चिपकने वाला हो।
3. इसे लगाने के बाद न तो यह फटे और न ही पिघलकर बहने वाला हो।
4. यह घाव वाले ऊतकों को क्षतिग्रस्त न करे।

इस कार्य के लिए बोर्डो लेई सबसे अच्छी सामग्री मानी गई है। हालांकि इसी काम के लिए ब्लाइटॉक्स भी उपयोगी रसायन है।

पीड़कनाशी एवं उर्वरक

पौधशालाकर्मी के पास पर्याप्त मात्रा में पीड़कनाशी एवं उर्वरक होने चाहिए ताकि समय-समय पर उनका प्रयोग किया जा सके। पौधशाला में चूहे बहुत क्षति करते हैं। अत: उन्हें मारने हेतु विशेष प्रकार के रसायन या जहर की आवश्यकता होती है। ऐसे रसायन/जहर की उपलब्धता भी पौधशालाकर्मी के पास होनी चाहिए।

❐

अध्याय-19

अलैंगिक अथवा कायिक प्रवर्धन: लाभ एवं सीमाएं

फलवृक्षों के पौधे मुख्यत: कायिक अथवा अलैंगिक विधियों द्वारा प्रवर्धित किए जाते हैं। अलैंगिक प्रवर्धन में नए पौधे मातृ पौधे के किसी कायिक भाग द्वारा तैयार किए जाते हैं। यह इसलिए संभव होता है क्योंकि पौधों की प्रत्येक कोशिका एवं ऊतक में वातावरण की अनुकूल परिस्थितियों में संपूर्ण पौधे को विकसित करने की क्षमता होती है। यही कारण है कि कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधे मातृ पौधे के समान गुणों वाले होते हैं। ये विधियां इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि इनके द्वारा कम समय में अधिकाधिक संख्या में एवं पैतृक गुणों वाले पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

कायिक प्रवर्धन के लाभ

कायिक एवं अलैंगिक प्रवर्धन के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधे पैतृक समरूप होते हैं जिस कारण इनकी वृद्धि, फलोत्पादन तथा फलों की गुणवत्ता समरूप पाई जाती है।
2. कुछ फलवृक्षों में, जैसे केला, अनन्नास, अंजीर आदि में बीज पैदा नहीं होते जिन्हें केवल कायिक विधियों द्वारा ही प्रवर्धित किया जा सकता है।
3. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों में बीजू पौधों की अपेक्षा फल जल्दी आता है।
4. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधे बीजू पौधों की अपेक्षा कम फैलाव व आकार वाले होते हैं जिस कारण इनकी देखभाल व प्रबंधन में आसानी होती है।
5. कुछ कायिक विधियों, जैसे कलिकायन एवं कलम-बंधन आदि द्वारा मूलवृंत के लाभकारी गुणों का उपयोग किया जा सकता है।
6. कुछ फलवृक्षों, जैसे सेब, नाशपाती, आम, चेरी, बादाम आदि में स्व:अनिषेच्यता की समस्या के कारण कम उत्पादन होता है। इन फलवृक्षों के बागों से सुचारु उत्पादन हेतु परागद किस्मों को कायिक विधियों द्वारा पुराने पौधों पर स्थापित किया जाता है।

7. पौधों के क्षतिग्रस्त भागों जैसे जड़, तना आदि को सेतु कलम-बंधन या चापी कलम-बंधन द्वारा पुन: ठीक किया जा सकता है।
8. कायिक विधियों द्वारा पुराने, कम फलन वाले या घटिया किस्म के बागों को हरे-भरे, अधिक फलत व गुणवत्ता वाले बागों में परिवर्तित किया जा सकता है।
9. कुछ कायिक विधियों द्वारा विभिन्न किस्मों को एक ही पेड़ पर रोपित करना संभव होता है।

कायिक प्रवर्धन की सीमाएं

कायिक प्रवर्धन की कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं:

1. कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों की आयु बीजू पौधों की अपेक्षा कम होती है।
2. कायिक विधियों द्वारा नई किस्मों का विकास संभव नहीं होता है।
3. कायिक विधियों द्वारा पौधे तैयार करने हेतु तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है।
4. कई बार कायिक प्रवर्धन, लैंगिक प्रबर्धन की अपेक्षा अधिक महंगा होता है।
5. कुछ पौधे, जैसे पपीता, फालसा आदि को कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित नहीं किया जा सकता है।
6. कुछ फलवृक्षों में विषाणुओं का संचरण संक्रमित सांकुर शाखा द्वारा होता है। अत: कायिक विधियों द्वारा ऐसे विषाणुओं के भारी संख्या में फैलने की संभावना बढ़ जाती है।

❐

अध्याय-20

कायिक प्रवर्धन के सिद्धांत

कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन करने पर ही क्लोन का प्रवर्धन संभावित होता है। इन विधियों में समसूत्री विभाजन होता है, जिसमें पैतृक पौधों से गुणसूत्र एवं कोशिका द्रव्य विभाजित होकर नई संतति की उत्पत्ति करते हैं। फलत: पैतृक पौधे के आनुवंशिक गुण भी संतति में वंशागत चलते रहते हैं। इस प्रकार किस्म-विशेष के गुण वर्षों तक कायम रहते हैं। जिन फलवृक्षों में विषम युग्मजी दशा होती है, उनमें कायिक प्रवर्धन का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसे पौधों में बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर विविधता की अत्यधिक संभावना रहती है।

क्लोन

फलवृक्ष प्राय: विशेष गुणों के लिए चयन किए गए पौधे या उत्परिवर्तित शाखाओं से प्रवर्धित किए जाते हैं। इस प्रकार एक स्रोत से प्रवर्धित सभी पौधों को क्लोनीय या समस्रोती नाम से संबोधित किया जाता है। अत: आनुवंशिक समरूप पौधों के उस समूह को, जिनका एक पौधे से कायिक प्रवर्धन किया गया हो, क्लोन कहते हैं। दशहरी, लगड़ा, चौसा इत्यादि आम की किस्मों का चयन बीजू पौधों से किया गया था। उन्हीं से सांकुर शाखा लेकर पूरे उत्तरी भारत में इन किस्मों की बागवानी की जा रही है, जिन्हें हम किस्म-विशेष के क्लोन की संज्ञा से संबोधित कर सकते हैं। चयन किए गए पौधे का विभाजन तथा कलम द्वारा प्रवर्धन करने पर पूर्ण रूप से समरूपता बनी रहती है। परंतु जब इनका प्रवर्धन दूसरे मलवृंत पर कलम-बंधन या कलिकायन द्वारा किया जाता है तो आपस में दोनों के समन्वय से मूल सांकुर प्रभावित होता है। परंतु क्लोन के मुख्य गुण इन विधियों से प्रवर्धन करने पर भी वंशागत चलते रहते हैं। जिन पौधों में असंगजनन से बीज की उत्पत्ति होती है, उनमें बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर भी क्लोन की समरूपता संतति में बनी रहती है।

एक क्लोन के पौधों के समूह में सभी गुणों में समरूपता होना आवश्यक नहीं है। पौधों का लक्षणप्ररूप उसके आनुवंशिक गुण तथा उगाए गए वातावरण के समन्वय से नियंत्रित होता है। अत: एक ही क्लोन के पौधों से समूह में भूमि, वातावरण, प्रयुक्त मूलवृंत आदि की विविधता के कारण पौधों की वृद्धि, फलत एवं फलों के गुण में थोड़ी भिन्नता हो सकती है। उदाहरणत: सेब की 'रेड डिलिशयस' किस्म के फल मध्यम ऊंचाई

(2000 मीटर) तक अपेक्षाकृत चपटे तथा अधिक ऊंचाई (2500 मीटर से ऊपर) पर चबूतरे होते हैं। परंतु इनमें आनुवंशिक समरूपता होती है। इसी प्रकार आम की किस्में उदाहरणत: दशहरी को लखनऊ के आसपास उगाने पर फल में रेशा कम होता है, परंतु अधिक नमी वाली पहाड़ियों पर उगाने पर इसके फलों में अपेक्षाकृत अधिक रेशा होता है।

चयन किए गए क्लोन का कायिक प्रवर्धन करते रहने पर कई वर्षों तक समरूपता बनी रहती है। परंतु उनमें कभी-कभी अच्छे गुणों का ह्रास होने लगता है, जिसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। वर्षों तक निरंतर बागवानी करते रहने से प्राय: विभिन्न प्रकार के विषाणुओं के संक्रमण की भी संभावना रहती है। अत: कभी-कभी क्लोन की किसी शाख या कलिका में एकाएक उत्परिवर्तन हो सकता है, जिसके कारण क्लोन के विशेष गुणों में परिवर्तन हो जाता है तथा मातृ पौधे से अलग एक नए क्लोन का सृजन हो जाता है। किसी क्लोन की शुद्धता बनाए रखने तथा उससे आशातीत फलोत्पादन के लिए आवश्यक है कि फलवृक्षों की बागवानी अनूकूल वातावरण में तथा वैज्ञानिक ढंग से की जाए। किसी भी क्लोन में निम्नलिखित कारणों से विविधता हो सकती है:

(अ) आयु के साथ क्लोन के गुणों में परिवर्तन

वृद्धि के अनुसार किसी भी पौधे में साधारणत: किशोर तथा प्रौढ़ अवस्थाएं होती हैं। दोनों अवस्थाओं में आकृतिक तथा कार्यिकीय विभिन्नता होती है। पौधविशेष के अनुसार निश्चित आयु के आस-पास किशोरावस्था, प्रौढावस्था में परिवर्तित होती है। नींबू, नाशपाती और सेब आदि फलवृक्षों में किशोरावस्था में पौधों में वानस्पतिक वृद्धि और कांटे अधिक होते हैं तथा फूल नहीं आते। इस अवस्था में कलम में मूलन सुगमतापूर्वक हो जाता है। जैसे ही पौधविशेष में किशोरावस्था से प्रौढावस्था आती है, उनमें फूल आने लगते हैं तथा मूलन में कठिनाई होती है। शाखाओं में किशोरावस्था से प्रौढावस्था में परिवर्तन आदि एक निश्चित आयु के बाद होता है। अत: एक ही पौधे में कुछ भाग किशोर तथा कुछ प्रौढावस्था में हो सकते हैं। अत: जैसे-जैसे क्लोन की आयु बढ़ती है, उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन आते हैं जो भिन्नता का कारण बनते हैं।

(ब) कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों में आनुवंशिक विविधता

कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों में भिन्नता आने के कई कारण हैं। परंतु प्रमुख कारणों का विवरण निम्नलिखित है:

1. उत्परिवर्तन

पौधों की कायिक कोशिकाओं के आनुवंशिक संघटन में यदि किन्हीं कारणों से

परिवर्तन के साथ उनमें समसूत्री विभाजन हो जाए तो इससे विकसित भाग मातृ पौधे से भिन्न होते हैं। प्राय: ऐसे परिवर्तन आम तौर पर तो आर्थिक महत्व के नहीं होते हैं, परंतु कभी-कभी आर्थिक महत्व के भी हो सकते हैं। ये गुणसूत्र के किसी भाग में रसायन परिवर्तन, बिंदु उत्परिवर्तन, गुणसूत्र की मूल संरचना में परिवर्तन (जैसे विलोपन, संकलन, प्रतिलोमन, आदि), कुछ गुणसूत्रों के संकलन अथवा प्रतिस्थापन, जिसे असुगुणिता या पूर्ण गुणसूत्र समूह का गुणन (बहुगुणिता) से संबोधित करते हैं, इत्यादि कारणों से हो सकते हैं। इन्हीं कारणों से मातृ पौधे से अलग नए क्लोन का सृजन हो जाता है। कभी-कभी कृत्रिम साधनों से भी इस तरह से उत्परिवर्तन किए जा सकते हैं। इनमें पौधे के वृद्धि करते शीर्ष को उत्परिवर्तजनी रसायन, जैसे कौल्चिसिन, एथिल मेथेन सल्फोनेट, नाइट्रोसोमेथेन यूरेथेन इत्यादि रसायनों या एक्सरे, गामा रे इत्यादि विकिरण से भी उत्परिवर्तित किया जाता है।

2. विचित्रोतकी

ऐसा पौधा या पौधे का कोई भाग जो दो या दो से अधिक आनुवंशिक भिन्नता वाले ऊतक समूह से बना हो, विचित्रोतकी कहलाता है। विचित्रोतकी का मुख्य उपयोग प्रकृति में कई प्रकार की विभिन्नताएं पैदा करना होता है। नींबूवर्गीय फलों तथा बोगेनबेलिया, क्रोटन, कोलियस, जिरेनियम आदि के पौधों में चितकबरी पत्तियां देखने में आकर्षक लगती हैं, जो मुख्यत: विचित्रोतकी के कारण होता है। इन पौधों की कुछ कोशिकाओं में पर्णहरित का निर्माण नहीं हो पाता, जिसके कारण कुछ भाग हरा तथा शेष चितकबरा हो जाता है। सेब के फलों में कभी-कभी अलग-अलग रंग एक ही फल पर आ जाते हैं जो विचित्रोतकी के कारण होता है।

विचित्रोतकी की उत्पत्ति कई तरह से हो सकती है, जैसे (क) किसी पौधे के वृद्धि कर रहे भाग की कोशिकाओं की एक पर्त में स्वत: उत्परिवर्तन हो सकता है। इससे वृद्धि करते भाग की सभी कोशिकाओं में परिवर्तन नहीं होता, परंतु जिसकी वृद्धि उत्परिवर्तित कोशिकाओं से होती है, उनमें यह परिवर्तन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। (ख) कृत्रिम साधनों, जैसे कॉल्चिसिन, उत्परिवर्तजनी रसायनों से उत्परिवर्तन के प्रयास में कभी-कभी ऊतकों की कुछ परतें ही परिवर्तित हो पाती हैं। परिणामत: विचित्रोतकी की उत्पत्ति हो जाती है। (ग) कभी-कभी विचित्रोतकी की उत्पत्ति वंशागत भी होती है। जिरेनियम एवं कोलियस के बीज से प्रवर्धन करने पर कई प्रकार की विचित्रोतकी की उत्पत्ति हो जाती है।

ऊतक समूहों के रचनाक्रम के अनुसार विचित्रोतकी कई प्रकार के हो सकते हैं, परंतु वैज्ञानिक साहित्य में मुख्यत: निम्नलिखित पांच प्रकार के विचित्रोतकी का वर्णन है।

1. त्रिन्यखंडी विचित्रोतकी

इसमें पौधे के वृद्धि कर रहे दो भाग आनुवंशिक भिन्नता वाले ऊतक-समूहों द्वारा निर्मित होते हैं जो एक-दूसरे के साथ-साथ स्थित हों। इनसे उत्पन्न शाखाओं और पत्तियों में दोनों प्रकार के ऊतक समूह विभिन्न अवस्था में स्थित हो सकते हैं। अत: ऐसे विचित्रोतकी अस्थिर होते हैं तथा इनसे वृद्धि कर रहे भाग से सामान्य, पूर्ण उत्परिवर्तित या परिवेष्टित विचित्रोतकी भी बन सकते हैं।

2. परिवेष्टित विचित्रोतकी

ऐसे विचित्रोतकी में कुछ कोशिकाएं पतली परत के रूप में पौधे के किसी भाग में चारों तरफ आनुवंशिक भिन्नता वाली कोशिकाओं के ऊपर स्थिर रहती हैं। इस प्रकार के विचित्रोतकी प्राय: प्रकृति में अधिक स्थिर होते हैं। उदाहरणत: रूबस वंश में ब्लैक बेरी के कई कांटेहीन पौधे पाए जाते हैं जिनकी बाह्य छाल में कांटे हेतु जीन विद्यमान नहीं होते। कलम या शीर्ष दाबा द्वारा इनका प्रवर्धन करने पर इनकी जड़ें अंदर की कोशिकाओं से निर्मित होने के कारण सामान्य तथा ऊपरी परत उत्परिवर्तित होती है। इन जड़ों से कलम ली जाए तो पुन: कांटेयुक्त पौधे प्राप्त होते हैं, अन्यथा कांटेहीन पौधे बनते हैं।

3. अपूर्ण परिवेधी विचित्रोतकी

यह विचित्रोतकी मुख्यत: परिवेष्टित विचित्रोतकी के समान होता है, परंतु शाखाओं के चारों तरफ ऊतकों की बाहरी परत पूर्ण रूप से भिन्न न होकर थोड़े से खंड में परिवर्तित होती है। इस प्रकार के विचित्रोतकी प्राय: प्रकृति में उत्पन्न होते रहते हैं। एक या कुछ कोशिका समूहों में उत्परिवर्तन हो जाने पर इनका सृजन हो जाता है। यह बहुधा अस्थिर होते हैं तथा इनसे कायिक प्रवर्धन करने पर परिवेष्टित विचित्रोतकी या सामान्य पौधे प्राप्त होते रहते हैं।

4. कलिका उत्परिवर्तन

ऐसी शाखा जिसमें एक या एक से अधिक वंशागत गुणों में मातृ पौधे से पूर्ण भिन्नता हो तथा कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन हो सके, उन्हें 'कलिका उत्परिवर्तन' कहते हैं। कलिका उत्परिवर्तन का सृजन कायिक उत्परिवर्तन तथा गुणसूत्रों के परिवर्तन के फलस्वरूप हो सकता है। प्रकृति में विभिन्न प्रकार के कलिका उत्परिवर्तन का सृजन प्राय: विचित्रोतकी से हुआ है। जब कभी परिवर्तित भाग की तरफ से शाखा की उत्पत्ति हो जाती है तो उनमें केवल उत्परिवर्तित ऊतक विद्यमान होने के कारण कुछ गुणों में पैतृक गुणों

से पूर्ण भिन्नता हो जाती है। यदि ये परिवर्तन किसी आर्थिक महत्व के हों तो उनको कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन करके स्थिर रखा जा सकता है। फलवृक्षों की कई किस्मों की उत्पत्ति कलिका उत्परिवर्तन से हुई है। जैसे सेब की कई किस्में, आड़ू से 'शतालू', 'मार्श' ग्रेपफ्रूट से 'मार्श सीडलेस' थॉम्पसन ग्रेपफ्रूट आदि। कई बार अलाभकारी उत्परिवर्तन भी होते हैं।

5. कलमी विचित्रोतकी

ऐसे विचित्रोतकी की उत्पत्ति प्रकृति में स्वत: होती रहती है, परंतु कभी-कभी कलम बंधन प्रक्रिया से भी इसकी उत्पत्ति संभावित होती है। यदि कलम बंधन के स्थान पर किसी कारणवश पौधा टूट जाए या काट दिया जाए तो कभी-कभी ऐसी शाखाएं बन सकती हैं, जिनमें मूलवृंत और सांकुर दोनों के ऊतक होते हैं। फलवृक्षों में बिजारिया संतरे की उत्पत्ति कलमी विचित्रोतकी से हुई है।

(स) विषाणु प्रकोप

किसी भी क्लोन की लगातार कई वर्षों तक बागवानी करते रहने पर उसमें विषाणुओं के संक्रमण की संभावना रहती है। विषाणुओं के संक्रमण से क्लोन की वृद्धि एवं फलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा संक्रमित पौधों से प्रवर्धन करने पर विषाणु भी संचरित होते रहते हैं, जो क्लोन में भिन्नता लाने का एक कारण बन जाते हैं। उदाहरणत: नींबूवर्गीय फलों एवं शीतोष्णवर्गीय फलों के प्रमुख विषाणु संक्रमित सांकुर शाख द्वारा ही संचारित होते हैं। इससे क्लोन-विशेष में वंशागत विविधता आ जाती है। विषाणुओं के संक्रमण की पहचान पौधों पर लक्षण देख कर तथा सूचीकरण द्वारा की जा सकती है।

(द) विषाणु की तरह के आनुवंशिक विकार

कई बार पौधों में ऐसी विविधता आ जाती है, जिसके लक्षण विषाणुओं के प्रकोप की भाँति दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में ये विषाणु का प्रकोप नहीं होते, परंतु संक्रमित पौधे से कायिक प्रवर्धन करने पर विषाणु संचरित होते रहते हैं। वैसे ये लक्षण असंक्रामक होते हैं तथा इनका प्रकोप एकाएक दिखाई पड़ता है, जो बाद में, वंशागत चलता रहता है और क्लोन में भिन्नता का कारण बन जाता है। उदाहरणत: स्ट्राबेरी के क्लोन में कभी-कभी कुछ पीले पौधे उत्पन्न हो जाते हैं, जिनकी पत्तियों पूर्णरूप से पीली या चितकबरी होती हैं। इसी प्रकार सेब, नाशपाती, बादाम, चेरी, नींबूवर्गीय फलों में भी इस प्रकार की भिन्नता पाई गई है। इनके प्रकोप से बचने के लिए आवश्यक है कि प्रवर्धन में प्रयुक्त होने वाले मूलवृंत तथा सांकुर शाखा का चयन ठीक प्रकार से किया जाए। किसी भी दशा में ऐसे संक्रमित पौधों से प्रवर्धन नहीं करना चाहिए। प्रवर्धन में सावधानी के बाद भी यदि किसी प्रकार की विविधता दिखाई पड़े तो ऐसे विविध पौधों को यथाशीघ्र अलग कर देना चाहिए।

विषाणुमुक्त समरूप फलवृक्षों का चयन, प्रवर्धन एवं अनुरक्षण

अक्सर यह देखा गया है कि किसी विशेष चयनित क्लोन में निरंतर कायिक प्रवर्धन करते रहने पर उनमें समय-समय पर विभिन्न प्रकार के कवक, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि आदि के संक्रमण या आनुवंशिक विकार आने के कारण उनमें विविधता आ जाती है। ठीक इसी प्रकार एक क्लोन को जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है, तो उन्हें भिन्न प्रकार के रोगाणु और वातावरण का सामना करना पड़ता है। अत: उनमें नए संक्रमण की संभावना होती है। इसके अतिरिक्त विदेशों से नए आयात किए गए पौधे यदि किसी रोगाणु से संक्रमित हों तो वातावरण के परिवर्तन के साथ उनमें संक्रमण स्पष्ट हो जाने की संभावना भी होती है, जिससे उनके आसपास के अन्य फलवृक्ष भी प्रभावित हो सकते हैं। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि किसी भी दशा में संक्रमित पौधों का आयात या निर्यात न किया जाए।

अत: कई स्थानों पर प्रयोग किए गए जिनसे पता चलता है कि विषाणुयुक्त तथा मातृ समरूप पौधे प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि (1) प्रारंभ में मूलवृंत और सांकुर समरूप तथा संक्रमण से मुक्त हो, (2) चयनित पौधे ऐसे प्रक्षेत्र तथा दशा में उगाए जाएं जहां पुन: संक्रमण की आशंका न हो, और (3) फलवृक्ष प्रवर्धन एवं वितरण इस प्रकार समन्वित किया जाए कि भविष्य में किसी प्रकार की मिलावट की संभावना न हो। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत में नींबूवर्गीय फलों तथा कहीं-कहीं पर शीतोष्ण वर्गीय फलों की जांच और प्रमाणीकरण की व्यवस्था है। रोगाणुमुक्त पौधे प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित विधियां सहायक होती हैं:

1. विषाणुमुक्त बीजों का एकत्रीकरण

कुल फलवृक्षों जैसे बादाम, खुबानी, चेरी, नाशपाती, एवोकेडो, आम आदि में विषाणु बीज से फैलते हैं। उदाहरणत: मोजेक विषाणु का अंत: संचरण बीज द्वारा होता है। ऐसे फलवृक्षों में मूलवृंत अथवा मुख्य पौधे हेतु बीज केवल विषाणुमुक्त पौधों से ही एकत्रित करने चाहिए। इससे स्वस्थ पौधे मिलने की काफी अधिक संभावना होती है।

2. मातृ पौधे का प्रारंभिक चयन

प्रवर्धन में प्रयुक्त होने वाले मातृ पौधे का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करना चाहिए। इनमें किसी प्रकार की जननिक विविधता, कलिका उत्परिवर्तन तथा रोगाणु संक्रमण नहीं होना चाहिए। मातृ पौधे के फलोत्पादन तथा फलों के गुण के आंकड़े उपलब्ध होने चाहिए। इन सब बातों को ध्यान में रखने के बाद ही मातृ पौधे का चयन करना चाहिए।

3. चयनित पौधों का सूचीकरण

चुने गए पौधों में विषाणुओं का परोक्ष संक्रमण होने की संभावना होती है, जिसका सूचीकरण द्वारा पता लगाया जा सकता है। फलवृक्षों में विषाणुओं के सूचीकरण हेतु सूचक पौधों की सूची सारणी-4 में दी गई है।

सारणी-4: फलवृक्षों में विषाणुओं के सूचीकरण हेतु सूचक पौधे

क्रमांक	विषाणु का नाम	संक्रमित फल	सूचक पौधा
1.	ट्रिस्टेजा	नींबूवर्गीय	कागजी नींबू, वेस्ट इन्डियन लाइम, मेक्सिकन लाइम।
2.	सोरोसिस	नींबूवर्गीय	माल्टा, खट्टी नारंगी।
3.	जाइलोसोरोसिस	नींबूवर्गीय	ओरलैंडो टैन्जलो, मीठा नींबू।
4.	एक्सोकॉर्टिस	नींबूवर्गीय	रंगपुर लाइम।
5.	मोज़ेक	सेब	लॉर्ड लैमबॉने, गोल्डन डिलीशियस, जोनाथन।
6.	मोजेक	नाशपाती	ब्यूर, हार्डी, क्लैप्स फेवरिट।
7.	मोजेक	आड़ू	बादाम के बीजू पौधे।
8.	प्लम लाइन पैटर्न	अलूचा	शिरो, इटैलियन, प्रून, माइरोबालन।
9.	नेक्रोटिक रिंग स्पॉट	चेरी	शिरोफ्युगेन।

अत: इनसे सांकुर टहनी लेने के पहले इनका सूचीकरण करके परोक्ष संक्रमण का परीक्षण कर लिया जाना चाहिए। सूचीकरण हेतु प्रस्तावित पौधों से सांकुर लेकर सूचक पौधों पर कीट अवरोधी संरचनाओं (जैसे जालीघर, कांचघर आदि) में कलिकायन या ऊतक प्रत्यारोपण द्वारा परीक्षण किया जाता है। विभिन्न विषाणुओं की ग्रहणशीलता के आधार पर विभिन्न विषाणुओं हेतु भिन्न-भिन्न सूचक पौधे प्रयोग किए जा सकते हैं।

इन विषाणुओं में से कुछ के लक्षण 30-40 दिनों में तथा कुछ के 3-4 वर्षों में आते हैं। यदि इनके लक्षण सूचक पौधों पर न दिखाई पड़ें तो मातृ पौधों को परोक्ष संक्रमण से मुक्त समझना चाहिए।

4. चयनित पौधों का प्रमाणीकरण

आधुनिक पौधशाला अधिनियम के अंतर्गत पौधशाला कर्मी को प्रमाणित पौधों से ही नए पौधे तैयार करने चाहिए। परंतु अफसोस है कि हमारे देश में आज तक भी इस नियम का परिपालन व्यावहारिक स्तर पर नहीं किया जा रहा है। एक परियोजना के अंतर्गत पुणे (महाराष्ट्र), अबोहर (पंजाब), तिरुपति (आंध्र प्रदेश) और काहीकूची (असम) में नींबूवर्गीय फलों का प्रमाणीकरण किया जा रहा है। पौध प्रमाणीकरण हेतु चयनित पौधों से सांकुर लेकर कीटरोधी माध्यम में उगाए गए मूलवृंत पर कलिकायन द्वारा प्राथमिक पौधे प्रवर्धित किए जाते हैं (रेखाचित्र-10)। इसी के साथ कुछ कलिकाओं का प्रत्यारोपण सूचक पौधों पर भी कर दिया जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि एक पौधे से केवल एक बार सांकुर टहनी एकत्रित की जाए नहीं तो रोगवाहक कीट द्वारा पुन: संक्रमण होने की संभावना रहती है। अत: बाद के प्रवर्धन के लिए सांकुर द्वारा टहनी उन प्राथमिक पौधों से लें, जो संगरोध दशाओं में उगाए गए हों। यदि किसी पौधे में परोक्ष संक्रमण दिखाई पड़े तो मातृ पौधे तथा इनसे प्रवर्धित प्राथमिक पौधे को समूल निकाल देना चाहिए। यदि सूचक पौधों पर 6 माह तक विषाणु संक्रमण का संकेत न मिले तो कलिकायन चढ़ाए गए स्थान से ऊपर की वानस्पतिक वृद्धि काट देनी चाहिए। 4-6 माह तक नई वृद्धि का निरीक्षण करना चाहिए तथा इस प्रकार 10-12 माह में सूचीकरण प्रक्रिया पूरी हो जाती है। इसी बीज प्राथमिक पौधों से आधारीय पौधे प्रवर्धित कर लेने चाहिए। आधारीय पौधे अलग से या संगरोध दशाओं में उगाए जाने चाहिए। आधारीय पौधों को पुन: ट्रिस्टेजा तथा हरितन विषाणु के संक्रमण के लिए संसूचन कर लेना चाहिए। इनके विषाणुयुक्त होने पर सांकुर टहनी लेकर संगरोध दशाओं में उगाए गए मूलवृंत पर मातृ पौधे के लिए प्रवर्धन करना चाहिए। इन्हीं मातृ पौधों से सांकुर टहनी प्रमाणित पौधे हेतु उपलब्ध होती है। आधारीय और मातृ पौधे निरीक्षण और संसूचन के बाद पंजीकृत करके पंजीकरण नंबर दे देना चाहिए। जब कभी भी आधारीय या मातृ पौधों में किसी प्रकार का संक्रमण दिखाई पड़े तो इन्हें तुरंत अलग कर देना चाहिए। अत: इस विधि को अपनाकर व्यावसायिक स्तर पर विषाणुमुक्त प्रमाणित पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

5. मूलवृंत का चयन

बीज से होने वाले विषाणु के प्रकोप को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि विषाणुमुक्त फलवृक्ष से ही बीज एकत्रित किए जाएं। जिन पौधों का प्रवर्धन कायिक विधियों द्वारा उगाए गए मूलवृंत पर किया जाना हो उनमें विषाणुयुक्त पौधों से प्रवर्धन करना चाहिए। आजकल सेब, अलूचा, चेरी इत्यादि में विषाणुयुक्त 'इमला' मूलवृंत का प्रयोग होता है। शीतोष्ण वर्गीय फलवृक्षों में मुख्यत: विषाणुओं का संचरण संक्रमित

शाखाओं एवं संक्रमित बीज द्वारा होता है। अत: यदि विषाणुमुक्त वृक्षों या कायजनिक पौधों से मूलवृंत उगाए गए हों तथा प्रमाणित फलवृक्षों से सांकुर टहनी लेकर प्रवर्धन किया जाए तो विषाणुओं की समस्या का निदान सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त आजकल अन्य तरीके भी प्रचलित होते जा रहे हैं, जिन्हें अपनाकर विभिन्न रोगों का कुछ हद तक निदान किया जा सकता है। ऐसी ही कुछ विधियों का विवरण इस प्रकार है।

1. असंक्रमित भाग का चयन

कभी-कभी पौधे विशेष में कुछ भाग संक्रमित तथा शेष असंक्रमित होते हैं। मृदाजनित रोगाणु, जैसे नींबूवर्गीय फलों में फाइटोप्थोरा, राइजोक्टोनिया, सेब में फाइटोप्थोरा और अमरूद में फ्यूजेरियम का संक्रमण जड़ अथवा तने तक सीमित रहता है। यदि प्रवर्धन हेतु अन्य भागों से टहनी ली जाए तो रोगमुक्त पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

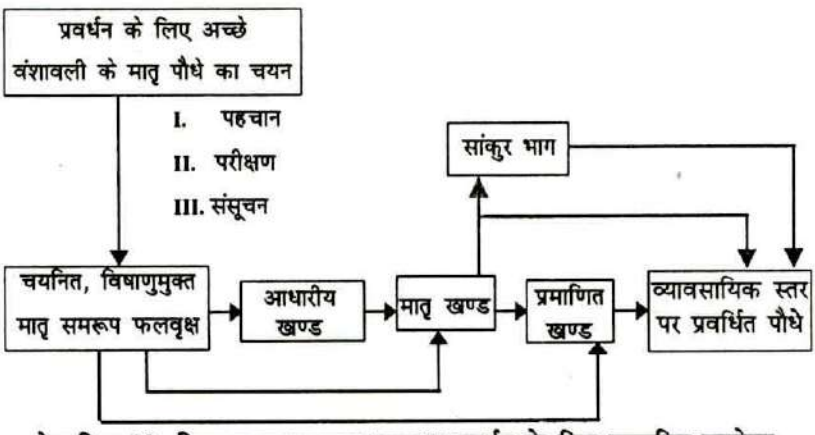

रेखाचित्र 10: विषाणुमुक्त समरूप फलवृक्ष प्रवर्धन के लिए प्रस्तावित रूपरेखा

2. विभज्योतक शीर्ष संवर्धन

प्रयोगों से यह पाया गया है कि संक्रमित पौधे में भी वृद्धि करते शीर्ष विषाणुमुक्त होते हैं। ऐसे शीर्ष को लेकर ऊतक संवर्धन द्वारा प्रवर्धन करके अधिक संख्या में विषाणुमुक्त पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

3. ऊष्मा उपचार

विषाणु संक्रमित शाखा या पूरे पौधे को एक निश्चित अवधि तक अधिक तापमान पर उपचारित करने से रोगजनक अक्रिय हो जाते हैं। पौध-विशेष तथा जीवाणु के आधार पर पौधों का 37 से 57° सेल्सियस तापमान पर 30 मिनट से 3-4 सप्ताह तक ऊष्मा उपचार उन्हें रोगाणुनाशन हेतु उचित रहता है। सेब के छोटे पौधों को 37° सेल्सियस तापमान पर 3-4 सप्ताह तक उपचार करने पर विषाणु के निष्क्रिय होने का अनुमोदन किया गया है।

3. गामा किरणन

कागजी नींबू की ट्रिस्टेजा संक्रमित शाखाओं को गामा किरणों की अधिक तीव्रता (6-8 कि. रैड) से उपचारित करने पर ट्रिस्टेजा संक्रमण का प्रभाव कम हो जाता है। शोधकार्यों से ज्ञात हुआ है कि संक्रमित शाखाओं में 'लाइसिन' नामक एमीनो अम्ल की सांद्रता कम हो जाती है, परंतु किरणन के प्रभाव से इसकी सांद्रता में वृद्धि होती है। अत: विषाणुमुक्त पौधे प्राप्त करने हेतु गामा किरणन के उपयोग की अच्छी संभावना है।

4. रसायन उपचार

कुछ विषाणु, निरोधक रसायनों के उपचार से निष्क्रिय हो जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि रासायनिक उपचार से परपोषी पौधे की कायिक अभिक्रियाओं में परिवर्तन के फलस्वरूप इनकी वृद्धि रुक जाती है।

5. अन्योन्य प्रतिरोध

नींबूवर्गीय फलों में कई विषाणुओं का संचरण संक्रमित सांकुर शाखा तथा रोग वाहक कीटों द्वारा होता है। ट्रिस्टेजा का संचरण मुख्यत: भूरे एफिड (*टेक्सोप्टेरा सिट्रीसिडा*) द्वारा होता है। किसी भी कीटनाशी द्वारा इस विषाणु की शत प्रतिशत रोकथाम नहीं हो पाती है तथा कीटनाशियों के छिड़काव से इन कीटवाहकों को मरने में समय लगता है, जबकि विषाणु संक्रमण कुछ पलों में ही हो जाता है। अत: उपरोक्त प्रस्तावित विधियों से प्रमाणित पौधे से प्रवर्धन करने पर भी पुन: इन विषाणुओं के संक्रमण की संभावना बनी रहती है। परंतु शोधकार्यों से पता चला है कि ट्रिस्टेजा विषाणु के कई मंद प्रभेद होते हैं जो परपोषी पौधों पर अधिक आक्रमक नहीं होते। अत: स्वस्थ पौधों पर इनका प्रवेशन पहले से ही कर देने पर पौधों पर इस विषाणु के उग्र प्रभेद का असर नहीं पड़ता तथा ऐसे पौधों में अन्योन्य प्रतिरोध की क्षमता आ जाती है। भारत में इस विधि का प्रयोग भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलूर में ट्रिस्टेजा विषाणु हेतु प्रारंभ किया जाता है। ट्रिस्टेजा विषाणु के मंद प्रभेद संक्रमित पौधे यहां से प्राप्त किए जा सकते हैं, जिनका प्रवेशन कागजी नींबू के स्वस्थ बीजू पौधों पर करके बागवान लाभान्वित हो सकते हैं। ❐

अध्याय-21

असंगजनन: प्रकार एवं महत्व

वह अभिक्रिया जिसमें सामान्य लैंगिक जनन के स्थान पर अलैंगिक जनन द्वारा भ्रूण बनता है, उसे 'असंगजनन' तथा इसमें उत्पन्न पौधों को 'असंगजनक' पौधे कहते हैं। जिन बीजों में केवल असंगजनिक भ्रूण विद्यमान होते हैं, उन्हें 'अविकल्पी असंगजात' तथा जिनमें लैंगिक और असंगजनिक दोनों भ्रूण विद्यमान होते हैं, इन्हे 'विकल्पी असंगजात' नाम से संबोधित करते हैं।

असंगजनन के प्रकार

बीजों में भ्रूण की उत्पत्ति के आधार पर चार प्रकार के असंगजनन पाए जाते हैं:

1. प्रत्यावर्ती असंगजनन

कभी-कभी भ्रूण की उत्पत्ति बीजांडकोशिका के आस-पास की कोशिकाओं से हो जाती है, जिनमें किन्हीं कारणों से अर्धसूत्री विभाजन पूर्ण नहीं हो पाता है। इस प्रकार से उत्पन्न भ्रूण द्विगुणित होते हैं और इसका सृजन निषेचन के बिना होता है। सेब की कुछ जातियों तथा रसभरी में परागकण भ्रूण-निर्माण में सहायक होते हैं, परंतु इनमें निषेचन की प्रक्रिया पूर्ण रूप से नहीं हो पाती है। सेब की *मेलस सिकेमेन्सिस, मेलस ह्यूपेहेन्सिस* तथा *मेलस सारजेन्टाई* आदि जातियों में स्वपरागण होने पर असंगजनन द्वारा भ्रूण का सृजन होता है।

2. अपस्थानिक भ्रूणता

इसे बीजांडकायज भ्रूणता के नाम से भी संबोधित करते हैं। इसमें भ्रूण की उत्पत्ति बीजांडकायज तथा इसके आस-पास की कोशिकाओं एवं अध्यावरण आदि से होती है। इसमें सामान्य निषेचन क्रिया संपादित होती है। इसके फलस्वरूप युग्मकी तथा बीजांडकायिक भ्रूण का सृजन अक्सर साथ-साथ होता है। एक से अधिक भ्रूण के एक ही बीज में विद्यमान होने के कारण इसे बहुभ्रूणता से भी संबोधित करते हैं। नींबूवर्गीय कई फलों एवं आम की कुछ किस्मों में अपस्थानिक भ्रूणता पाई जाती है।

3. अनावर्ती असंगजनन

कभी-कभी भ्रूण की उत्पत्ति बीजांडाशय से बिना निषेचन के हो जाती है। इस अवस्था

में अंडकोशिका के अगुणित होने के कारण इससे उत्पन्न भ्रूण भी अगुणित होते हैं। हालांकि प्रकृति में समान्यत: इस प्रकार का असंगजनन नहीं होता है।

4. कायिक असंगजनन

कई पौधों में पुष्प के स्थान पर वानस्पतिक कलिकाओं या पत्र कलिकाओं की उत्पत्ति हो जाती है, जिसे कायिक असंगजनन के नाम से संबोधित किया जाता है। इस प्रकार का असंगजनन प्राय: पोय एवं एलियम में पाया जाता है।

बहुभ्रूणता

वह अभिक्रिया जिसके द्वारा एक बीज से एक से अधिक भ्रूण का सृजन होता है, 'बहुभ्रूणता' कहलाती है। बहुभ्रूणता कई कारणों से हो सकती है। प्राय: बीजांडकायज भ्रूणता के कारण नींबूवर्गीय फलों में बहुभ्रूणता पाई जाती है। कभी-कभी बीजांडाशय में एक से अधिक केंद्रक, भ्रूण में परिवर्तित हो जाते हैं तथा कभी-कभी प्राक्भ्रूण प्रारंभ में विभक्त होकर कई भ्रूण बना देते हैं। अत: इन्हीं कारणों से एक बीज में कई बार एक से अधिक भ्रूण बन जाते हैं, जिसे बहुभ्रूणता कहते हैं।

जर्मन वैज्ञानिक स्ट्रेसबर्गर (1929) ने सर्वप्रथम नींबू की जातियों में बहुभ्रूणता के विद्यमान होने की पुष्टि की थी। ताहिती लाइम, चकोतरा तथा तुरंज के अतिरिक्त कुछ अन्य नींबूवर्गीय फलों में बहुभ्रूणता पाई जाती है। कुछ फलों, जैसे खट्टा नींबू, रफ लेमन या जंभीरी, ग्रेपफ्रूट आदि में भ्रूण संख्या अपेक्षाकृत अधिक तथा अन्य में कम होती है। बहुभ्रूणीय जातियों में 1-40 तक भ्रूण हो सकते हैं, परंतु भारत में पाए जाने वाले नींबूवर्गीय फलों में अधिकाधिक 12 भ्रूण ही पाए जाते हैं।

आम की कुछ किस्में जो हवाई, मेक्सिको, इन्डोचाइना, ब्राजील, फिलीपीन्स, वेस्ट इन्डीज, श्रीलंका इत्यादि की देशज है, में बहुभ्रूणता होती है। इसकी प्रमुख बहुभ्रूणीय किस्में ओलूर, कुरूक्कन, कैराबो, कंबोडियाना, चंद्रकरन, गोवा, मोवान्डन, मालीपिलीयम, वेलारी, विल्लयी कोलंबन इत्यादि हैं। भारत में आम की किस्मों में 3-7 भ्रूण तथा फिलीपीन्स की किस्मों में 30 भ्रूण तक पाए गए हैं।

नींबूवर्गीय फलों के बीज की संरचना तथा बीजांडकायिक भ्रूण के निर्माण के लिए परागण और निषेचन आवश्यक होता है। बीजांडकायिक भ्रूण की संख्या बीजांड के निषेचन के समय पर निर्भर करती है। निषेचन देर से होने पर बीजांडकायिक भ्रूणों की संख्या बढ़ जाती है। इनमें एक पौधा युग्मकी तथा अन्य बीजांडकायिक होते हैं। बीजांडकायिक पौधों को मातृ पौधों के समरूप होने के कारण इनकी महत्ता बढ़ जाती है। अत: बहुभ्रूणीय बीजों में बीजांडकायिक पौधों की पहचान अति आवश्यक प्रक्रिया हो जाती है, जिसे निम्नलिखित साधारण विधियों को सहायता से पहचाना जा सकता है :

1. **बीजों का आकार देखकर:** एक भ्रूणीय बीज का आकार सुडौल तथा बहुभ्रूणीय बीज का बेडौल एवं उठा हुआ होता है। अत: बीज के आकार को देखकर कुछ सीमा तक इनकी पहचान की जा सकती है।

2. **बीजावरण हटाने पर:** प्राय: यह देखा गया है कि युग्मकी भ्रूण प्राय: स्वस्थ व चमकीला होता है तथा बीजांडकायिक भ्रूण के साथ कुछ अन्य सामग्री भी होती है।

3. **पौधों की समरूपता के आधार पर:** बहुभ्रूणीय बीजों के बोने पर प्राय: एक से अधिक पौधे अंकुरित होते हैं। प्राय: समरूप एवं सामान्य वृद्धि वाले पौधे बीजांडकायिक तथा कमजोर पौधे युग्मकी होते हैं।

4. **सूचक जीन द्वारा पहचान:** नींबूवर्गीय फलों में *'पॉन्सिरसस ट्राइफोलियेटा'* की त्रिदलीय पत्तियां तथा चकोतरा के विकसित पक्ष का उपयोग सूचक 'जीन ' के लिए किया जा सकता है। करना खट्टा तथा जम्भीर के पुष्पों में विपुंसीकरण करके *'पॉन्सिरसस ट्राइफोलिएटा'* से परागण करने पर जो बीज प्राप्त होते हैं, उन्हें पुन: बोने पर त्रिदलीय पत्तियों वाले पौधे युग्मकी तथा एक दलीय पत्तियों वाले पौधे बीजांडकायिक होते हैं। आजकल इसी विधि का प्रयोग करके बीजांडकायिक पौधों की पहचान की जा रही है। ठीक इसी प्रकार, सूचक जीन का उपयोग करके अन्य जातियों के बीजों की पहचान की भी प्रबल संभावनाएं हैं।

अक्सर यह देखा गया है कि आम की बहुभ्रूणीय किस्मों में बीज बनते समय प्राय: युग्मकी भ्रूण नष्ट हो जाता है। अत: ऐसी गुठली को बोने पर केवल बीजांडकायिक पौधे ही अंकुरित होते हैं, जिसके फलस्वरूप इनमें पहचान की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार 'रफ लेमन' या 'जंभीरी' आदि में भी युग्मकी भ्रूण प्राय: सामान्य: नहीं बन पाते हैं। अत इनमें भी केवल बीजांडकायिक भ्रूण विद्यमान होते हैं।

बहुभ्रूणता का औद्यानिक उपयोग

नए बाग की स्थापना में आजकल बीजांडकायिक पौधों की उपयोगिता विशेषकर नींबूवर्गीय फलों में बढ़ती जा रही है। बहुभ्रूणता की निम्नलिखित औद्यानिक उपयोगिता है:

1. बीजांडकायिक पौधों की उत्पत्ति बीजांडकाय कोशिका, अध्यावरण इत्यादि से समसूत्री विभाजन द्वारा होती है, जिसके फलस्वरूप इन पौधों में आपस में समरूपता होती है। अत: इनके कायिक प्रवर्धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

2. नींबूवर्गीय फलों में बीजांडकायिक पौधों में मूसला मूलतंत्र होने से कायिक विधियों

द्वारा प्रवर्धित पौधों की अपेक्षा वे अच्छे मूलवृंत प्रमाणित होते हैं। इसी प्रकार आम में बहुभ्रूणीय किस्मों की उपयोगिता भी इसी तरह व्यावसायिक स्तर पर होती है।

3. नींबूवर्गीय फलों के पौधों का निरंतर कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन करते रहने से उनमें विषाणु के परोक्ष संक्रमण तथा अन्य कारणों से धीरे-धीरे पौधों के ओज और फलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पुन: इनका जनन बीज द्वारा करने पर नवीकरण प्रक्रिया के कारण इनसे प्रवर्धित पौधे ओजस्वी तथा अच्छे फलोत्पादक होते हैं। भारत में कागजी नींबू एवं कुर्ग संतरा आदि बीजांडकायिक पौधों का व्यावसायिक रोपण होता है।

4. बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर प्राय: विषाणुओं से संक्रमण की संभावना नहीं रहती है। प्राय: विषाणु-संचरण संक्रमित सांकुर शाखाओं तथा रोगवाहक कीट द्वारा होता है। अत: बहुभ्रूणीय बीजों से प्रवर्धन करने पर विषाणुमुक्त एवं समरूप पौधे प्राप्त होते हैं। यदि इन पौधों को कीटरोधी सरंचनाओं में उगाया जाए तो इनसे प्रवर्धन हेतु विषाणुमुक्त सांकुर टहनी उपलब्ध होती है।

❐

अध्याय-22

कलम द्वारा प्रवर्धन: लाभ, सिद्धांत एवं कारक

औद्यानिक पौधों का कलम द्वारा प्रवर्धन एक अत्यंत सरल एवं कम खर्चीली विधि है। कलम पौधे के किसी भी भाग से ली जा सकती है। फलवृक्षों में मुख्यरूप से कलम तने से ली जाती है। परंतु कुछ में कलम, जड़ों (जैसे सेब, साइडोनिया) से भी ली जाती हैं। कलम लेते समय कुछ विशेष सावधानियां बरतनी चाहिए। जैसे रोगग्रस्त, अस्वस्थ टहनियों से कलम लेने पर प्रवर्धन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: कलम लेने के लिए स्वस्थ एवं मजबूत टहनियों का चुनाव करना चाहिए। कलम द्वारा प्रवर्धन के कई लाभ हैं, जैसे :

1. यह प्रवर्धन की आसान, सस्ती एवं सुविधाजनक विधि है।
2. कलम द्वारा प्रवर्धित पौधे, मातृ पौधे के समरूप होते हैं।
3. कलम द्वारा पौधे तैयार करने हेतु किसी विशेष तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती।
4. थोड़े समय में अधिक पौधे तैयार किए जा सकते हैं।
5. इस विधि में मूलवृंत का उपयोग नहीं होता। अत: असंगतता जैसी कोई समस्या नहीं होती है।
6. कलमों द्वारा प्रवर्धन हेतु पौधशाला में कम स्थान की आवश्यकता होती है।
7. कलमों का कुछ समय के लिए भंडारण भी संभव होता है।
8. कलमों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना काफी आसान होता है।

कलम में जड़ निकलने की प्रक्रिया

कलम द्वारा प्रवर्धन में यह अत्यंत आवश्यक है कि सुचारु रूप से जड़ एवं कलियों का विकास हो। किसी भी कलम से नए पौधे के निर्माण में दो सिद्धांत सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रथम सिद्धांत के अनुसार कोशिकाओं में पूर्णशक्तता होती है, जिससे प्रत्येक कोशिका में आनुवंशिक क्षमता होती है कि वह अपने गुणों से युक्त नया पौधा बना सके तथा दूसरा

निर्विभेदन सिद्धांत जिसमें परिपक्व कोशिकाओं की यह क्षमता होती है कि वे पुन: अपरिपक्व स्थिति प्राप्त कर लें और विभाजन का कार्य कर सकें।

सामान्यत: पौधों में कलम द्वारा प्रवर्धन की क्षमता में विभिन्नता पाई जाती है। कुछ कलमों में आसानी से जड़े निकल आती हैं जबकि कुछ में कठिनाई से निकलती हैं। कुछ विशेष पौधों की कलम को विशेष रूप से उपचारित करने की आवश्यकता पड़ती हैं। अत: यह अत्यंत आवश्यक है कि कलम से जड़ निकलने की प्रक्रिया को ठीक प्रकार से समझा जाए।

कलम से जड़ें निकलने की प्रक्रिया तीन स्तरों में पूरी होती है। पहली अवस्था में कुछ विभज्योतकी कोशिकाओं का निर्माण कोशिका विभाजन द्वारा होता है। दूसरी अवस्था में विभज्योतकी कोशिकाओं का अग्रज मूल में विभेदन होता हैं और तीसरी अवस्था में यह नई जड़ों के निर्माण के साथ-साथ अन्य ऊतकों को भेदते हुए बाहर निकलता है। इसी के साथ सवंहन ऊतकों द्वारा कलम से इसका संपर्क स्थापित हो जाता है। कलमों में मूलन क्रिया का वर्णन निम्नलिखित है:

मूलन समारंभक का शारीरीय आधार

जड़ें चाहे पौधे के किसी भी भाग, तने, जड़ या पत्ती आदि से निकले, परंतु उसका शारीरीय आधार होता है। इसका आधार फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने सन् 1758 में खोजा था जिसकी संस्तुति बाद में कई वैज्ञानिकों ने की। इसका आधार निम्नलिखित बातों से सिद्ध होता है:

क. अग्रज मूलरूप (प्राइमोर्डिया) का निर्माण

अधिकांश पौधों में अपस्थानिक जड़ों का निर्माण कलम को मातृ पौधे से अलग करने के बाद शुरू होता है। मूल निर्माण कुछ विभाज्य कोशिका-समूहों के द्वारा होता है। शाकीय पौधों में ऐसी कोशिकाएं संवहन ऊतक के बाहर स्थित होती हैं। इन कोशिकाओं में तेजी से विभाजन शुरू हो जाता है, जिससे अग्रज मूलरूप एवं मूलाग्र का निर्माण होता है। बहुवर्षीय काष्ठीय पौधे जिनमें द्वितीय वृद्धि के नाते द्वितीयक जाइलम व फ्लोएम ऊतकों की एक से अधिक परते होती हैं, उनमें प्राय: नए द्वितीयक फ्लोएम से मूलन होता है। इसके अतिरिक्त संवहन ऊतकों के अन्य भाग, जैसे संवहन रे, पिथ इत्यादि से भी मूलन होता है।

ख. पूर्व निर्मित प्राथमिक मूल

कुछ पौधों में अपस्थानिक जड़ों का निर्माण, मातृ पौधे से कलम लेने के पहले ही

हो जाता है। ये प्राथमिक मूल प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं। फलवृक्षों में पूर्व निर्मित प्राथमिक मूल तुरंज, सेब, वीही (क्विंस), गूजबेरी, करेन्ट इत्यादि में पाई जाती हैं। सेब एवं वीही में इनकी संख्या अधिक होने के कारण स्पष्ट उभार गांठों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें 'बरनॉट' कहते हैं। मूलन के लिए पूर्व निर्मित प्राथमिक मूल का होना अनिवार्य नहीं है, परंतु इनके रहने पर जड़ें आसानी से निकल आती हैं। अंगूर, अनार इत्यादि में पूर्व निर्मित प्राथमिक मूल नहीं होते, परंतु फिर भी इनमें मूलन में कोई कठिनाई नहीं होती है।

ग. कैलस का निर्माण

कलमों की पौधशाला में रोपाई के बाद उनके आधार पर स्थिति मृदूतक कोशिकाओं के समूह का निर्माण शुरू होता है। इसे 'कैलस' कहते हैं। कैलस के निर्माण में संवहन, कैम्बियम, फ्लोएम एवं मज्जा आदि ऊतक सहायता करते हैं। कैलस का निर्माण एवं जड़ों का निकलना दो अलग-अलग प्रक्रियाएं हैं, परंतु ये दोनों क्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। अत: यह समझा जाता है कि मूलन हेतु कैलस का बनना अनिवार्य है, परंतु यह सच नहीं होता है। उदाहरणत: अखरोट एवं बेर की कलमों में कैलस तो बन जाता है, परंतु जड़ें बड़ी कठिनाई से निकलती हैं।

दैहिक कारकों का मूलन में योगदान

पौधों की विभिन्न प्रक्रियाएं उनमें पाए जाने वाले हॉर्मोनो द्वारा नियंत्रित होती हैं। कलमों में भी मूलन एवं इनकी वृद्धि विभिन्न प्रकार के हॉर्मोनो द्वारा प्रभावित होती है जिसे कुछ हद तक बाहरी पादप वृद्धि नियामक रसायनों द्वारा परिवर्तित एवं आपूर्त किया जा सकता है। निम्नलिखित दैहिक कारक या वृद्धि नियामक कलम के मूलन में योगदान देते हैं:

क. ऑक्सिन

गत सहस्राब्दि के चौथे दशक में पाया गया कि पौधों में विद्यमान अथवा बाहर से प्रयुक्त ऑक्सिन (इंडोल एसीटिक अम्ल) अन्य प्रक्रियाओं के साथ-साथ मूलन को भी प्रभावित करता है। दो कृत्रिम ऑक्सिन, इंडोल ब्यूटीरिक अम्ल व नेप्थलीन एसीटिक अम्ल, प्राकृतिक ऑक्सिन इंडोल एसिटिक अम्ल की अपेक्षा मूलन प्रक्रिया के नियंत्रण में अधिक प्रभावकारी है। अत: अपस्थानिक मूलन, कलम में पाए जाने वाले आंतरिक व बाहर से प्रयुक्त ऑक्सिन की सांद्रता द्वारा नियंत्रित होता है।

ख. जिब्रैलिन

जिबैलिन एवं इनके जैसे रसायन प्राय: मूलन की प्रक्रिया को प्रतिकूल रूप से

प्रभावित करते हैं। जिब्रैलिन की अधिकता होने पर पुरानी कोशिकाओं में विभाजन अवरूद्ध हो जाता है, जिस कारण मूलन प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न होता है।

ग. साइटोकाइनिन

विभाज्योतक का अग्रज मूलरूप का निर्माण ही मूलन ही प्रथम अवस्था है। स्कूग एवं उनके सहयोगियों ने यह बताया है कि अग्रज विभाजन की प्रक्रिया ऑक्सिन व साइटोकाइनिन तथा इसके समकक्ष रसायनों की आपेक्षिक सांद्रता पर निर्भर करती है। साइटोकाइनिन जैसे पदार्थ की सांद्रता ऑक्सिन से अधिक होने पर कलिकाओं व पत्तियों की वृद्धि में सहायक होती है परंतु ऑक्सिन की अधिकता मूलन को बढ़ाती है।

घ. एथिलीन

एथिलीन पौधों के द्वारा उत्पादित एक गैसीय हॉर्मोन है, जिसकी कम सांद्रता मूलन प्रक्रिया को बढ़ाती है जबकि अधिक सांद्रता (100 पी.पी.एम.) मूलन प्रक्रिया को अनावश्यक रूप से प्रभावित करती है।

ड. विटामिन

आंतरिक स्तर पर पाए जाने वाले तथा बाहर से दिए गए विटामिन मूलन प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। थॉयामीन, पाइरिडॉक्सिन, नियासिन व बॉयोटिन, बी कॉप्लेक्स, विटानिम के. तथा विटामिन एच. सभी मूलन प्रक्रिया को अनुकूल रूप से बढ़ाते हैं। यदि इन विटामिन का प्रयोग ऑक्सिन के साथ किया जाए तो मूलन में और भी तेजी आती है।

च. कलिका एवं पत्तियों की उपस्थिति

कलम पर पत्तियों एवं कलिकाओं की उपस्थिति, मूलन प्रक्रिया को बढ़ाती हैं। पत्तियां कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करती हैं, जो तने के निचले भाग में पहुंच कर मूलन प्रक्रिया में सहायता करते हैं। इसके साथ-साथ पत्तियां व कलिकाएं ऑक्सिन का निर्माण करती हैं, जो मूलन के लिए अति आवश्यक होते हैं।

छ. मूलन सहकारक

कई पौधों के तने, जड़ एवं पत्तियों की कलमों में कई प्रकार के मूलन सहकारक पाए गए हैं। ऐसे कारक प्राकृतिक तौर पर होते हैं एवं वे अन्य मुख्य कारकों के साथ मिलकर मूलन में सहायता करते हैं। इस तरह के प्रयोग 1933 से शुरू हुए और 1958 तक आते-आते वैज्ञानिकों ने ऐसे 4 सहकारकों का पता लगाया जो पौधों की कलमों के

मूलन में सहायता करते हैं। इन सहकारकों के मूलन में सहयोग का परिकाल्पनिक संबंध रेखाचित्र- 11 में में दिखाने की कोशिक की गई है।

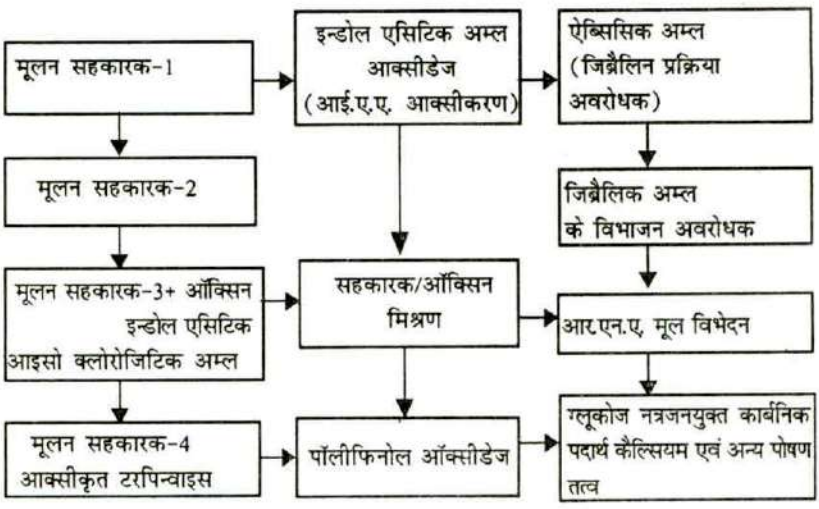

रेखाचित्र 11: विभिन्न कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों का अपस्थानिक मूलन में परिकाल्पनिक संबंध

ज. पोषण की कमी

कलम से प्राप्त किए जाने वाले मातृ पौधों का स्वास्थ्य मूलन प्रक्रिया को प्रभावित करता है। मुख्यरूप से नाइट्रोजन व कार्बोहाइड्रेट का संग्रह अति महत्वपूर्ण है। कम नाइट्रोजन व अधिक कार्बोहाइटड्रेट मूलन को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि कार्बोहाइड्रेट के कम होने पर मूलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: पौधे में उचित सी.एन. (कार्बन एवं नाइट्रोजन) अनुपात मूलन हेतु अति महत्वपूर्ण है।

झ. मूल निरोधक रसायन

कभी-कभी कलमों में विद्यमान मूल निरोधक रसायन मूलन प्रक्रिया में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। सर्वप्रथम अंगूर की कलमों में दो मूलन निरोधक रसायन पाए गए। इनका पानी द्वारा निक्षालन (पानी में डुबोकर बहाना) से कलमों में मूलन सुगमतापूर्वक होता

है। इसी प्रकार आम की किस्म 'लंगड़ा' में भी ऐब्सिसिक अम्ल की उपस्थिति से मूलन में कठिनाई पैदा होती है।

मूलन प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न पौधों की कलमों में मूलन की शक्ति में भिन्नता होती है। मूलन की प्रक्रिया बाह्य तथा आंतरिक कारकों से प्रभावित होती है, जिनका विवरण निम्न है:

1. मातृ पौधे की दैहिक दशा

मातृ पौधे की दैहिक दशा उससे तैयार कलम में मूलन प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित करती है। उदाहरणत: यदि कलम ऐसे मातृ पौधे से ली गई है जिसमें पानी की कमी है, तो कलम में मूलन ठीक से नहीं होगा। कलम में मूलन सुचारु रूप से होने के लिए मातृ पौधे से कलम सुबह के समय लेनी चाहिए, जब पौधों की कोशिकाएं ताजी हों। मातृ पौधों की पोषण अवस्था भी मूलन को प्रभावित करती है। ऐसा पाया गया है कि सेब व रसभरी में जब कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है तो मूलन अच्छा होता है।

कच्ची कलमों में कार्बोहाइड्रेट का संग्रह कम होने के कारण मूलन की संभावना बहुत कम होती है। यही कारण है कि जल्दी वृद्धि करने वाले जलांकुरों को कलम के रूप में प्रयोग करने की संस्तुति नहीं की जाती है।

2. किशोरावस्था

वह अवस्था जब किसी पौधे में ओजपूर्ण वृद्धि हो रही हो, फूल आने की क्षमता न हो तथा विशेष आकार की पत्तियां, तने और कांटे (नींबूवर्गीय फल) पाए जाते हैं, उसे 'किशोरावस्था' कहते हैं। अलग-अलग पौधों में इस अवस्था की अवधि भिन्न-भिन्न होती है। किसी-किसी पौधे में किशोरावस्था के दौरान प्राप्त कलमों में ही मूलन की संभावना होती है और जैसे-जैसे पौधे की आयु बढ़ती जाती है उनमें शारीरिक एवं रासायनिक परिवर्तन के कारण मूलन की क्षमता कम होती जाती है। मातृ पौधों में यदि कलमें तैयार करने हेतु पर्याप्त संख्या में शाखाएं नहीं हों तो गहरी काट-छांट एवं जिब्रेलिक अम्ल के छिड़काव से पौधों में किशोरावस्था बढ़ाई जा सकती है।

3. ध्रुवता

पौधों में ध्रुवता एक वंशानुगत गुण है जो शुरू के वर्षों में ही निर्धारित हो जाता है। कलम में मूलन के लिए ध्रुवता का विशेष महत्व है। कलम का रोपण करने पर दूरस्थ किनारे पर (चोटी के नजदीक) शाखाएं तथा भूमि के समीपस्थ किनारे (आधार) की

तरफ पर मूलन होता है। जबकि जड़ कलम में मूलन दूरस्थ किनारे तथा शाखाएं समीपस्थ किनारे से उत्पन्न होती हैं। अत: कलम के रोपण के समय ध्रुवता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

4. पांडुरता

फलवृक्षों की ओजयुक्त शाखाओं के आधार पर काला कपड़ा, काली पॉलिथीन, टेप इत्यादि बांधकर इन शाखाओं से कलमों में मूलन सुगमतापूर्वक होता है। पांडुरता का लाभ 'स्टूलिंग', 'खाई दाबा' एवं 'गूटी' में विशेष उपयोगी होता है। इस विधि का उपयोग आम, कटहल एवं अमरूद की कलमों में मूलन प्रेरित करने के लिए किया जाता है।

5. वलयन

कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य भोज्य पदार्थों की अधिकता मूलन में सहायक होती है। इसलिए ऐसी विधि जिसमें कार्बोहाइड्रेट और अन्य पदार्थों का स्थानांतरण रुक जाए, मूलन में सहायक हो सकती है। अत: नई शाखाओं से ली जानी वाली कलमों के आधार पर 2-3 सेमी. चौड़ी छाल वलय की भाँति हटा देने पर प्राय: फ्लोएम ऊतक नष्ट हो जाते हैं जिससे कलिकाओं एवं पत्तियों द्वारा निर्मित भोज्य एवं विशिष्ट पदार्थ आधार पर एकत्रित होकर मूलन में सहायक होते हैं।

6. वृद्धि नियामकों से उपचार

1934 में ऑक्सिन हॉर्मोन के मूलन में प्रभाव के ज्ञान से कलम से प्रवर्धन में नई क्रांति आई है। मुख्यरूप से इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल मूलन प्रक्रिया में अत्यंत लाभकारी पाया गया है। इस वृद्धि नियामक की सांद्रता विभिन्न पौधों की विभिन्न प्रकार की कलमों हेतु भिन्न-भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त नेप्थलीन एसीटिक अम्ल व 2, 4-डी. आदि ऑक्सिन भी मूलन में प्रभावी पाए गए हैं।

7. पोषक तत्व

विभिन्न पोषक तत्वों का भी मूलन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान होता है। कुछ फलवृक्षों में कलम को नाइट्रोजन युक्त पदार्थों से उपचारित करने पर मूलन में तेजी आती है।

8. कवकनाशी का उपयोग

कलम में मूलन प्रक्रिया शुरुआत में अच्छी तरह होती है, परंतु बाद में रोगों के आक्रमण से यह गति काफी धीमी हो जाती है। अत: कलमों को कवकनाशी, जैसे केप्टान

व बेनोमिल से उपचारित करके लगाने पर अच्छी सफलता प्राप्त की जा सकती है। कलमों को कवकनाशी के पाउडर से उपचार, वृद्धि नियामक का लेप लगाने के बाद करना चाहिए। केप्टान व बेनोमिल कवकनाशियों में केप्टान का प्रभाव अधिक होता है, क्योंकि इसकी विघटन अवधि अधिक होती है तथा यह अधिक दिनों तक प्रभावी रहता है।

9. कलम लेने का समय

मातृ पौधों से कलम लेने के समय का मूलन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। सदाबाहर फलवृक्षों में कलम रोपण वर्षाऋतु में करने पर अच्छे मूलन की संभावना होती हैं। नींबू जाति के पौधों, विशेषत: लेमन से जून-जुलाई अथवा फरवरी की कलमों में मूलन में अच्छी सफलता मिलती है।

10. शाखा के किस भाग से कलम ली जाए

प्राय: यह देखा गया है कि शाखाओं के आधार वाले भाग से तैयार की गई कलमों में मूलन ऊपरी भाग से प्राप्त कलमों की अपेक्षा अच्छा एवं अधिक होता है। प्रयोगों से सिद्ध होता है कि जैतून, ब्लूबेरी, अलूचा, सेब आदि फलवृक्षों के प्रवर्धन हेतु एक ही शाखा के विभिन्न भागों से ली गई कलमों में ऐसा अंतर स्पष्ट दिखाई देता है।

11. कलमों के निचले भाग में काट लगाना

कलमों के निचले भाग में काट लगाने से कुछ फलवृक्षों में मूलन में सहायता मिलती है। काट लगाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1) काट दृढ़ सक्लेरेन्काइमा ऊतकों के रिंग को तोड़ देता है।

2) काट पानी के अवशोषण को बढ़ा देता है। साथ ही साथ मूलन माध्यम से तत्वों व वृद्धि कारक रसायनों का अवशोषण भी बढ़ जाता है।

3) काट वाले स्थान पर वृद्धि कारक रसायनों का रिसाव बढ़ने से इन कोशिकाओं में श्वसन क्रिया बढ़ जाती है।

4) काट के नजदीकी कोशिकाओं में विभाजन तेजी से होता है।

5) काट वाली कोशिकाएं एथिलीन का निर्माण करती हैं, जो मूलन में सहायक होती है।

12. वातावरण का प्रभाव

वातावरण के विभिन्न कारक भी मूलन प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। मुख्य वातावरण कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

अ. पानी

मूलन के लिए कलमों पर पत्तियों का होना आवश्यक माना जाता है क्योंकि ये कार्बोहाइड्रेट व वृद्धिकारक रसायन बनाती हैं जो मूलन में सहायता करते हैं। परंतु पत्तियों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा नमी का ह्रास होता है जिससे मूलन प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: कलमों में मूलन हेतु प्रवर्धन माध्यम में उचित मात्रा में उपयुक्त समय पर नमी बनाए रखना अति आवश्यक होता है।

ब. तापमान

दिन का तापमान 21-24° सेल्सियस व रात का तापमान 13-15° सेल्सियस मूलन प्रक्रिया के लिए सबसे उपयुक्त तापमान पाए गए हैं। अधिक या कम तापमान दोनों ही मूलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

स. प्रकाश

प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए प्रकाश आवश्यक होता है। प्रकाश-संश्लेषण द्वारा निर्मित भोज्य पदार्थ मूलोत्पत्ति में सहायक होते हैं। अत: प्रकाश की तीव्रता, अवधि एवं गुणवत्ता तीनों ही मूलन को प्रभावित करते हैं।

❐

कलम के प्रकार

कलम पौधों के किसी भी वानस्पतिक भाग से ली जा सकती है। अत: कलम हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले भाग के अनुसार कलम को तना कलम, जड़ कलम, पत्ती कलम व कलिका-पत्ती कलम में वर्गीकृत किया गया है।

अ. तना कलम

तने की विभिन्न प्रकार की कलमें, जैसे सख्त काष्ठ कलम, अर्धसख्त काष्ठ कलम, हरित काष्ठ कलम व शाकीय कलम आदि का प्रवर्धन हेतु प्रयोग किया जाता है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखत है :

(1) सख्त काष्ठ कलम

ऐसी कलमें जो एक वर्ष पुरानी व परिपक्व शाखाओं से तैयार की जाती हैं, उन्हें 'सख्त काष्ठ कलम' कहते हैं। कभी-कभी ऐसी कलम हेतु दो वर्ष पुरानी शाखाएं भी प्रयोग की जा सकती हैं। सख्त काष्ठ कलम द्वारा प्रवर्धन शायद सबसे आसान व सस्ता होता है। साधारणत: ऐसी कलमें नवंबर से जनवरी के महीनों में तैयार की जाती हैं। कलम हेतु चयनित मातृ पौधे व शाखाएं परिपक्व व स्वस्थ होनी चाहिए। कलम की लंबाई आवश्यकतानुसार 10 से 45 सेमी. तक हो सकती है (रेखाचित्र-12)। प्रत्येक कलम में कम से कम दो आंखे/कलियां जरूर होनी चाहिए तथा कलम तैयार करते समय ऊपरी हिस्से में तिरछा व आधार की तरफ सीधा चीरा लगाया जाना चाहिए। ऐसा करने से कलमों के रोपण के समय ध्रुवता का पता आसानी से लगता है और बरसात के समय पानी कलम के ऊपरी हिस्से में एकत्रित नहीं होता है, जिससे कलम के सड़ने का भय नहीं रहता है। सख्त काष्ठ कलम द्वारा अंगूर, अनार,

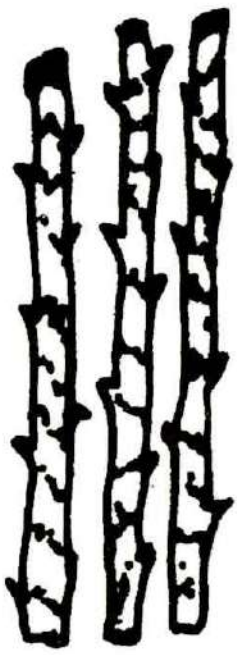

रेखाचित्र 12: सख्त काष्ठ कलम

अंजीर, जैतून, शहतूत, सेब, नाशपाती आदि फलवृक्ष प्रवर्धित किए जाते हैं।

(2) अर्धसख्त काष्ठ कलम

अर्धसख्त काष्ठ कलम प्राय: अर्धपरिपक्व शाखाओं से, जिनकी आयु 4-9 माह होती है, तैयार की जाती है। ऐसी शाखाएं, जो एक झटके से एकदम साफ सुथरी टूट जाएं ऐसी कलमें तैयार करने हेतु ठीक रहती हैं। ऐसी कलमें प्राय: सदाबहार फलवृक्षों जैसे आम, अमरूद, कटहल व नींबू आदि में प्रवर्धन हेतु प्रयोग की जाती हैं। कलम की लंबाई 7 से 20 सेमी. रखी जाती है। कलम के ऊपरी हिस्से में 2-4 पत्तियां भी रखी जाएं तो लाभदायक रहता है। इसी तरह यदि कलमों को क्यारियों में लगाने से पहले इन्डोल ब्युटीरिक अम्ल (5,000 पी.पी.एम.) से उपचारित करें तो उनमें जड़ें जल्दी व आसानी से निकल आती हैं।

(3) हरित काष्ठ कलम

जो कलमें मुलायम, कोमल, अपरिपक्व व 2-3 माह पुरानी शाखाओं से तैयार की जाती हैं उन्हें 'हरित काष्ठ कलम' कहते हैं। ऐसी कलमों की लंबाई 10 से 15 सेमी. होती है (रेखाचित्र-13)। ऐसी कलमें प्राय: गर्मियों में बनाई जानी चाहिए व उनके ऊपरी हिस्से में कुछ पत्तियां अवश्य रखी जानी चाहिए। जूनिपर, अजेलिया एवं लिलेक आदि पौधे ऐसी कलमों से तैयार किए जाते हैं।

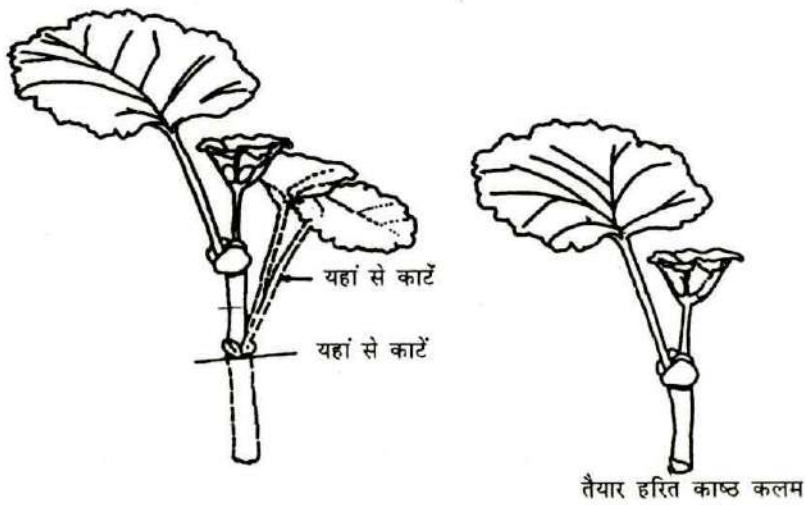

रेखाचित्र 13: हरित काष्ठ कलम

4. शाकीय कलम

शाकीय कलमें पौधे के अग्रज शाकीय भागों से तैयार की जाती हैं। ये कलमें भी अति कोमल होती हैं। इनकी लंबाई 7 से 15 सेमी. के बीच रखी जाती है क्योंकि ये कलमें बहुत ही नाजुक होती हैं, अत: इन्हें कुहासा घर में रोपित करें तो आश्चर्यजनक परिणाम मिलते हैं। ऐसी कलमों का प्रयोग गुलदाऊदी, गुलमेंहदी, डहेलिया, कार्नेशन आदि के प्रवर्धन में व्यावसायिक स्तर पर किया जाता है।

ब. जड़ कलम

जड़ कलम द्वारा पौधों का प्रवर्धन भी एक आसान व सस्ती विधि है। वे पौधे, जो प्राय: स्वत: भूस्तारी तने पैदा करते हों, जड़ कलम द्वारा सुगमतापूर्वक प्रवर्धित किए जा सकते हैं। जड़ कलम तैयार करने हेतु ऐसी जड़ों का चयन किया जाता है, जो कम से कम 10-15 सेमी. लंबी और 1 सेमी. मोटी हों। ऐसी जड़ों को कई हिस्सों में काट लिया जाता है (रेखाचित्र-14)।

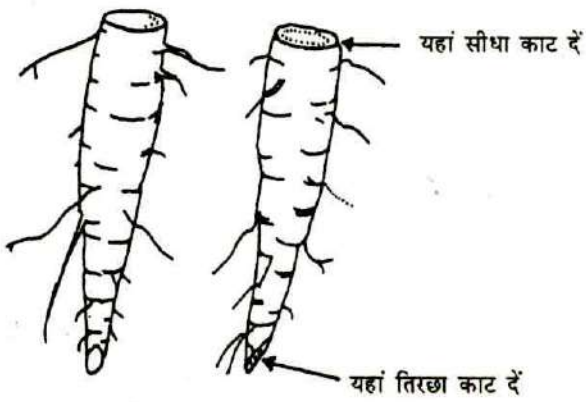

रेखाचित्र-14 : जड़ कलम

शीतोष्ण वर्गीय फलों, जैसे सेब, नाशपाती, अलूचा आदि में जड़ कलमें दिसंबर में बनाई जाती हैं और उन्हें गर्मियों तक मॉस में लपेटकर गर्म स्थान पर रखा जाता है व फरवरी-मार्च में उन्हें क्यारियों में रोपित किया जाता है। प्राय: ब्लैकबेरी व रसभरी को व्यावसायिक स्तर पर जड़ कलमों द्वारा ही प्रवर्धित करते हैं, परंतु सेब, नाशपाती, आड़ू, चेरी व जापानी फल आदि फलवृक्षों में केवल प्रयोगात्मक स्तर पर जड़ कलम का प्रयोग किया जाता है।

स. पत्ती कलम

कई पौधों की मोटी व मांसलदार पत्तियों में जड़े पैदा करने की क्षमता होती है। ऐसे पौधों को पत्ती कलम द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। पत्ती कलम में जड़तंत्र विकसित करने हेतु अधिकाधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। अत: यदि पत्ती कलमों को कुहासा घर में लगाया जाए तो उनमें जड़ें जल्दी व अधिक संख्या में निकलती हैं। बिगोनिया, केमोलिया, रोडोंडेड्रान, सेन्सवीरिया आदि शोभाकारी पौधों का प्रवर्धन पत्ती कलम द्वारा किया जा सकता है।

ड. कलिका पत्ती कलम

कई पौधों की पत्तियों में कभी-कभी कलियां भी पैदा हो जाती हैं। ऐसी पत्तियों की कलमें भी प्रवर्धन में प्रयुक्त की जाती हैं। ब्लैकबेरी व रसभरी को व्यावसायिक स्तर पर इस विधि द्वारा प्रवर्धित कर सकते हैं।

❐

अध्याय-24

दाबा द्वारा प्रवर्धनः लाभ, सीमाएं एवं विधियां

पौधशालाकर्मियों द्वारा दाबा का प्रवर्धन हेतु प्रयोग कई सदियों से किया जा रहा है। दाबा में पौधे के किसी भाग को मातृ पौधे से संबंधित रखते हुए मूलन कराकर नए पौधों का सृजन किया जाता है। अच्छा जड़तंत्र विकसित होने के बाद उस भाग को अलग कर क्यारियों या खेतों में रोपित कर दिया जाता है। दाबा कुछ पौधों, जैसे रसभरी, स्ट्राबेरी व ब्लैकबेरी आदि में प्रवर्धन की प्राकृतिक विधि है, परंतु अन्य पौधों में उचित दशाएं प्रदान कर ही मूलन कराकर नए पौधों का सृजन किया जाता है। उदाहरणतः लीची, अमरूद, नींबू, क्रोटन, रबड़, कटहल आदि औद्यानिक पौधों का व्यावसायिक स्तर पर प्रवर्धन दाबा द्वारा किया जाता है।

दाबा द्वारा प्रबंधन के लाभ

1. दाबा द्वारा प्रवर्धन एक आसान विधि है जिसके लिए न तो अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है और न ही सुविधाओं की।
2. यह विधि उन पौधों हेतु उत्तम विधि है जो कलम द्वारा आसानी से प्रवर्धित नहीं किए जा सकते हैं।
3. यह उन पौधों, जैसे रसभरी, स्ट्राबेरी एवं ब्लैकबेरी, के प्रवर्धन हेतु एक अच्छी विधि है जिनमें प्राकृतिक तौर पर नए पौधे निकलते रहते हैं।
4. इस विधि में थोड़े से समय में बड़ा पौधा प्राप्त हो जाता है।
5. दाबा द्वारा कई फलवृक्षों जैसे वीही, सेब, अलूचा आदि के मूलवृतों का प्रवर्धन किया जाता है।

दाबा द्वारा प्रवर्धन की सीमाएं

1. दाबा द्वारा कलम की अपेक्षा मातृ पौधे से सीमित संख्या में ही पौधे मिलते हैं।
2. कम समय में अधिक संख्या में पौधे बनाना संभव नहीं होता।

3. कठिनाई से मूलन करने वाले पौधे में दाबा द्वारा प्रवर्धन संभव नहीं होता है।
4. दाबा द्वारा प्रवर्धन करने पर मूलवृंत के लाभदायक प्रभावों का उपयोग संभव नहीं होता है।
5. दाबा द्वारा प्रवर्धन में कलम की अपेक्षा अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।
6. कलम की अपेक्षा यह प्रवर्धन की खर्चीली विधि है।

साधारणतः दाबा में वयलन, पांडुरता, वृद्धि नियामकों से उपचार, तापमान, आर्द्रता आदि की अनुकूल दशाओं में अच्छा मूलन होता है।

दाबा द्वारा प्रवर्धन को प्रभावित करने वाले कारक

प्रायः यह देखा गया है कि दाबा में जड़ें मुलायम एवं नाजुक होती हैं और वे अक्सर टूट भी जाती हैं। यही कारण है कि दाबा द्वारा प्रवर्धित पौधों के पौधशाला या खेत में लगाने पर इनके मरने की अधिक संभावना होती है। दाबा में मूलन को कई कारक प्रभावित करते हैं। ऐसे प्रमुख कारकों का विवरण निम्नलिखित है:

1. पोषण

जब भी दाबा द्वारा प्रवर्धन किया जाता है तो दाबा की शाख में मूलतंत्र विकसित होने तक वह मुख्य तने के साथ ही रहती है और उसे भोज्य पदार्थ या पानी की आपूर्ति भी उसी तरह होती है। अतः यदि उस शाखा को पोषण और पानी आदि की कमी हो तो दाबा में समय से जड़ें नहीं निकलेंगी या निकलीं भी तो कम संख्या में होंगी। अतः मातृ पौधे को अच्छे पोषण की आवश्यकता होती है। मातृ पौधे में भरपूर पोषक तत्व या अन्य भोज्य सामग्री भरपूर मात्रा में होने पर इसके दाबा से तैयार पौधों में मूलन भी शीघ्र और भरपूर होगा।

2. दाबा शाखा की प्रक्रियाएं

जिस शाखा से दाबा तैयार करना हो उसमें तरह-तरह की प्रक्रियाएं, जैसे शाखाओं को मोड़ना या टेढ़ा करना, वलयन, चीरा आदि की जाती हैं, जिससे कार्बोडाइड्रेट, पादप वृद्धि नियामक आदि उस भाग या शाख से नीचे न जाकर, उस चीरे व वलयन के पास एकत्रित होकर मूलन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। प्रयोगों से यह पाया गया कि तने में वयलन, चीरा आदि करने से दाबा में मूलन शीघ्र एवं अच्छा होता है। वलयन हेतु तने के आधार से 2 से 4 सेमी. छाल निकाली जाती है।

3. पांडुरता या धवलन

इस क्रिया में दाबा वाली शाखा को इस तरह से रख दिया जाता है ताकि उसे कुछ दिनों तक रोशनी न मिल सके। प्रयोगों से यह पाया गया है कि यह क्रिया (धवलीकरण) दाबा की मूलन क्रिया को प्रोत्साहित करती है। उदाहरणत: प्ररोह दाबा या खाई दाबा में मातृ पौधे के कुछ भाग पर शुरू में मिट्टी चढ़ा दी जाती है ताकि शाखाएं पांडुरित हो जाएं। कभी-कभी शाखाओं पर कुछ दिनों के लिए 8-10 सेमी. चौड़ी पॉलिथीन की काली पट्टी या काला कपड़ा बांध दिया जाता है। इसी उद्देश्य से गूटी दाबा में भी मॉस बांधी जाती है।

मौसम व समय

वर्ष के दौरान जिस समय दाबा की जाती है, वह भी मूलन को प्रभावित करता है। मौसम मुख्यत: पौधे की वृद्धि में सहायक होता है जो मूलन में भी सहायता करता है। उदाहरणत: गूटी हेतु मानसून का मौसम (वर्षा ऋतु) सबसे उपयुक्त होता है क्योंकि इन दिनों वातावरण में आर्द्रता अधिक होती है जो दाबा के मूलन में सहायता करती है। इसी प्रकार दाबा की कई अन्य विधियों हेतु भिन्न-भिन्न समय मानकीकृत किए गए हैं। ऐसा माना जाता है कि जब पौधे की मौसम-विशेष में वृद्धि रुकने को हो तो उस समय शाखा में कार्बोहाइड्रेट अच्छी मात्रा में संग्रहीत हो जाते हैं और उस समय दाबा करने से मूलन अच्छा होता है।

5. मातृ पौधे का जीर्णोद्धार

पौधों की पुरानी व पूर्ण परिपक्व शाखाओं की अधिकाधिक कटाई से नई शाखाएं निकलती हैं जिनमें परिपक्व शाखाओं की अपेक्षा मूलन की अधिक क्षमता होती है। उदाहरणत: स्टूलिंग (प्ररोह दाबा) एवं खाई दाबा में मातृ पौधों को जमीन से 4-6 इंच की ऊंचाई पर काट दिया जाता है। इस प्रकार तने के ठूंठ से बाद में प्ररोह निकलते हैं जिन्हें दाबा हेतु प्रयोग किया जाता है। अत: दाबा हेतु परिपक्व प्ररोहों की अपेक्षा किशोर प्ररोहों का चुनाव करना चाहिए।

6. पादप वृद्धि नियामकों से उपचार

दाबा के घाव पर पादप वृद्धि नियामक का उपचार मूलन को आश्चर्जनक रूप से प्रोत्साहित करता है। दाबा में मूलन हेतु इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल, नेप्थलीन एसिटिक अम्ल आदि वृद्धि नियामक प्रयोग किए जाते हैं। इन नियामकों की सांद्रता, पौधे के प्रकार, दाबा

का प्रकार, शाखा की आयु, नमी व वातावरण की दशाओं पर निर्भर करती है। मूलन उत्प्रेरक नियामकों का प्रयोग लेनोलिन में लेई बनाकर करते हैं।

7. वातावरण की दशाएं

वातावरण की विभिन्न दशाओं में मुख्यत: तापमान व आर्द्रता ही दाबा में मूलन को प्रभावित करते हैं। प्राय: दाबा में उच्च आर्द्रता की दशा में मूलन शीघ्र व अधिक होता है। ठीक इसी प्रकार ठूंठ दाबा में प्ररोहों के चारों ओर मिट्टी के ढेर में हमेशा नमी रखने पर अच्छा जड़तंत्र विकसित होता है।

दाबा की विधियां

विभिन्न पौधों के प्रकार, उपलब्ध सुविधाओं एवं वातावरण की दशाओं के आधार पर विभिन्न औद्यानिक फसलों के प्रवर्धन हेतु दाबा की कई विधियों का मानकीकरण किया जाता है। इस अध्याय में दाबा की प्रमुख विधियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है:

1. शीर्ष दाबा

शीर्ष दाबा में मूलन, नई शाखाओं को झुकाकर उनके शीर्ष में कराया जाता है। यह दाबा की सबसे साधारण विधि है और ब्लैकबेरी, रसभरी, ड्यूकबेरी आदि फलवृक्षों के प्राकृतिक प्रवर्धन का मुख्य साधन है। इन फलवृक्षों का तना दो साल में अपनी आयु पूरी कर लेता है। पहले वर्ष वानस्पतिक वृद्धि होती है व दूसरे वर्ष फूल तथा फल आते हैं। फलों की तुड़ाई के बाद पौधों की गहन काट-छांट की जाती है जिससे अधिक संख्या में पार्श्व शाखाएं पैदा होती हैं। इन पार्श्व शाखाओं के 5 से 10 सेमी. शीर्ष मिट्टी में दबा दिए जाते हैं, जिनमें एक से डेढ़ महीने के अंतराल पर जड़ें आ जाती हैं। जड़युक्त शाखाओं को मार्च-अप्रैल में मातृ पौधे से अलग कर पौधशाला या खेतों में रोपित कर देते हैं। इस विधि का प्रयोग आरोही गुलाब, गूजबेरी, करंट आदि फलवृक्षों के प्रवर्धन में भी किया जा सकता है।

2. साधारण दाबा

इस विधि का प्रयोग पौधशाला प्रवर्धक कई औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन हेतु करते हैं, क्योंकि यह भी प्रवर्धन की बहुत आसान विधि है। यह विधि भी शीर्ष दाबा जैसी ही है, परंतु अंतर सिर्फ इतना है कि इसमें प्ररोह या शाखा को मिट्टी में दबाने से पहले उसे मूलन हेतु कोई न कोई उपचार दिया जाता है। इस विधि में पौधे की लचीली शाखाओं

को मार्च-अप्रैल में झुकाकर शीर्ष से पहले के हिस्से को मिट्टी में दबा दिया जाता है (रेखाचित्र-15)। शाखा को किसी तार या लकड़ी की खूंटी के सहारे स्थिर रखा जाता है। कभी-कभी मिट्टी में दबे हिस्से में मूलन को प्रोत्साहन करने हेतु किसी रसायन से उपचारित भी किया जाता है। मार्च-अप्रैल में दबाई गई शाखाओं को जून-जुलाई में मातृ पौधे से अलग करके खेतों या क्यारियों में रोपित किया जाता है। अमरूद, अलूचा, हेजलनट, नींबू, लेमन एवं मेग्नोलिया, रोडेन्ड्रॉन आदि पौधों का प्रवर्धन साधारण दाबा द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

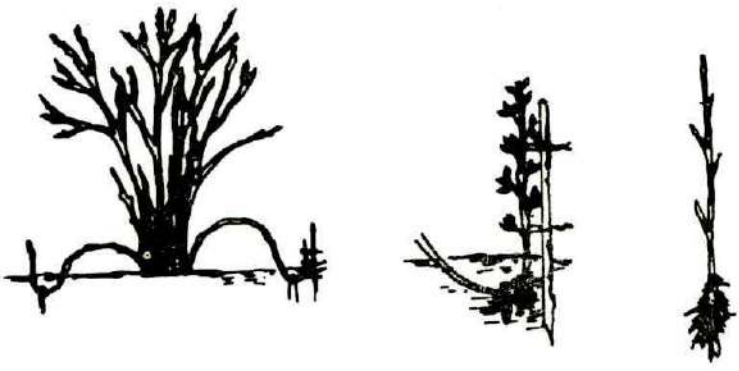

रेखाचित्र 15: साधारण दाबा

3. सर्पिल दाबा

पादप प्रवर्धन की यह भी एक साधारण विधि है, परंतु यह केवल उन्हीं पौधों के प्रवर्धन हेतु उपयुक्त है जो सीधे, लंबे व लचीले प्ररोह पैदा करते हैं। सर्पिल दाबा, साधारण दाबा का सुधरा हुआ रूप है जिसमें एक वर्ष पुरानी लचीली पार्श्व शाखा को गांठ के पास कई स्थानों पर दबाकर पौधे प्राप्त किए जाते हैं। ध्यान रखने वाली बात यह है कि दो दाबा के बीच का तना खुला रखा जाता है, जिसमें नए प्रांकुर हेतु कम से कम एक कली अवश्य होनी चाहिए। जो भाग मिट्टी में कई स्थानों पर दबाया जाता है उसमें आवश्यकतानुसार काट बनाकर उपचार भी किया जाता है। मूलन के बाद पौधों को अलग-अलग करके पौधशाला में रोपित कर दिया जाता है। इस तरह एक शाखा से कई पौधे तैयार हो जाते हैं। फलवृक्षों में इस विधि द्वारा केवल मस्केडाइन अंगूर का ही व्यावसायिक प्रवर्धन किया जाता है। इसके अतिरिक्त हनी सकल, विस्टेरिया, चमेली आदि शोभाकारी पौधों का प्रवर्धन भी इस विधि द्वारा किया जा सकता है।

5. गूटी दाबा

गूटी या हवाई दाबा एक विशेष प्रकार की प्रवर्धन विधि है जिसे सबसे पहले चीन में विकसित किया गया था और अब इसे व्यावसायिक स्तर पर कई औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन में प्रयोग किया जाता है। दाबा की विभिन्न विधियों में यही विधि ऐसी है जिसमें मूलन पौधों की हवाई शाखाओं में कराया जाता है। इस विधि में एक वर्ष पुरानी शाखाओं के आधार पर 2.5 सेमी. छाल निकाल कर चीरे के ऊपरी हिस्से को इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित करने के बाद गीली मॉस से बांध दिया जाता है (रेखाचित्र-16)। ऐसी शाखाओं में 25-30 दिनों में जड़ें आने लगती हैं। बाद में उन्हें पौधशाला या खेतों में लगाया जा सकता है। लीची, अमरूद, नींबू, कटहल, अंजीर, काजू आदि फलवृक्षों एवं क्रोटन, आरोही गुलाब, विस्टेरियस, आदि शोभाकारी पौधों का प्रवर्धन गूटी द्वारा संभव है। गूटी के लिए साधारणत: फरवरी-मार्च एवं जुलाई-अगस्त के माह सर्वश्रेष्ठ पाए गए हैं।

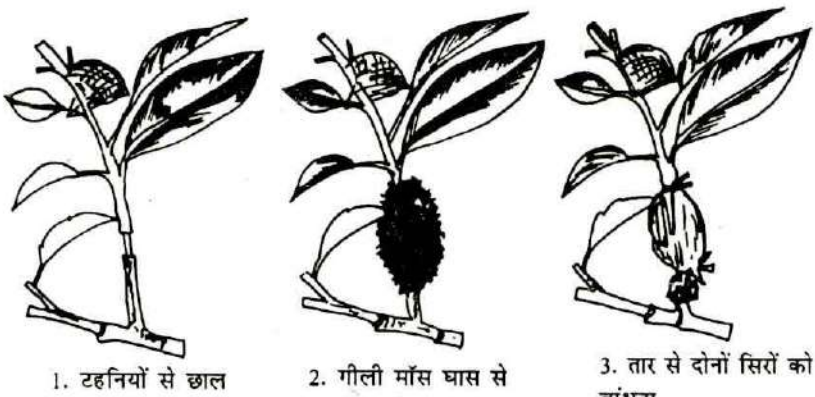

1. टहनियों से छाल निकालना

2. गीली मॉस घास से लपेटना

3. तार से दोनों सिरों को बांधना

रेखाचित्र 16 : गूटी दाबा

6. ठूंठ प्ररोह दाबा (स्टूलिंग)

ठूंठ प्ररोह दाबा को 'स्टूलिंग' के नाम से जाना जाता है। दाबा की यह विधि कई मायनों में खाई दाबा से मिलती-जुलती है। परंतु इस विधि में मातृ पौधे के प्ररोहों या वांछित शाखाओं को झुकाया नहीं जाता बल्कि मातृ पौधे को भूमि की सतह से थोड़ा छोड़ते हुए (लगभग 10 से 15 सेमी.) दिसंबर-जनवरी में काट दिया जाता है (रेखाचित्र-17)।

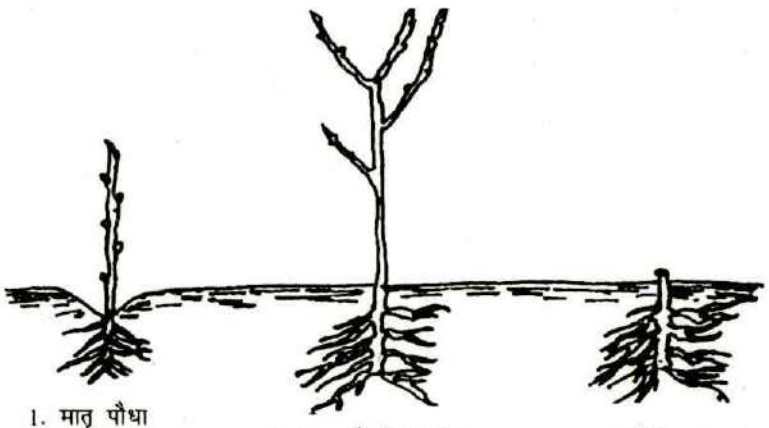

1. मातृ पौधा
2. मातृ पौधे में वृद्धि
3. मातृ पौधे का कटा ठूंठ

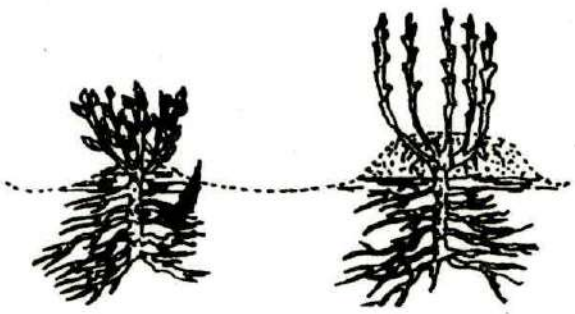

4. मातृ पौधे में फुटाव
5. नए फुटावों से छाल निकालने के बाद मिट्टी चढ़ाना

6. जड़युक्त प्ररोहों को अलग करना
7. प्ररोहों को अलग करने के बाद मातृ पौधे का ठूंठ

रेखाचित्र 17 : ठूंठ प्ररोह दाबा (स्टूलिंग)

इस कटे हुए ठूंठ से डेढ़ से दो महीनों में नई प्ररोह निकलते हैं, जिनके आधार पर चाकू द्वारा 2 से 3 सेमी. छाल निकालते हैं। इस काट के ऊपरी हिस्से को इन्डोल ब्युटीरिक अम्ल की लेई से उपचारित किया जाता है। इन्डोल ब्युटीरिक अम्ल की सांद्रता, विभिन्न प्रकार के पौधों हेतु भिन्न-भिन्न होती है, परंतु साधारणत: यह सांद्रता 3,000-5,000 पी.पी.एम. होती है। इसके बाद इन शाखाओं के ऊपर नमीयुक्त मिट्टी चढ़ाई जाती है। इस मिट्टी को अधिकतर गीला ही रखा जाना चाहिए जो मूलन को प्रोत्साहित करता है। इन शाखाओं में डेढ-दो महीनों में अच्छा जड़तंत्र विकसित हो जाता है। बाद में इन्हें मातृ पौधे से अलग करके पौधशाला या खेत में लगा सकते हैं। स्टूलिंग द्वारा सेब, अमरूद, पीकननट, लीची, क्विंस, गूजबेरी, अलूचा, चेरी, कटहल, हेजलनट, आम, शरीफा आदि फलवृक्षों का प्रवर्धन किया जाता है।

4. खाई दाबा

कुल फलवृक्षों के मूलवृतों के प्रवर्धन हेतु खाई दाबा का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में पौधे या पौधे की शाखा को तिरछे 30 से 40° के कोण पर किसी खाई के समीप रोपित करते हैं। बाद में इसे लकड़ी की खूंटी या 'यू' आकार के मुड़े तार के सहारे भूमि की सतह पर लिटा दिया जाता है और ऊपर मिट्टी की पतली तह बिछा दी जाती है। कुछ दिनों बाद मिट्टी के अंदर से नई शाखाएं निकलती हैं जिनके आधार पर जड़ें विकसित होती हैं। इन शाखाओं को बाद में अलग करके मनचाही जगह पर रोपित कर दिया जाता है। जो फलवृक्ष ठूंठ दाबा द्वारा प्रवर्धित नहीं किए जा सकते हैं, यह विधि उन फलवृक्षों के प्रवर्धन हेतु अति उत्तम पाई गई है। इस विधि द्वारा सेब के ओजयुक्त मूलवृतों, जैसे एम. 16 व एम. 25 और अखरोट का प्रवर्धन किया जाता है।

❐

अध्याय-25

कलम-बंधन व कलिकायन से प्रवर्धन के सिद्धांत

कलम बांधना एक कला है जिसमें पौधे के किसी एक भाग को दूसरे पौधे पर इस प्रकार प्रत्यारोपित किया जाता है कि दोनों एक साथ जुड़कर एक पौधे की भांति वृद्धि करें। प्रवर्धित पौधे का वह भाग, जिसमें फल एवं फूल आते हैं, सांकुर कहते हैं, तथा नीचे के भाग को मूलवृंत कहते हैं। प्रवर्धित पौधे, जिनमें मूलवृंत तथा सांकुर दोनों का योगदान हो उसे मूल-सांकुर कहते हैं। कभी-कभी कुछ विशेष कारणों से सांकुर एवं मूलवृंत के बीच एक अन्य मूलवृंत का प्रयोग किया जाता है। इसे मध्यस्थ मूलवृंत कहते हैं। सिद्धांत रूप से कलम बंधन एवं कलिकायन एक ही प्रक्रिया है। दोनों में केवल इतना अंतर है कि कलम बंधन हेतु प्रयुक्त सांकुर आकार में बड़ी होती है, जिसमें एक से अधिक कलिकाएं होती हैं, जबकि कलिकायन में केवल एक कलिका मात्र शाखा की थोड़ी लकड़ी के साथ प्रयोग की जाती है।

कलम-बंधन एवं कलिकायन द्वारा प्रवर्धन का महत्व

1. इन विधियों द्वारा मूलवृंत के विशेष गुणों का लाभ उठाया जा सकता है।
2. कभी-कभी मूलवृंत व सांकुर के बीच असंगतता होती है। उसे दूर करने के लिए इन दोनों विधियों द्वारा मध्यस्थ मूलवृंत का उपयोग संभव है।
3. प्रवर्धित पौधों की किशोरावस्था कम हो जाती है।
4. पुराने एवं घटिया किस्मों के बागों का जीर्णोद्धार इन विधियों से संभव होता है।
5. कुछ फलवृक्ष, जैसे-आम, अखरोट, पीकननट आदि जो अन्य विधि द्वारा प्रवर्धित नहीं किए जा सकते है, उन्हें आसानी से कलम-बंधन या कलिकायन की किसी न किसी विधि द्वारा प्रवर्धित कर सकते हैं।
6. कुछ शीतोष्ण वर्गीय फलों में स्व-अनिषेच्यता की समस्या होती है। यदि ऐसे फलों के बाग में शुरू में परागद किस्म न भी लगी हो तो भी मनचाही परागद किस्म का फलदायक पौधों की कुछ शाखाओं पर प्रत्यरोपण संभव होता है।

7. एक ही पौधे पर कई किस्में प्रत्यारोपित की जा सकती हैं और यह कुछ पुष्पीय पौधों, जैसे गुलाब में अति सुंदर भी लगता है।
8. क्षतिग्रस्त पौधों को हरे-भरे बाग में परिवर्तन करना संभव है।
9. इन विधियों द्वारा विषाणुओं के परीक्षण हेतु सूचक पौधों पर ग्रसित पौधों का सांकुर लगाकर अध्ययन संभव है।
10. इन विधियों का प्रयोग नए संकरों को फलदायी पौधों पर प्रत्यारोपित कर उनके विशेष गुणों का अध्ययन किया जा सकता है।

सीमाएं

1. ये दोनों तकनीकी प्रक्रियाएं हैं, अत: हर कोई व्यक्ति इनका प्रयोग नहीं कर सकता है।
2. ये प्रवर्धन की कुछ खर्चीली विधियां हैं।
3. इन विधियों द्वारा पौधे तैयार करने हेतु अधिक समय लगता है।

कलमी मिलाप

किसी भी कलमी पौधे की सफलता हेतु सुदृढ़ कलमी संयोग या मिलाप ही मुख्य आधार होता है। सुदृढ़ कलमी मिलाप हेतु निम्नलिखित क्रियाओं की हिस्सेदारी होती है:

क. सांकुर एवं मूलवृंत की एधा कोशिकाओं में आपसी संपर्क स्थापित होना

मूलवृंत एवं सांकुर की एधा कोशिकाओं के बीच संबंध स्थापित होना कलमी मिलाप की सफलता की पहली पीढ़ी है। कटा सांकुर जिनमें विभज्योतक शक्ति होती है, शीघ्र कटे मूलवृंत के साथ सटाकर इस प्रकार बांधा जाता है कि दोनों की एधा कोशिकाएं एक दूसरे से पूर्णत: मिल जाएं। कलम-बंधन विशेष मौसम, मुख्यत: वर्षा ऋतु (जून-अगस्त) या बसंत ऋतु (फरवरी-मार्च) में, जिस मसय तेजी से कोशिका विभाजन हो रही हों, संपादित करना चाहिए। ऐसे मौसम में ही कलम-बंधन में अधिकाधिक सफलता मिलती है क्योंकि ऐसे मौसम में सांकुर व मूलवृंत की कटी कोशिकाओं में तेजी से वृद्धि होती है। नवनिर्मित कोशिकाओं की भित्तियाँ पतली होती हैं तथा थोड़ी-सी भी नमी की कमी होने पर इसके सूखने की संभावना रहती है। अत: जहां पर कोशिका विभाजन हो रहा है वहां और उसके आसपास पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखना अनिवार्य होता है। यही कारण है कि दोनों ऊतकों को मिलाने के बाद मिलाप का यथाशीघ्र

कलम-बंधन मिट्टी अथवा पॉलिथीन से अच्छी तरह बांध कर सील कर देना चाहिए ताकि नई कोशिकाएं सूखने न पाएं तथा उनके हिलने की संभावना न हो। सांकुर टहनी का प्रत्यारोपण करते समय विशेष ध्यान देना चाहिए। सांकुर एवं मूलवृंत समान मोटाई के हों। यदि ऐसा संभव न हो तो कम से कम एक तरफ दोनों सिरे अवश्य मिले हों, अन्यथा मिलाप की संभावना कम होगी। तापमान व आर्द्रता भी कलमी मिलाप की क्रिया को प्रभावित करते हैं। साधारणत: 15-30° सेल्सियस तापमान पर कोशिकाओं की वृद्धि अच्छी होती है और मिलाप भी। हरित गृह में तापमान एवं आर्द्रता पर नियंत्रण होता है और यही कारण है कि वहां सफलता भी अधिक मिलती है।

ख. कैलस निर्माण एवं ऊतकों का मिलाप

कलम-बंधन हेतु सांकुर एवं मूलवृंत को काटा जाता है, जिससे किनारे की कुछ कोशिकाएं चाकू की काट से मर जाती हैं। इन्हीं मृत कोशिकाओं के नीचे मृदूतक कोशिकाओं का तेजी से समसूत्री विभाजन होता है। इस प्रथम चरण में संभवत: एधा, सांकुर और मूलवृंत, जिनमें स्पंजी कोशिकाएं होती हैं, आपस में मिलकर कैलस सेतु का निर्माण करती हैं। इसी कैलस सेतु से मूलवृंत एवं सांकुर को एक साथ सधे रहने में सहायता मिलती है और नमी एवं पोषण तत्वों आदि का आदान-प्रदान भी प्रारंभ हो जाता है।

ग. नई एधा कोशिकाओं का निर्माण

नवनिर्मित मृदूतक कोशिकाएं, जिनमें सांकुर एवं मूलवृंत की एधा कोशिकाएं आपस में मिली होती हैं, तेजी से विभाजित होकर, नई एधा कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। कैलस ऊतकों में चारों तरफ इनका निर्माण होता रहता है जिससे दोनों ऊतकों के बीच एधा कोशिकाओं द्वारा मूलवृंत एवं सांकुर में जीवद्रव्यी संबंध स्थापित हो जाता है।

घ. कैलस सेतु से नए संवहनी ऊतकों का निर्माण

कैलस सेतु की नवनिर्मित एधा कोशिकाओं में तेजी से विभाजन एवं विभेदन आरंभ हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मूलवृंत एवं सांकुर के संवहन ऊतक के साथ ही इनमें जाइलम एवं फ्लोएम कोशिकाओं का निर्माण हो जाता है। विभेदन की इस प्रक्रिया में एधा कोशिकाएं, जाइलम-रे तथा जाइलम के पास ऊतकों का निर्माण करती हैं। नये जाइलम एवं फ्लोएम में ऊतकों के विभेदन होने से मूलवृंत एवं सांकुर का संवहन संबंध स्थापित हो जाता है। यह प्रक्रिया सांकुर में फुटाव से पहले पूर्ण हो जानी चाहिए वरना नई पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के लिए नमी न उपलब्ध होने के कारण इनके सूखने की संभावना रहती है। ❐

कलमी मिलाप को प्रभावित करने वाले कारक

कलमी मिलाप बनने की पूर्ण क्रिया मुख्यत: काट, कटाव या जख्मों के ठीक होने की क्रिया मानी जाती है। यह प्रक्रिया कई कारकों द्वारा प्रभावित की जाती है, जो इस मिलाप को सफल या असफल बनाते हैं। ऐसे प्रमुख कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

1. मूलवृंत एवं सांकुर के बीच संगतता

सफल कलमी मिलाप हेतु मूलवृंत व सांकुर के बीच संगतता सबसे महत्वपूर्ण कारक है। अक्सर यह देखा गया है कि संगत मूलवृंत व सांकुर सर्वदा सफल मिलाप बनाते हैं, जबकि असंगत मूलवृंत व सांकुर कदापि सफल मिलाप नहीं बना पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि मूलवृंत एवं सांकुर के बीच कुदरती तौर पर बना संबंध कलमी मिलाप को पूर्णत: प्रभावित करता है। साधारणत: कुदरती तौर पर अलग-अलग पौधों में कलमी-बंधन नहीं हो पाता है।

2. पादप प्रकार

कलम-बंधन की सफलता पादप के प्रकार पर भी निर्भर करती है। कुछ पौधों में कलमी मिलाप बड़ी आसानी से हो जाता है और कुछ में यह बहुत मुश्किल में बनता है। उदाहरणत: हिकोरी एवं 'ओक' में शुरू में तो कलमी मिलाप ठीक से नहीं बन पाता, परंतु एक बार स्थापित होने के बाद इनके कलमी पौधे काफी वर्षों तक जीवित रहते हैं। इसी प्रकार सेब एवं नाशपाती का शीर्षारोपण किसी भी आसान विधि से किया जा सकता है परंतु शीतोष्ण जलवायु के गुठलीदार फलों, जैसे-आड़ू, अलूचा, खुबानी आदि में यह बहुत कठिन होता है। हैरानी की बात यह है कि आड़ू के पौधों पर अलूचा या बादाम की किसी संगत प्रजाति का शिखारोपण संभव होता है परंतु आड़ू का नही। कुछ फलवृक्षों (जैसे आम) को कलम-बंधन या कलिकायन की साधारण विधियों से प्रवर्धित करना काफी कठिन होता है क्योंकि इनके मूलवृंत एवं सांकुर को तैयार करने पर विशेष गोंदीय पदार्थ का स्राव होता है। इन सभी उदाहरणों से पता चलता है कि पादप के प्रकार का कलगी मिलाप की सफलता पर काफी प्रभाव पड़ता है।

3. वातावरण की दशाएं

सफल कलमी मिलाप हेतु वातावरण की दशाएं, जैसे नमी, तापमान, वायु आदि अनुकूल होने चाहिए। हालांकि वातावरण की अनुकूलतम दशाएं, पादप विशेष हेतु भिन्न-भिन्न होती हैं, परंतु साधारणत: 80 से 90 प्रतिशत आर्द्रता की आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन की मात्रा कोशिका विभाजन एवं कटावों को ठीक करने में सहायता करती है।

4. मूलवृंत एवं सांकुर की बढ़वार

कलिकायन या कलम-बंधन के समय मूलवृंत एवं सांकुर की वृद्धि की अवस्था भी कलमी मिलाप की सफलता को प्रभावित करती है। यदि पौधे सक्रिय वृद्धि कर रहे हों तो कलमी मिलाप शीघ्र बन जाता है, अन्यथा यह कुछ समय ले लेता है। उदाहरणत: कलिकायन में सफलता तभी मिलती है, यदि पौधे सक्रिय वृद्धि की अवस्था में हों, क्योंकि ऐसा करने से मूलवृंत की छाल आसानी से निकल जाती है। ऐसी अवस्था में कलिकायन या कलम-बंधन करने पर कैल्बियम (एधा) कोशिकाएं शीघ्र वृद्धि करती हैं और कलमी मिलाप शीघ्र ही बन जाता है। इसके विपरीत कुछ पौधों (जैसे मेपल, अखरोट, अंगूर आदि) में सक्रिय वृद्धि के दौरान अत्यधिक गोंदीय स्राव होता है, जो सफल मिलाप की क्रिया को अनावश्यक रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि सक्रिय वृद्धि के दौरान आम के विनियर कलम-बंधन हेतु सांकुर तैयार करना आसान होता है, अंत: इस कार्य हेतु फरवरी-मार्च एवं जुलाई-अगस्त के माह सर्वश्रेष्ठ पाए गए हैं।

5. कलम-बंधन की विधि

कलम-बंधन की तकनीक भी कलमी मिलाप की सफलता को प्रभावित करती है। यही कारण है कि विभिन्न औद्यानिक फसलों के प्रर्वधन हेतु भिन्न-भिन्न तकनीकें मानकीकृत की गई हैं। एक फसल-विशेष के लिए सफलतम प्रवर्धन विधि दूसरी फसल-विशेष के लिए पूर्णत: असफल भी हो सकती है। उदाहरणत: भारत के कोंकण क्षेत्र में आम के प्रवर्धन हेतु स्टोन (प्रांकुर) कलम-बंधन सफलतम विधि है, परंतु उत्तरी भारत में विनियर कलम बंधन सबसे सफल विधि है। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में आम के प्रवधन हेतु भेंट कलम बंधन एवं 'सॉफ्टवुड' (मृदु काष्ठ) कलम-बंधन की तकनीकें सफल पाई गई हैं तथा व्यावसायिक तौर पर अपनाई जा रही हैं।

6. कीट एवं रोगों का प्रकोप

यदि सांकुर या मूलवृंत, किसी कीट (जैसे जड़ बेधक), विषाणु एवं अन्य रोग द्वारा ग्रसित हों तो ये कारक भी असफल कलमी मिलाप का एक कारण बन सकते हैं। अत: जहां तक संभव हो, हमें स्वस्थ मूलवृंत या सांकुर का ही चयन करना चाहिए। उदाहरणत: सेब के बीजू मूलवृंत में शिखर गॉल, चूर्णिल आसिता आदि रोग एवं रूईया

कीट के आक्रमण से मूलवृंत की वृद्धि प्रभावित होती है जो सांकुर की वृद्धि को भी प्रभावित करते हैं। कभी-कभी ये रोग एवं कीट प्रवर्धित पौधों को भी संक्रमित करते हैं जिससे कई पौधे पौधशाला में ही मर जाते हैं। इसी प्रकार आम में स्टोन (प्रांकुर) कलम-बंधन में भी कवक जनित रोगों के आक्रमण से प्रवर्धन की सफलता प्रभावित होती है।

7. पादप वृद्धि नियामक

पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग कलमी मिलाप की सफलता के लिए तो नहीं किया जाता है परंतु ऑक्सिन एवं साइटोकाइनिन आदि वृद्धि नियामकों का उपयोग ऊतक संवर्धन द्वारा पौधों के प्रवर्धन में व्यापक रूप में किया जाता है। ये वृद्धि नियामक 'कैलसीकरण' में सहायता करते हैं।

8. ध्रुवता

कलम-बंधन या कलिकायन में सांकुर की ध्रुवता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कलम बंधन या कलिकायन में सांकुर का समीपस्थ सिरा, मूलवृंत के दूरस्थ (ऊपरी) सिरे पर प्रत्यारोपित किया जाना चाहिए। हालांकि जल कलम-बंधन में सांकुर का समीपस्थ शिरा, मूलवृंत (जड़) के भी समीपस्थ सिरे पर प्रत्यारोपित किया जाता है। यदि ध्रुवता का यह क्रम उल्टा कर दिया जाए तो हो सकता है कि कलमी मिलाप कुछ दिनों तक जीवित रहे परंतु यह बाद में बिल्कुल ही वृद्धि नहीं करेगा।

कलम-बंधन और कलिकायन की सीमाएं

साधारणत: कलम-बंधन एवं कलिकायन की विभिन्न विधियों की सफलता तब अधिक होती है जब मूलवृंत व सांकुर आपस में कुदरती तौर पर संबंधित हों। इसके अतिरिक्त कलमी मिलाप के सफल होने का मौका तब और भी मजबूत हो जाता है यदि मूलवृंत एवं सांकुर दोनों की केम्बियम (एधा) क्षेत्र के नजदीक मृदूतक कोशिकाओं का निर्माण करने की सामर्थ्य अच्छी हो। अत: कलम-बंधन व कलिकायन द्वारा प्रवर्धन की विधियां द्विवीजपत्री आवृतबीजी एवं अनावृतबीजी पौधों में ही सफल रहती है क्योंकि इन पौधों में संवहन एधा ऊतक जाइलम एवं फ्लोरम ऊतकों के बीच विद्यमान होते हैं। क्योंकि एकबीजपत्री अनावृतबीजी पौधों में एधा कोशिकाएं नहीं होतीं, अत: इनका प्रवर्धन कलिकायन एवं कलम-बंधन की विधियों से संभव नहीं होता। हालांकि अब कुछ एक बीजपत्री पौधों जैसे कुछ घासों एवं 'वेनिला' में भी इन विधियों द्वारा प्रवर्धन से सफलता मिलती है। अत: इन विधियों द्वारा व्यावसायिक स्तर पर प्रवर्धन शुरू करने से पहले यह दिमाग में भलीभांति बिठा लेना चाहिए कि क्या मूलवृंत एवं सांकुर का सफल कलमी मिलाप हो भी पाएगा या नहीं। पादप प्रवर्धन के संबंध के आधार पर निम्नलिखित सीमाओं तक मूलवृंत एवं सांकुर का मिलाप संभावित होता है :

1. क्लोन के पौधों में कलम-बंधन

शोध कार्यों से ज्ञात होता है कि क्लोन-विशेष से लिया गया सांकुर उसी क्लोन के किसी पौधे पर आसानी से प्रत्योपित किया जा सकता है और यह सफल भी होता है। उदाहरणत: दशहरी आम के पौधे से लिया सांकुर संसार के किसी हिस्से में लगे दशहरी के पौधे पर प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

2. जाति-विशेष के विभिन्न क्लोम में कलम-बंधन

ऐसा माना जाता है कि जाति-विशेष से विकसित विभिन्न क्लोन के पौधों को भी आपस में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। एक ही जाति के विभिन्न क्लोन के बीच भी कलमी मिलाप सुदृढ़ एवं सफल होता है। उदाहरणत: आम की ऐसी कई किस्में विकसित की गई हैं जिन्हें एक दूसरे पर आसानी से प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

3. वंश-विशेष की विभिन्न जातियों में कलम-बंधन

प्रयोगों से पता चलता है कि वंश-विशेष की कई जातियों में तो कलमी मिलाप सफल हो जाता है, परंतु कइयों में असफल रहता है। उदाहरणत: सिट्रस वंश की विभिन्न जातियों में कलमी मिलाप बहुत ही सफल रहता है। अत: नींबूवर्गीय फलों के पौधों के प्रवर्धन हेतु ये विधियां काफी सफल भी हैं। इसी तरह, बादाम, खुबानी, जापानी अलूचा आदि को आड़ू के मूलवृंत पर आसानी से प्रत्यारोपित कर सकते हैं, जबकि आड़ू की जाति अलग है। परंतु बादाम व खुबानी एक ही वंश में होने के बावजूद भी आपस में सफल कलमी बंधन नहीं बना पाते हैं। इसी श्रेणी में एक बहुत ही दिलचस्प उदाहरण जापानी अलूचे की 'ब्यूटी' किस्म का है जिसे 'बादाम' के मूलवृंत पर आसानी से प्रत्यारोपित किया जा सकता है।, परंतु 'सांता रोजा' जो जापानी अलूचे की ही एक किस्म है, उसे नहीं। इसके अतिरिक्त जापानी अलूचे की सभी किस्मों को यूरोपीय अलूचे पर प्रत्यारोपित कर सकते हैं परंतु यूरोपीय अलूचे की किस्में जापानी अलूचे के मूलवृंत पर सफल कलमी मिलाप नहीं बना पातीं।

4. कुल-विशेष के विभिन्न वंशों में कलम-बंधन

एक ही कुल के विभिन्न वंशों के पौधों का आपस में प्रवर्धन लगभग मुश्किल होता है। परंतु साहित्य में कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि किन्हीं-किन्ही पौधों में ऐसा भी संभव हुआ है। उदाहरणत: नींबूवर्गीय फलों के पौधों के प्रवर्धन हेतु ट्राइफोलिएट ऑरेंज मूलवृंत का प्रयोग व्यावसायिक स्तर पर विश्वभर में होता है। इसी प्रकार वीही नामक पर्णपाती पौधे को नाशपाती एवं लोकाट हेतु बौने मूलवृंत के तौर पर प्रयोग करते हैं। ❐

अध्याय-27

फलोत्पादन में मूलवृंत का महत्व

आधुनिक युग की बागवानी में अक्सर यौगिक पौधे लगाए जाते हैं, जिनमें ऊपर का हिस्सा मनचाही किस्म (सांकुर) व निचला हिस्सा मूलवृंत का होता है। मूलवृंत के सांकुर के ऊपर प्रभावों को देखते हुए फलों के व्यावसायिक फलोत्पादन में दिन प्रतिदिन उसका उपयोग बढ़ता ही जा रहा है। आए दिन विभिन्न फलों में उचित मूलवृंत की खोज के लिए अनुसंधान हो रहे हैं। विभिन्न प्रयोगों से वैज्ञानिकों ने सिफारिश की है कि हमें सदैव एक आदर्श मूलवृंत का ही प्रयोग करना चाहिए।

आदर्श मूलवृंत के गुण

एक आदर्श मूलवृंत में निम्नलिखित गुण होने चाहिए:

1. इसकी जड़ें ऐसी हों जो जमीन में अच्छी पकड़ रख सकें।
2. मूलवृंत का सांकुर के साथ अच्छा तालमेल होना चाहिए।
3. वह विभिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु में अच्छी तरह पनपता हो।
4. वह हानिकारक कीटों व रोगों के प्रति सांकुर को सहयता प्रदान करने वाला हो।
5. मूलवृंत प्रतिकूल दशाओं, जैसे ठंड, पाला, खारापन आदि के प्रति सहनशील हो।
6. इसका प्रवर्धन आसान विधियों से संभव हो।
7. यह स्थान-विशेष में सुगमता से मिलना चाहिए।
8. यह बौना हो एवं सांकुर में बौनापन प्रदान करने वाला हो।
9. मूलवृंत सांकुर किस्म में फूलने व फलने की क्रियाओं को अधिकाधिक प्रेरित करने वाला हो।
10. मूलवृंत सांकुर किस्म के फलों की गुणवत्ता को बढ़ाने वाला हो।

अनुसंधान कार्यों के बाद वैज्ञानिकों ने कई फलवृक्षों में कुछ मूलवृंतों की सिफारिश की है जिसका ब्योरा सारणी-5 में दिया गया है।

सारणी 5 : प्रमुख फलवृक्षों के लिए मानकीकृत मूलवृंत

फलवृक्ष	मूलवृंत	मूलवृंत के मुख्य गुण
बादाम	जी.एफ.-557, जी.एफ.-667 कड़वा बादाम आदि	सूत्रकृमि रोधी।
सेब	एम.-27, एम-9	बौना मूलवृंत।
	एम.एम.-104. एम.एम.-106	अर्ध बौने, रूइया कीट रोधी।
	एम.एम.-111, एम.एम.-104	सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए।
	एम.-16. एम.-25	ओजयुक्त मूलवृंत।
नाशपाती	क्विंस-सी	बौना मूलवृंत।
खुबानी	जंगली खुबानी	ओजयुक्त।
चेरी	कोर्ट	बौना मूलवृंत।
	पज्जा, महालेव चेरी	ओजयुक्त।
अलूचा	पिक्सी	बौना मूलवृंत।
	ब्रोमटन	ठंड के प्रति सहनशील।
	मीरोवलान	ठंड एवं सूत्रकृमि रोधी।
नींबूवर्गीय फल	फ्लाइंग ड्रेगन	अति बौना।
	ट्रायर सिटरेंज	बौना।
	रंगपुर लाइम	अनचाही मिट्टी व जलवायु के लिए उपयुक्त।
	करना खट्टा	भारी मिट्टी में सफल।
	जंभीरी	मरुस्थलीय जलवायु में उपयोगी।
	ट्राईफोलिएट संतरा	ठंड सहनशील।
	क्लियोपेट्रा	लवण सहनशील।
अंगूर	साल्ट क्रीक, डॉगरिंज	लवण एवं सूत्रकृमि रोधी।
अमरूद	पूसा सृजन	बौना मूलवृंत।
आम	कुरक्कन	लवण रोधी।
	रूमाणी, क्रीपर, विलाई कोंलुवन	बौना मूलवृंत।
चीकू	खिरनी	सभी गुणों से भरपूर।

पौधशाला में मूलवृंत का प्रवर्धन बीज या कायिक विधियों द्वारा किया जाता है। बीजू क्यारियां तैयार करके पौध उगाई जाती है। एक वर्ष पुराने बीजू पौधे को मनचाही किस्म से कलम-बंधन या कलिकायन द्वारा प्रवर्धित करते हैं। कायिक विधि में मूलवृंत के प्रवर्धन हेतु 'स्टूलिंग' का प्रयोग मुख्यत: सेब के मूलवृंतों के प्रवर्धन हेतु किया जाता है। इस तकनीक का मानकीकरण इंग्लैंड में हुआ और अब इसका व्यावसायिक स्तर पर विश्व के अनेक देशों में प्रयोग हो रहा है। इस विधि का विस्तृत वर्णन 'दाबा द्वारा प्रवर्धन' नामक अध्याय में किया गया है।

❐

मूलवृंत एवं सांकुर संबंध

फलोत्पादन में मूलवृंत का बहुत महत्व है, क्योंकि मूलवृंत के सांकुर या सांकुर के मूलवृंत के लाभकारी प्रभावों को देखते हुए बागवान यौगिक पौधे लगाते हैं। कलम बंधन और कलिकायन विधियों में सांकुर व मूलवृंत इस प्रकार प्रयुक्त किए जाते हैं कि ये आपस में मिलकर एक सफल पौधे की भांति वृद्धि करें। पौधों की वृद्धि, फलत, फलों के गुण, उपज, कीट एवं रोगों के प्रति सहयता आदि मूलवृंत और सांकुर द्वारा प्रभावित होते हैं जिसे मूलवृंत-सांकुर संबंध के नाम से संबोधित किया जाता है। इस संबंध के विभिन्न प्रभावों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

(अ.) मूलवृंत का सांकुर पर प्रभाव

मूलवृंत एवं सांकुर संबंध में मूलवृंत के सांकुर पर कई विशेष प्रभाव होते हैं जिनका वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया है। मूलवृंत, सांकुर को कई तरह से प्रभावित करता है। ये प्रभाव मूलवृंत व सांकुर के प्रकार पर निर्भर होते हैं। इन विशेष प्रभावों का विवरण निम्नलिखित है :

1. **सांकुर के ओज और वृद्धि पर प्रभाव:** मूलवृंत, सांकुर के ओज और वृद्धि को सबसे अधिक प्रभावित करता है, प्राचीनकाल से ही फलवृक्षों की वृद्धि के नियंत्रण के लिए अलग-अलग मूलवृंतों का प्रयोग किया जा रहा है। उदाहरणत: रोम के बागवानों को सेब के बौने मूलवृंत (पैराडाइज) की जानकारी काफी पहले से ही थी। परंतु सांकुर की वृद्धि पर मूलवृंत का सबसे अच्छा उदाहरण सेब के मूलवृंत हैं क्योंकि सेब के विभिन्न मानकीकृत मूलवृंतों को उनके प्रभाव के अनुसार निम्न वर्गो में वर्गीकृत किया गया है:

1) अति बौने मूलवृंत	:	एम.-27
2) बौने मूलवृंत	:	एम.-9
3) अर्ध बौने मूलवृंत	:	एम.-7, एम-26, एम.एम.-106
4) अर्ध ओजयुक्त मूलवृंत	:	एम.-2, एम.एम.-104, एम.एम-111
5) ओजयुक्त मूलवृंत	:	एम.-13, एम.एम.-109
6) अति ओजयुक्त मूलवृंत	:	एम.-16, एम-25

इसी प्रकार अन्य फलवृक्षों के लिए भी विभिन्न मूलवृंतों की सिफारिश की गई है। जैसे नींबूवर्गीय फलवृक्षों हेतु 'फ्लाइंग ड्रेगन' अत्यंत बौना मूलवृंत है। किन्नो संतरे के लिए 'ट्रायर सिटरेंज' बौना व सोहसरकार ओजयुक्त मूलवृंत है। महालेव मूलवृंत पर प्रत्यारोपित चेरी की किस्में बौनी और मैजार्ड पर ओजयुक्त होती हैं। अत: अब तक किए गए प्रयोगों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सांकुर का वानस्पतिक ओज व वृद्धि प्रयुक्त मूलवृंत और सांकुर के बीच के संबंधों पर निर्भर करती है। बौने मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर सांकुर की प्रवृत्ति बौनी तथा ओजयुक्त मूलवृंत पर वृद्धि सीधे ऊपर की तरफ व फैलने वाली होती है।

2. सांकुर के पुष्पन व फलन की शुरुआत पर प्रभाव

बौने मूलवृंतों का सेब में पुष्पन व फलन का प्रभाव विश्व में जाना जाता है। सेब के बौने मूलवृंतों जैसे एम-7, एम-9 और एम-27 पर मनचाही किस्म को प्रत्यारोपित करने से सेब की विभिन्न किस्मों में फलन कुछ वर्ष पहले आ जाता है। 'क्विंस सी' पर प्रत्यारोपित नाशपाती में भी फलन जल्दी शुरू होता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में किए गए शोध कार्यों से पता चलता है कि किन्नो संतरे में विभिन्न मूलवृंतों के उपयोग से इसकी परिपक्वता को डेढ़ से दो महीने तक बढ़ाया जा सकता है। 'ट्रायर सिटरेंज' पर प्रत्यारोपित किन्नो नवंबर में व 'सोहसरकार' पर प्रत्यारोपित किन्नो जनवरी में परिपक्व होते हैं। वैसे भी साधारणत: यह देखा गया है कि बीजू पौधों की अपेक्षा, कलमी पौधों में पुष्पन व फलन शीघ्र होता है। अत: इन सब बातों से ज्ञात होता है कि मूलवृंत का सांकुर की किशोरावस्था पर विशेष प्रभाव पड़ता है। बौने मूलवृंत जहां सांकुर की किशोरावस्था को कम करते हैं, वही ओजयुक्त मूलवृंत इसे बढ़ाते हैं।

3. सांकुर के फल के टिकाव पर प्रभाव

मूलवृंत, सांकुर के पुष्पोत्पादन के साथ-साथ निषेचन के बाद फलों के टिकाऊपन को भी विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। उदाहरणत: सेब के बौने मूलवृंतों (एम-27 व एम.-7) में प्रति इकाई आयतन में ओजयुक्त मूलवृंतों के अपेक्षा अधिक फल लगते हैं। किन्नो संतरे को 'ट्रायर सिटरेंज' मूलवृंत पर प्रत्यरोपित करने पर फल गिरने की समस्या अन्य मलवृंतों-जैसे 'करना खट्टा', 'सोहसरकार' आदि में कम होती है। काकू की 'हचिया' किस्म को 'अमलूक' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने से फल, बीजू पौधों की अपेक्षा अधिक लगते हैं। उपरोक्त उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि मूलवृंत पर सांकुर के पुष्पोत्पादन के अतिरिक्त फलों के टिकाऊपन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

4. सांकुर के फलोत्पादन पर प्रभाव

बौने मूलवृंत पर प्रत्यारोपित सांकुर का आकार काफी बौना होता है। अत: बीजू पौधों की अपेक्षा ऐसे पौधों की प्रति इकाई क्षेत्रफल संख्या काफी अधिक होती है। इसके अतिरिक्त बौने पौधों से फल भी कम संख्या में झड़ते हैं, जिससे प्रारंभिक वर्षों में बौने मूलवृंत पर प्रवर्धित पौधों से अधिक उपज प्राप्त होती है। उदाहरणत: सेब के एम-9 एवं एम-27 मूलवृंत पर प्रत्यारोपित किस्मों से लगभग 15 वर्ष की आयु में सर्वाधिक उत्पादन होता है परंतु बीजू पौधों से यह काफी देर से प्राप्त होता है। ऐसे और कई उदाहरण हैं जिनसे मालूम पड़ता है कि मूलवृंत, सांकुर के कुल फलोत्पादन को भी प्रभावित करते हैं।

5. सांकुर के फल के आकार पर प्रभाव

मूलवृंत, सांकुर के फल के आकार को कई प्रकार से प्रभावित करते हैं। कई मूलवृंत जहां फलों के आकार को बढ़ाते हैं तो कुछ इसे कम भी करते हैं। शोधकार्यों से ज्ञात हुआ है कि सांकुर को बौने मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने से प्रति इकाई आयतन में अधिकाधिक फल लगते हैं, परंतु फलों के आकार में कुछ कमी आ जाती है। सेब के 'एम-27', किन्नो के 'ट्रायर सिटरेंज' व अमरूद के 'पूसा सृजन' बौने मूलवृंतों पर सांकुर के फल ओजयुक्त मूलवृंतों की अपेक्षा कुछ छोटे हो जाते हैं। जट्टी-खट्टी मूलवृंत पर संतरे के फल आकार में बड़े हो जाते हैं।

6. सांकुर के फलों की गुणवत्ता पर प्रभाव

मूलवृंत का सांकुर के फलों की गुणवत्ता पर आश्चर्यनक प्रभाव देखा गया है। उदाहरणत: 'वीही', नाशपाती के लिए उत्तम मूलवृंत है, जिसके फल कसैले होते हैं, परंतु इसका नाशपाती की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सेब के फल बौने मूलवृंतों पर अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। किन्नो संतरे के फलों की मिठास 'ट्रायर सिटरेंज' मूलवृंत पर अन्य मूलवृंतों की अपेक्षा अच्छी होती है। बीजू पेड़ों की अपेक्षा 'पूसा सृजन' अमरूद के मूलवृंत पर 'इलाहाबादी सफेदा' किस्म के फल अच्छी मिठास एवं विटामिन 'सी' वाले होते हैं।

7. सांकुर के फलों की परिपक्वता पर प्रभाव

फलों की परिपक्वता भी मूलवृंत द्वारा प्रभावित होती है। प्राय: यह देखा गया है कि शीघ्र परिपक्व होने वाले मूलवृंत पर प्रत्यारोपण कर देने से सांकुर पर लगे फलों की परिपक्वता भी जल्दी हो जाती है। उदाहरणत: सेब की व्यावसायिक किस्मों को बौने मूलवृंतों पर प्रत्यारोपित करने पर, ओजयुक्त मूलवृंतों की अपेक्षा वे लगभग दो सप्ताह पहले

परिपक्व हो जाती हैं। किन्नो के फल 'ट्रायर सिटरेंज' मूलवृंत पर नवंबर के अंत में तथा 'सोहसरकार' पर जनवरी के अंत तक परिपक्व होते हैं।

8. सांकुर के फलों के रंग पर प्रभाव

कई मूलवृंत, सांकुर के फलों के रंग को प्रभावित करते हैं। अक्सर यह देखा गया है कि बौने मूलवृंतों पर फलों का रंग भी आकर्षक होता है। किन्नो फल, बौने मूलवृंत पर नवंबर के अंत में ही पक जाते हैं जबकि 'सोहसरकार' मूलवृंत पर फल मध्य जनवरी तक तैयार होते हैं। 'ट्रायर सिटरेंज' पर किन्नो के फल गहरे संतरी रंग के चमकीले और मुलायम छिलके के होते है जबकि 'सोहसरकार' पर कम चमकीले व खुरदरे छिलके वाले होते हैं। सेब के बौने मूलवृंत पर व्यावसायिक किस्म के फल चमकीले व आकर्षक लाल रंग के होते हैं।

9. मूलवृंत के सांकुर पर विविध प्रभाव

क. शीत सहयता पर प्रभाव

कुछ मूलवृंतों में अन्य मूलवृंतों की अपेक्षा अधिक ठंड सहने की क्षमता होती है, और वे इस गुण को सांकुर में भी दे देते हैं। जैसे नींबूवर्गीय फलों में 'ट्राइफोलिएट ऑरेंज' एवं 'ट्रायर सिटरेंज' मूलवृंत ठंड को काफी हद तक सह लेते हैं। अत: इन मूलवृंतों की सिफारिश ठंडे प्रदेशों हेतु की गई है। सेब के मैलिंग एवं मैलिंग मर्टन मूलवृंतों में काफी शीत सहयता है, परंतु अति ठंडे क्षेत्रों में सेब के 'रोबस्टा-5' मूलवृंत के प्रयोग का अनुमोदन किया गया है।

ख. मृदा की विपरीत परिस्थितियों के प्रति सहयता

कुछ मूलवृंत मृदा की विपरीत परिस्थितियों जैसे क्षारीयता, अम्लता आदि के प्रति सहनशील होते हैं। अत: उनके समुचित उपयोग से विभिन्न प्रकार की मृदा में भी फलों की बागवानी संभव हो जाती है। जैसे नींबूवर्गीय फलों में 'रंगपुर लाइम' एवं 'क्लियोपेट्रा' मूलवृंत मृदा की क्षारीयता के प्रति सहनशील हैं। अंगूर में 'डॉगरिज' व 'साल्टक्रीक' मूलवृंत मृदा की क्षारीयता के प्रति सहनशील है। अलूचे के लिए 'मीरोवलान' मूलवृंत का उपयोग अधिक नमी वाली मृदा में सफल पाया गया है। 'जट्टी-खट्टी' मूलवृंत का उपयोग नींबूवर्गीय फलों विशेषकर किन्नो व मौसम्मी में मरुस्थलीय क्षेत्रों में अच्छा पाया गया है। 'महालेब चेरी' मूलवृंत चेरी से सफल उत्पादन हेतु शुष्क प्रदेशों के लिए बहुत अच्छा रहता है क्योंकि इसमें सूखा सहने की अत्यधित क्षमता होती है। क्षारीय मृदा में आम से सफल उत्पादन हेतु 'कुरक्कन' मूलवृंत की सिफारिश की गई है।

ग. कीटों एवं रोगों के प्रति सहयता

सामान्यत: मूलवृंत में विद्यमान कीट एवं रोग के प्रति सहयता प्रत्यारोपित सांकुर में स्थानांतरित नहीं होती है, परंतु जिन कीट एवं रोगों का प्रकोप जड़ तक सीमित रहता है, उनमें इनके समुचित उपयोग से फलवृक्षों की सफल बागवानी की जा सकती है। उदाहरणत: सेब में 'मैलिंग-मर्टन' सीरीज के मूलवृंत, रूइया कीटरोधी हैं। परंतु 'मैलिंग' सीरीज के सभी के सभी मूलवृंत (एम-7, एम-27, एम-16 आदि) रूइया के प्रति सुग्राही हैं। आड़ू के 'निमागार्ड', अंगूर के 'डॉगरिज' व 'साल्ट क्रीक' एवं नींबूवर्गीय फलों में 'क्लियोपेट्रा' मूलवृंत सूत्रकृमि रोधी पाए गए हैं। नींबूवर्गीय फलों में जहां 'खट्टी नारंगी' मूलवृंत ट्रिस्टेजा विषाणु हेतु सुग्राही है वहीं 'जंभीरी' व 'क्लियोपेट्रा' इसके रोधी मूलवृंत हैं। नाशपाती का 'ओल्ड होम' मूलवृंत उकठा रोग रोधी है।

(ब.) सांकुर के मूलवृंत पर प्रभाव

कभी-कभी सांकुर भी मूलवृंत की वृद्धि, सहयता, जड़ मूलतंत्र आदि को प्रभावित करता है। उदाहरणत: नींबूवर्गीय फलों में कम ओजयुक्त सांकुर का प्रत्यारोपण करने पर पौधों की वृद्धि कम हो जाती है। सेब की 'रेड एस्ट्रैकन' किस्म को बीजू मूलवृंत पर प्रत्यारोपण करने पर अच्छा मूलतंत्र विकसित होता है। परंतु अन्य किस्मों का प्रत्यारोपण करने से ऐसा नहीं होता है। नींबूवर्गीय फलों में 'जट्टी-खट्टी' के बीजू पौधों पर 'यूरेका' नींबू का प्रत्यारोपण करने पर कम तापक्रम से काफी क्षति हो जाती है, जबकि खट्टी के पौधों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। सेब में 'नार्दन स्पाई' किस्म का एम.एम-106 मूलवृंत पर प्रत्यारोपण करने पर मूलवृंत में प्रसुप्ति अवस्था देर से आती है, जिसमें शीत गृह में जड़ों में अधिक क्षति हो जाती है।

(स.) मध्यस्थ मूलवृंत का सांकुर एवं मूलवृंत पर प्रभाव

विश्व के कई भागों में मध्यस्थ मूलवृंत के प्रयोग का प्रचलन है। मध्यस्थ मूलवृंत का प्रयोग मुख्यत: तब किया जाता है जब व्यावसायिक किस्म (सांकुर) और मनचाहे मूलवृंत के बीच असंगतता हो। ऐसे प्रयोग सर्वप्रथम नाशपाती में किए गए थे। प्रयोगों से यह पाया गया है कि मध्यस्थ मूलवृंत, सांकुर व मुख्य मूलवृंत की वृद्धि को नियंत्रित करते हैं। मध्यस्थ मूलवृंत के प्रयोग में मिलाप क्रिया दो स्थानों पर होती है। अत: जल, पोषण एवं अन्य भोज्य पदार्थों के वहन में गतिरोध के कारण मूलवृंत एवं सांकुर की वृद्धि स्वत: ही नियंत्रित हो जाती है। उदाहरणत: सेब में किशोरावस्था को कम करने हेतु 'क्रेब' मूलवृंत व व्यावसायिक किस्मों के सांकुर के मध्यस्थ 'पैराडाइज' मूलवृंत का प्रयोग किया जाता है। आम में 'अनुपम' मध्यस्थ मूलवृंत का प्रयोग आम्रपाली में और भी शीघ्र फलन व फलों में गुणवत्ता में सुधार हेतु अति उपयोगी पाया गया है। ❐

अध्याय-29

कलम-बंधन एवं कलिकायन में असंगतियां

पौधे की शारीरिक, वानस्पतिक, दैहिक और जैव रासायनिक समरूपता वाले दो पौधों के भागों को जब एक साथ प्रत्यारोपित करते हैं तो उनमें थोड़े दिनों में मिलाप प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है और वे एक पौधे की भांति वृद्धि करते हैं। इसके विपरीत शारीरिक, वानस्पतिक, दैहिक एवं जैव-रासायनिक आदि किसी एक भाग में भी विविधता होने पर मिलाप संभव नहीं होता है, जिसे कलम बांधने में असंगति कहते हैं। कभी-कभी दूरस्थ संबंध वाले सांकुर व मूलवृंतों का आपस में मिलाप शुरुआती अवस्था में अच्छा होता है, परंतु बाद में वे भी असंगति का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। ये कलमी मिलाप का असंगत मिलाप कहलाते हैं।

असंगतता के लक्षण

कलमी असंगतता में निम्नलिखित लक्षण प्रकट हो सकते हैं:

1. सफल मिलाप बनाने में पूर्णत: अक्षमता।
2. मिलाप की सफलता में कमी।
3. प्रत्यारोपण के शुरुआत में मूल सांकुर की अच्छी वृद्धि होती है, परंतु बाद में पेड़ जल्दी ही मर जाते हैं।
4. मिलाप बिंदु के आसपास के ऊतक मरने लगते हैं। वानस्पतिक वृद्धि में कमी आ जाती है और पत्तियों का गिरना शुरू हो जाता है।
5. सांकुर और मूलवृंत की वृद्धि की दर में भिन्नता होती है।
6. पोषक तत्वों की कमी के लक्षण भी दिखाई पड़ने लगते हैं।
7. पौधों की वृद्धि रुक जाती है।
8. मिलाप बिंदु के ऊपर या नीचे विकृतियां आ जाती हैं।
9. मौसम के अंत में पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं।
10. मिलाप बिंदु पर अत्यधिक उभार दिखाई देता है।
11. सांकुर व मूलवृंत, मिलाप के स्थान से सफाई से एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

परंतु यहां ध्यान देते योग्य बात यह है कि कभी-कभी उपरोक्त लक्षण तत्वों की कमी, रोग तथा कीटों के कारण या प्रत्यारोपण में की गई गलतियों के कारण भी हो सकते हैं। इसी प्रकार मिलाप बिंदु के ऊपर या नीचे दिखाई पड़ने वाली फूली हुई विकृतियां सफल मिलाप में भी संभव हैं। उदाहरणत: 'किन्नो' संतरे को 'ट्रॉयर सिटरेंज' एवं 'इलाहाबादी सफेदा' अमरूद की किस्म को 'पूसा सृजन' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर मूलवृंत एवं सांकुर के मिलाप बिंदु पर अक्सर विकृत वृद्धि देखी जा सकती है, परंतु ये दोनों उदाहरण सफल कलमी मिलाप के माने जाते हैं। अत: मूलवृंत व सांकुर के मिलाप बिंदु के पास विकृत वृद्धि का होना कलमी असंगतता का विश्वसनीय लक्षण नहीं है।

असंगतता के प्रकार

फलवृक्षों में विद्यमान असंगतता को स्थानगत व स्थानांतरित असंगतता, परिवर्तनीय व स्थिर असंगतता में वर्गीकृत किया गया है:

1. स्थानगत असंगतता

इस प्रकार की असंगतता मुख्यत: मूलवृंत व सांकुर के बीच सही मिलाप न होने के कारण होती है। इस प्रकार की असंगतता में मिलाप वाला भाग कमजोर हो जाता है और प्रत्यारोपण के बाद मिलाप के पास केवल मृदूतक कोशिकाओं का निर्माण ही हो पाता है और इसका संवहन ऊतकों में विभेदन नहीं हो पाता। फलत: संवहन ऊतकों में संबंध न होने के कारण भोज्य पदार्थो के वहन में गतिरोध होता है। इस प्रकार की असंगतता को मध्यस्थ मूलवृंत के प्रयोग से समाप्त किया जा सकता है। उदाहरणत: बार्टलेट नाशपाती का 'वीही' (क्विंस) पर प्रत्यारोपण करने पर दोनों में असंगतता होने के कारण सफलता नहीं मिलती। परंतु यदि दोनों से संगति वाले 'ब्यूरेहार्डी' या 'ओल्ड होम' को मध्यस्थ मूलवृंत के रूप में प्रयोग किया जाए तो यह समस्या हल हो जाती है।

2. स्थानांतरित असंगतता

कभी-कभी मूलवृंत एवं सांकुर के बीच असंगतता को मध्यस्थ मूलवृंत के प्रयोग से भी ठीक नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार की असंगतता को स्थानांतरित असंगतता कहते हैं। ऐसे संसर्ग में असंगतता हेतु जिम्मेदार रसायन स्थानांतरित होकर मध्यस्थ मूलवृंत एवं सांकुर की मिलाप प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देते हैं। इसमें फ्लोएम ऊतक का ह्रास होता हैं और ऊतकक्षयी लक्षण दिखाई देते हैं। परिणामस्वरूप मिलाप बिंदु के पास की छाल भूरी हो जाती है। कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य भोज्य पदार्थ परिवहन अवरोध के बाद मिलाप बिंदु के ऊपर सांकुर वाले भाग में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार की असंगतता

के काफी उदाहरण हैं, जैसे 'हेल्ज अर्ली' आड़ू को 'माइरोबोलान-बी' अलूचे के मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर इस प्रकार की असंगतता प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती है, जिसे दोनों के मध्य संगति वाले 'ब्रॉम्प्टन' को मध्यस्थ मूलवृंत के रूप में प्रयोग करके भी दूर नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार की असंगतता 'नॉन परेल' बादाम को 'मरियाना-2624' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर भी पाई गई है, जबकि 'टैक्सास', जो बादाम की दूसरी लोकप्रिय किस्म है, में यह समस्या नहीं पाई जाती है।

असंगतता के कारण

सामान्यत: कलम-बंधन या कलिकायन में असंगतता मुख्य रूप से सांकुर व मूलवृंत के आनुवंशिक गुणों में भिन्नता के कारण होती है। असंगतता के कारणों के बारे में कई दशकों से शोध कार्य जारी हैं। इन कार्यों के आधार पर मूलवृंत एवं सांकुर के बीच असंगतता के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

क. मूलवृंत व सांकुर की वानस्पतिक वृद्धि में असमानता

विभिन्न प्रयोगों से ज्ञात होता है कि मूलवृंत एवं सांकुर की वानस्पतिक भिन्नता के कारण उनमें असंगतता होती है। अत: प्रवर्धन के समय यह बात अति आवश्यक है कि सांकुर एवं मूलवृंत का चयन इस ढंग से किया जाए ताकि दोनों की वानस्पतिक वृद्धि, प्रसुप्ति के आंरभ में, अंत और वृद्धि की दर में समरूपता हो। ऐसा न होने पर बाद में कुछ मिलाप में असंगतता आ सकती है। संभवत: यही कारण है कि चेरी की कई किस्मों को 'पदम' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर विलंबित असंगति आ जाती है। चेरी की किस्मों में प्रसुप्ति अधिक पाई जाती है, जबकि 'पदम' में अक्टूबर में वृद्धि होती है। ठीक इसी प्रकार उत्तरी भारत में नींबूवर्गीय फलों को 'ट्राइफोलिएट ऑरेन्ज' पर प्रवर्धित करने से इसी प्रकार की विलंबित असंगतता उत्पन्न होती है। हालांकि कई ऐसे उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि मूलवृंत एवं सांकुर की वानस्पतिक वृद्धि में समरूपता होने के बावजूद, उनमें असंगतता पाई जाती है।

ख. शारीरीय कारण

ऊतकीय अनुसंधान कार्यों से पता चलता है कि मूलवृंत एवं सांकुर बेशक वंश पर आधारित संरचना में भिन्न न हों, परंतु कई बार कलमी मिलाप के स्थान पर मृदूतक कोशिकाओं के अत्यधिक निर्माण से कई बार ऐसी बाधाएं तैयार हो जाती हैं जो कलमी मिलाप को असफल बना देती हैं, जो स्वयं असंगतता का एक कारण बन जाता है। कभी-कभी मूलवृंत व सांकुर के मिलाप बिंदु पर छाल की पतली तह बन जाती है जो मूलवृंत व सांकुर के संवहनी ऊतकों के बीच जुड़ाव को प्रभावित करती है। ऐसा होने

से जड़ों द्वारा अवशोषित भोज्य पदार्थों एवं जल की सांकुर हेतु आपूर्ति नहीं हो पाती, जिसके कारण सांकुर की अनुकूल वृद्धि नहीं हो पाती है। उदाहरणतः अलूचे, नाशपाती एवं आड़ू में असंगतता मुख्यतः शारीरीय कारणों से होती है।

ग. दैहिक एवं जैव-रासायनिक कारक

कई बार मूलवृंत एवं सांकुर में असंगतता शारीरीय न होकर दैहिक या जैव रासायनिक कारणों से होती है। ऐसा अक्सर तब होता है जब या तो मूलवृंत या सांकुर में से कोई एक वानस्पतिक वृद्धि हेतु आवश्यक सामग्री (जैसे पोषक तत्व, पानी आदि) की कम या बिल्कुल भी पूर्ति न करे। यह अक्सर फ्लोएम या जाइलम के सक्रिय रहने के कारण होता है। उदाहरणतः जब नाशपाती को 'वीही' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित किया जाता हैं तो 'वीही' द्वारा साइनोजेनिक ग्लूकोसाइड (प्रूनेसिन) नाशपाती के फ्लोएम में स्थानांतरित होता है। इन्हीं ऊतकों में एन्जाइम अभिक्रिया के फलस्वरूप यह हाइड्रोसायनिक अम्ल, वेन्जाइलएलडिहाइड एवं अन्य पदार्थों में विघटित हो जाता है। तापमान अधिक होने पर विघटन की क्रिया तेज होती है। हाइड्रोसायनिक अम्ल की उपस्थिति में मिलाप के पास कैम्बियम कोशिकाओं के विभाजन की क्षमता क्षीण हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप फ्लोएम एवं जाइलम में ह्रास हो जाता है। परिणामतः मूलवृंत एवं सांकुर में संवहन स्थापित नहीं हो पाता और पानी एवं तत्वों का आवागमन अवरुद्ध हो जाता है। बाद में सांकुर धीरे-धीरे सूख जाता है।

संवहन संबंध स्थापित न होने के कारण सांकुर द्वारा निर्मित शर्करा का वहन 'वीही' मूलवृंत को नहीं हो पाता हैं जिसके कारण इसमें प्रूनेसिन का विघटन तेजी से होता है। अतः हाइड्रोसायनिक अम्ल की सांद्रता बढ़ने से मूलवृंत के फ्लोएम ऊतक नष्ट हो जाते हैं। अतः मिलाप के स्थान पर किसी हानिकारक रसायन के कारण कलम-बंधन असफल हो जाता है।

ग. पोषण की कमी

पोषक तत्वों की कमी से भी असंगतता उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है। 'जोनाथन' सेब को 'एम-9' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने से सांकुर में मॉलिब्डेनम की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि 'एम-9' मूलवृंत की मॉलिब्डेनम अवशोषण क्षमता तथा उसे सांकुर को उपलब्ध कराने की क्षमता कम होती है। इसी प्रकार आड़ू को 'माइरोबोलान-बी' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करने पर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व मैग्नीशियम की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

ग. विषाणु की उपस्थिति

सांकुर या मूलवृंत में प्रसुप्त विषाणुओं की उपस्थिति भी असंगतता का कारण हो

सकती है। उदाहरणतः यदि 'बार्टलेट' नाशपाती को *'पाइरस पाइरीफोलिया'* मूलवृंत पर प्रत्यारोपित किया जाता है तो नाशपाती में विघटन रोग मुख्य रूप से देखा जा सकता है। जबकि यह रोग *'पाइरस क्यूमि'* मूलवृंत होने पर नहीं पाया जाता है। नींबूवर्गीय फलों में असंगतता का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के विषाणुओं, जैसे ट्रिस्टेजा, सोरोसिस व जाइलोपोरोसिस हैं।

असंगतता का सुधार

यदि किसी तरह स्थानगत असंगतता के कारण किसी फलवृक्ष के मरने से पहले उसका पता चल जाए तो इसका सुधार संभव है। ऐसी दशा में मूलवृंत और सांकुर दोनों से संगति वाले मूलवृंत से सेतु कलम द्वारा सुधार किया जा सकता है। यदि कोई पौधा विलंबित असंगतता वाले मूलवृंत पर प्रत्यारोपित कर दिया गया है तो भेंट कलम-बंधन द्वारा उसका सुधार किया जा सकता है।

❐

अध्याय-30

कलिकायन द्वारा प्रवर्धनः लाभ एवं विधियां

कलिकायन (चश्मा चढ़ाना) एक प्रकार से कलम-बंधन की प्रक्रिया ही है जिसमें प्रवर्धन हेतु मात्र एक ही कली का प्रयोग किया जाता है। कली को मूलवृंत पर चढ़ाकर नए यौगिक पौधे का सृजन किया जाता है। कभी-कभी इसे 'कलिका कलम-बंधन' के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके कई लाभ हैं, जैसे-

1. यह कलम-बंधन की अपेक्षा तीव्र एवं कार्यक्षम प्रवर्धन विधि है।
2. यह विधि कलम-बंधन की अपेक्षा आसान है।
3. यदि सांकुर सीमित संख्या में उपलब्ध हों तो मात्र कलिकायन ही सबसे उपयुक्त प्रवर्धन विधि है।
4. यह उन पौधों (जैसे काठदार फल) के प्रवर्धन हेतु अधिक लाभदायक है जिनमें कलम-बंधन करने हेतु चीरा लगाने पर अत्यधिक गोंद या रसदार पदार्थ निकलता हो।
5. इस विधि द्वारा प्रवर्धित पौधे कलम बंधन की अपेक्षा अधिक मजबूत होते हैं क्योंकि सांकुर और मूलवृंत में मिलाप की अपेक्षाकृत अच्छी संभावना होती है।
6. कलम-बंधन की अपेक्षा इस विधि द्वारा माली थोड़े समय में ही अधिक पौधे प्रवर्धित कर सकता है।

कलिकायन द्वारा प्रवर्धन विधि की सफलता मुख्यतः पौधे की छाल के खिसकने की योग्यता पर निर्भर करती है। यह उस समय सबसे अच्छी स्थिति में होती है जब पौधों में सक्रिय वृद्धि हो और पौधों में रस का संचार ठीक-ठीक हो, जिससे छाल को निकालना भी आसान होता है। हालांकि कई अन्य कारक, जैसे नमी की कमी, कीट एवं रोगों का प्रकोप एवं कम तापमान आदि भी कलिकायन द्वारा प्रवर्धन की सफलता को प्रभावित कर सकते हैं। कलिकायन द्वारा प्रवर्धन की विभिन्न विधियों में मात्र 'आइ' चश्मा विधि ही उन परिस्थितियों में प्रयोग की जा सकती है जब छाल को मूलवृंत से निकालना कठिन हो।

कलम-बंधन की भाँति, कलिकायन द्वारा प्रवर्धन हेतु भी मूलवृंत की आवश्यकता पड़ती है। मूलवृंत के साथ-साथ कलिका हेतु प्रयुक्त कलिका लकड़ी का चयन भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। कलिकायन हेतु प्रयुक्त कलिका वानस्पतिक होनी चाहिए। वानस्पतिक कलिकाएं सामान्यतः छोटी एवं नुकीली होती हैं जबकि पुष्पीय कलिकाएं बड़ी, चपटी व गोल होती हैं।

कलिकायन हेतु कलिका लकड़ी की तैयारी

सबसे पहले ऐसे पौधों का चयन करें जो स्वस्थ हों और कई वर्षों से अच्छी फलत दे रहे हों। चयनित पौधों में ऐसी शाखाओं का चयन करें जो 4-6 माह पुरानी हों, उनमें कांटे न हों और न ही वे चपटी हों, अर्थात् गोलाईदार, 4 से 6 माह पुरानी, कांटा रहित शाखाएं कलिका लकड़ी के चयन हेतु अच्छी रहती हैं। चयनित शाखा की पत्तियों को इस ढंग से काटें ताकि पत्तियों के आधार का कुछ हिस्सा ही शेष रहे। लकड़ी के बीच या आधार वाली कलिकाएं ही कलिकायन हेतु अच्छी रहती हैं।

कलिकायन की विधियां

कलिकायन द्वारा प्रवर्धन हेतु पौधशाला प्रवर्धक के ज्ञान एवं सुविधा के आधार पर विभिन्न औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन हेतु भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं। ऐसी प्रमुख विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

1. ढाल या 'टी' कलिकायन

इस विधि का यह नाम 'ढाल' या 'टी' चश्मा, ढाल की आकार की कलिका व अंग्रेजी शब्द 'टी' के आकार के मूलवृंत पर दिए गए वाले चीरे के आधार पर दिया गया है। यह संसार भर में अपनाई जाने वाली कलिकायन की सबसे प्रचलित विधि है। इस विधि में कलिका को मूलवृंत पर भूमि की सतह से 15-20 सेमी. ऊपर प्रत्यारोपित कर इसे पॉलिथीन की पतली पट्टी से कसकर बांध दिया जाता है (रेखाचित्र-18)। कलिका (सांकुर) में फुटाव आने के बाद मूलवृंत को फुटाव से 15-20 सेमी. ऊपर से काट दिया जाता है। जब फुटाव 15-20 सेमी लंबा हो जाए, तो मूलवृंत का बाकी हिस्सा (मूलवृंत व सांकुर के मिलाप के ऊपर का) भी काट दिया जाता है। 'टी' कलिकायन उन पौधों के प्रवर्धन हेतु प्रयोग किया जाता है जिनकी छाल पतली होती है और जिनमें रस का अच्छा संचार होता है। इस विधि द्वारा अधिकतर नींबूवर्गीय फल, बेर, गुलाब, आड़ू, अलूचा, चेरी, सेब, नाशपाती, खुबानी आदि पौधों को सुगमतापूर्वक प्रवर्धित किया जाता है।

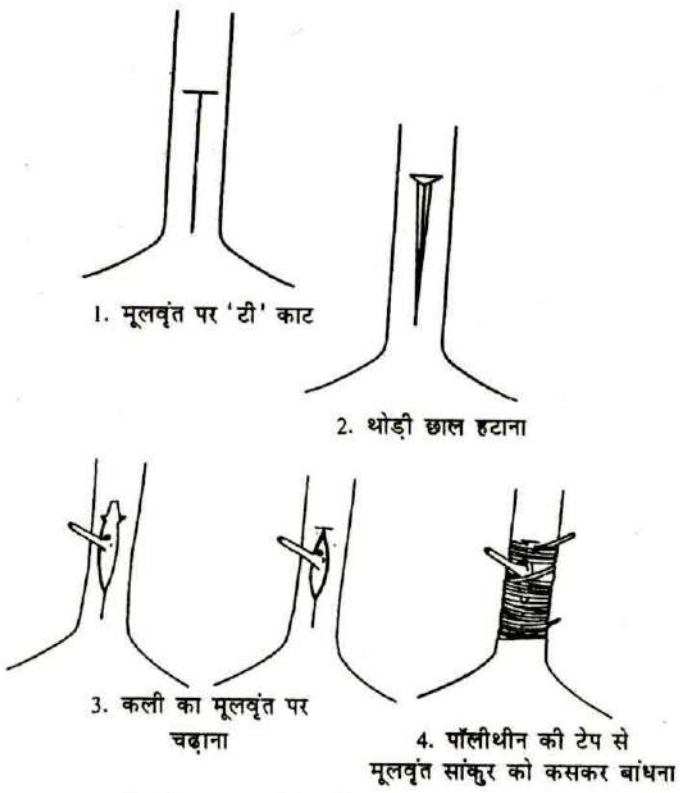

रेखाचित्र 18: 'टी' कलिकायन की विधि

2. उल्टी 'टी' कलिकायन

इस विधि में मूलवृंत पर अंग्रेजी अक्षर 'टी' की भाँति उल्टा चीरा दिया जाता है। यह विधि अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अति उत्तम पाई गई हैं। इसी तरह जिन पौधों (जैसे चेस्टनट) से कलम-बंधन में गोंद का अधिक रिसाव होता है उनमें भी प्रवर्धन हेतु उल्टी 'टी' कलिकायन विधि लाभदायी रहती है।

3. पैबंदी कलिकायन

इस विधि में मूलवृंत से आयताकार छाल निकालकर इसी के समान आकार की कलिका सहित सांकुर शाखा की छाल का प्रत्यारोपण किया जाता है। इस प्रकार का

कलिकायन करना अति कठिन कार्य होता है, अत: पैबंदी कलिकायन धीमी गति से ही किया जाता है। इस विधि द्वारा प्रवर्धन हेतु उचित समय मई-जून और जुलाई-सितंबर का होता है। पैबंदी कलिकायन हेतु मूलवृंत व सांकुर एक जैसी मोटाई के होने चाहिए। सांकुर तैयार करने हेतु चयनित टहनी से प्रत्यारोपित की जाने वाली कलिका को बीच में रखते हुए 2-3 सेमी लंबे व 1-1.5 सेमी. की दूरी पर दो समांतर चीरे लगाए जाते हैं। इन दोनों चीरों के ऊपर व नीचे भी चीरे लगाकर कलिका सहित आयताकार छाल निकाल दी जाती है। ठीक इसी प्रकार मूलवृंत से भी इसी आकार की छाल निकाल दी जाती है। कलिका सहित आयताकार छाल, मूलवृंत पर प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन की पट्टी से कसकर बांध दी जाती है। बांधते समय यह ध्यान अवश्य रखें कि कलिका खुली रहे ताकि उसके फुटाव में व्यवधान न पड़े। जब सांकुर में फुटाव आ जाए तो मूलवृंत को मिलाप बिंदु के ऊपर से धीरे-धीरे काट दें। साधारणत: यह विधि मोटी छाल वाले वृक्षों, जैसे अखरोट, पीकननट जिनमें 'टी' कलिकायन करना कठिन होता है, में लाभदायी रहती है। हालांकि इस विधि द्वारा आम, रबर, आंवला, कटहल, जामुन आदि को भी प्रवर्धित किया जा सकता है।

4. छल्ला कलिकायन

इस विधि में मूलवृंत से छाल का संपूर्ण रिंग हटाकर कलिका के इसी आकार का रिंग मूलवृंत पर प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। यह तभी संभव हो पाता है जब मूलवृंत व सांकुर की मोटाई एक जैसी हो। गहरी काट-छांट के बाद तेजी से वृद्धि कर रहे प्ररोह से छल्ला निकालना आसान होता है। इस विधि से लगभग 80 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। अत: यह विधि बेर, आड़ू, शहतूत आदि फलवृक्षों के प्रवर्धन हेतु प्रयोग की जाती है।

5. चिप्पी कलिकायन

यह विधि उस दशा में प्रयोग में लाई जाती है जब पौधों के तनों से छाल निकालना कठिन हो। ऐसा पौधों में उस समय होता है जब उनमें रस का संचार ठीक से न हो या फिर पौधों को पानी का अभाव हो या कम तापमान के कारण छाल सख्त पड़ गई हो। ये सभी परिस्थितियां कलिकायन की सफलता को प्रभावित करती हैं। इन्हीं परिस्थितियों में चिप्पी कलिकायन कारगर सिद्ध होता है। यह सामान्यत: फरवरी या मार्च के महीनों में किया जाता है। यह 'टी' कलिकायन की तरह सरल नहीं है परंतु यह विनियर कलम-बंधन से मिलता-जुलता है। इसमें अंतर केवल इतना है कि चिप्पी कलिकायन में जहां लकड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा एक कलिका के साथ मूलवृंत पर प्रत्यारोपित किया जाता है, वहीं विनियर कलम-बंधन में सांकुर में 4-6 कलिकाएं होती हैं। इस विधि में

सबसे पहले चिप्पी तैयार की जाती है। चिप्पी तैयार करने हेतु सांकुर शाख में कलिका के नीचे 45° का तिरछा चीरा तीन चौथाई गहराई तक लगाया जाता है। दूसरा चीरा कलिका से 1 सेमी. ऊपर से नीचे की तरफ पहले चीरे तक लगाते हुए चिप्पी अलग कर ली जाती है। इसी आकार की चिप्पी मूलवृंत के तने से भी निकाल ली जाती है। सांकुर शाख से निकाली चिप्पी को मूलवृंत के ऊपर प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन की पट्टी से कसकर बांध देते हैं। सांकुर में फुटाव आने के बाद मूलवृंत को धीरे-धीरे काट देते हैं। अंगूर, सेब व नाशपाती को चिप्पी कलिकायन द्वारा प्रर्वधित करते हैं। इसके अतिरिक्त अंगूर को प्रसुप्तावस्था में सूत्रकृमि रोधी मूलवृंत पर प्रत्यरोपित करने हेतु चिप्पा कलिकायन विधि प्रयोग करते हैं।

6. 'आई' कलिकायन

इस विधि में भी कलिकायन का आकार पैबंदी कलिकायन की तरह आयाताकार या वर्गकार ही होता है, परंतु मूलवृंत पर अंग्रेजी अक्षर 'आई' आकार का चीरा लगाया जाता है। तदुपरांत, कलिका को इसके बीच प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन की पट्टी से बांध दिया जाता है। इस विधि द्वारा आम, कटहल एवं काजू को प्रवर्धित किया जाता है।

रूपांतरित छल्ला कलिकायन

यह विधि छल्ला कलिकायन विधि का संशोधित रूप है। इस विधि में छाल का छल्ला इस ढंग से निकाला जाता है ताकि यह सांकुर शाखा के चारों तरफ से कुछ ही हिस्सा शाखा पर छोड़े। इसी आकार का छल्ला कलिका लकड़ी से निकाला जाता है जिसे मूलवृंत पर प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन की पट्टी से जकड़कर बांध दिया जाता है। यह अखरोट व पीकननट के प्रवर्धन की सर्वोत्तम विधि है।

❐

अध्याय-31

कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धनः लाभ, सीमाएं एवं विधियां

कलम-बंधन एक ऐसी कला व तकनीक है जिसमें दो विभिन्न पौधों के दो सजीव भागों को इकट्ठा कर इस ढंग से मिलाप किया जाता है ताकि बाद में वे एक पौधे के रूप में काम कर सकें। अतः इस विधि में पौधे के दो भाग होते हैं, एक सांकुर और दूसरा मूलवृंत। सांकुर प्रवर्धित पौधे का वह भाग होता है जिसमें फूल व फल आते हैं और नीचे का भाग जिस पर सांकुर प्रतिरोपित किया जाता है, उसे मूलवृंत कहते हैं, जो प्रवर्धित पौधे को जड़तंत्र प्रदान करता है। इस विधि के लाभ एवं सीमाएं निम्नलिखित हैं :

कलम-बंधन के लाभ

कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धन के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. यह विधि उन पौधों के प्रवर्धन हेतु एक अच्छी विधि है जो कलम या दाबा द्वारा आसानी से प्रवर्धित नहीं किए जा सकते हैं।
2. इस विधि में मूलवृंत के सांकुर पर अनुकूल प्रभावों का उचित प्रयोग संभव है।
3. इस विधि द्वारा पुराने या घटिया किस्म के बागों का आसानी से जीर्णोद्धार संभव है।
4. इस विधि द्वारा एक ही पौधे पर विभिन्न किस्मों का प्रत्यारोपण किया जा सकता है।
5. पौधों की किशोरावस्था को अक्सर कलम-बंधन द्वारा ही कम किया जाता है।
6. पौधे के कुछ क्षतिग्रस्त हिस्सों, जैसे जड़, तना आदि को सेतु कलम-बंधन द्वारा सुधारा जा सकता है।
7. विषाणुओं के संक्रमण हेतु विषाणुयुक्त शाखा (सांकुर) को किसी ग्रहणशील पौधे पर रोपित करके विषाणुओं का अध्ययन किया जा सकता है।
8. कई फलवृक्षों में पर-परागण हेतु विशेष प्रकार की परागणकारी किस्मों की

आवश्यकता होती है जिसे पूर्णरूप से स्थापित बागों में परागणकारी किस्म को प्रत्यारोपित कर दूर किया जा सकता है।

9. कभी-कभी विशेष प्रयोजन के लिए मूलवृंत एवं सांकुर के बीच मध्यस्थ मूलवृंत का प्रयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया को 'कलम पर कलम-बंधन' कहते हैं। अत: कलम-बंधन द्वारा मध्यस्थ मूलवृंत का लाभ लेना संभव है।

कलम-बंधन की सीमाएँ

कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धन की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं:

1. यह एक तकनीकी प्रक्रिया है, अत: कलम-बंधन हेतु मनुष्य में तकनीकी ज्ञान का होना आवश्यक है।
2. इस विधि में पहले मूलवृंत और फिर सांकुर को तैयार करना पड़ता है। अत: यह विधि कलम, दाबा एवं बीज प्रवर्धन की अपेक्षा अधिक समय लेती है।
3. कई पौधों में असंगतता की समस्या होती है। ऐसे पौधों का प्रवर्धन कलम-बंधन द्वारा संभव नहीं होता है।
4. यह विधि मुख्यत: द्विबीजपत्रीय या अनावृतबीजी पौधों में ही संभव होती है क्योंकि एकबीजपत्रीय पौधों में मूलन प्रक्रिया हेतु आवश्यक एधा कोशिकाएं (कैम्बियम) नहीं होती है जिस कारण ऐसे पौधों में कलम-बंधन द्वारा सफलता नहीं मिलती है।

कलम-बंधन की सफलता मुख्यत: मूलवृंत व सांकुर के मिलान पर ही निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त हालांकि विभिन्न प्रकार के पौधों में कलम-बंधन के प्रति प्रतिरोध भिन्न-भिन्न है, परंतु कुछ पौधों में कलम-बंधन आसानी से की जा सकती है व अन्य में यह अत्यंत मुश्किल काम है। साधारणत: वानस्पतिक आधार पर मेल खाने वाले पौधों के मूलवृंत व सांकुर में अच्छा मिलान हो जाता है और ऐसे प्रवर्धित पौधे दीर्घआयु वाले होते हैं। फिर भी कलम-बंधन को प्रभावी बनाने हेतु निम्नलिखित आधारभूत आवश्यकताएं होती हैं :

1. मूलवृंत व सांकुर के बीच संगतता होनी चाहिए। जैसा पहले बताया जा चुका है कि वानस्पतिक या शारीरीय आधार पर संबंधित पौधों में कलम-बंधन आसान व दीर्घआयु वाला होता है।
2. सांकुर को मूलवृंत पर इस तरह सही बिठाया जाना चाहिए ताकि इसकी एधा कोशिकाएं अर्थात् कटा हिस्सा मूलवृंत की एधा कोशिकाओं में भलीभांति बैठ जाए। उसके बाद दोनों को मजबूती से पॉलिथीन की पट्टी से बांधें।

3. कलम-बंधन की प्रक्रिया सही मौसम में करनी चाहिए मुख्यत: जब मूलवृंत व सांकुर दोनों वृद्धि, परिपक्वता एवं मोटाई की अनुकूल दशाओं में हों।
4. कलम-बंधन की प्रक्रिया के बाद मूलवृंत व सांकुर के कटे भागों को किसी टेप या मोम से ढक देना चाहिए ताकि ये सूख न पाएं।
5. कलमी मिलाप को वातावरण की अनुकूल परिस्थितियों जैसे अधिक व कम तापमान एवं कीट व रोगों आदि से बचाया जाना चाहिए।
6. कलम-बंधन के बाद कलमी मिलाप से नीचे मूलवृंत पर निकले प्ररोहों को निकालते रहना चाहिए।

कलम-बंधन की विधियां

कलम बंधन की प्रमुख विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

1. भेंट कलम-बंधन

भेंट कलम-बंधन में मूलवृंत व सांकुर मातृ वृक्ष से संपर्क रखते हुए इस प्रकार प्रवर्धित किए जाते हैं कि दोनों में मिलाप हो जाए। तदुपरांत, मूलवृंत का ऊपरी हिस्सा और सांकुर को मातृ पौधे से अलग करके रोपण किया जाता है। कुछ फलवृक्षों को अन्य विधियों से प्रवर्धित करना मुश्किल होता है परंतु उन्हें भेंट कलम-बंधन द्वारा आसानी से प्रवर्धित कर सकते हैं। भेंट कलम-बंधन ऐसे समय में किया जाता है जब मूलवृंत व सांकुर में सक्रिय वृद्धि हो रही हो और वातावरण में पर्याप्त नमी हो। इस विधि द्वारा

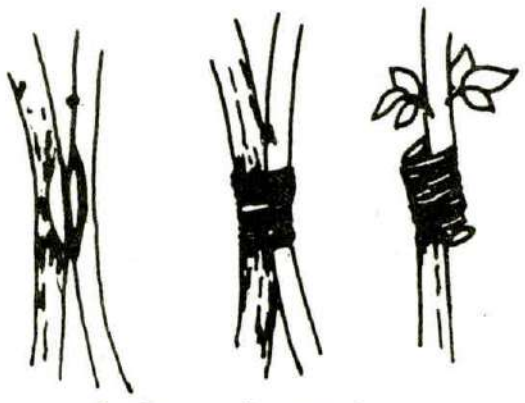

रेखाचित्र 19: भेंट कलम बंधन

मुख्यत: अमरूद व आम को प्रवर्धित किया जाता है। इस विधि की मुख्य समस्या यह है कि मूलवृंत को मातृ पौधे के समीप लाना पड़ता है जो एक कठिन व खर्चीली प्रक्रिया है। भेंट कलम-बंधन की असली प्रक्रिया में मूलवृंत से भूमि की सतह से लगभग 20 से 25 सेमी. ऊंचाई पर तेज चाकू से छाल का 6-8 सेमी. लंबा तथा आधा इंच मोटा टुकडा निकाला जाता है (रेखाचित्र-19)। इसी प्रकार व आकार का टुकड़ा (काट) सांकुर से भी निकाला जाता है। ये टुकड़े इस तरह से निकालने चाहिए कि मूलवृंत एवं सांकुर की एधा ऊतक दिखाई पड़ जाएं। मूलवृंत एवं सांकुर के कटे हिस्से को नजदीक लाया जाता है और फिर पॉलिथीन की पट्टी से कसकर बांध दिया जाता है। कलमी मिलाप जब सफलता की तरफ बढ़ने लगता है तो पॉलिथीन की पट्टी धीरे-धीरे टूटने लगती है। जब कलमी मिलाप सफल हो जाए तो धीरे-धीरे मूलवृंत को कलमी मिलाप के ऊपर व सांकुर को कलमी मिलाप से नीचे काट देना चाहिए। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती हो, वहां भेट कलम-बंधन को बरसात के शुरू में एवं जिन क्षेत्रों में अक्सर भारी वर्षा होती हो, वहां बरसात के अंत में ही भेंट कलम-बंधन करनी चाहिए।

2. काशा कलम-बंधन

यह कलम-बंधन की सबसे सरल एवं लोकप्रिय विधि है। इस विधि में प्रवर्धन हेतु यह आवश्यक है कि दोनों मूलवृंत व सांकुर एक जैसी मोटाई के हों। इस विधि में मूलवृंत को भूमि से 23-25 सेमी. की ऊंचाई पर 3-4 सेमी. तिरछा चीरा दिया जाता है। (रेखाचित्र-20)। इसी तरह का तिरछा चीरा सांकुर के निचले हिस्से पर इस प्रकार दिया जाता है ताकि सांकुर व मूलवृंत के चीरे एक समान हों। तत्पश्चात् सांकुर को प्रत्यारोपित करते हुए सुतली या पॉलिथीन से जकड़कर बांध देते हैं।

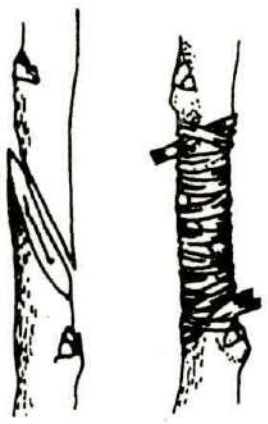

रेखाचित्र 20: काशा कलम-बंधन

3. जिह्वा कलम-बंधन

यह काशा कलम-बंधन का ही परिवर्तित रूप है। यह काशा कलम-बंधन से मात्र इस लिए भिन्न है कि सांकुर एवं मूलवृंत पर दिए गए चीरों के बीच भी एक और चीरा दिया जाता है जो जिह्वा के आकार का होता है। ऐसा करने से सांकुर व मूलवृंत के बीच हवा जाने का कतई रास्ता नहीं रह जाता है और इनका बंधन (मिलाप) और भी मजबूत हो जाता है (रेखाचित्र-21)। सेब, नाशपाती, अखरोट आदि का प्रवर्धन इस विधि द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

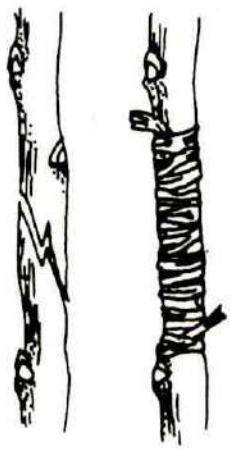

रेखाचित्र 21: जिह्वा कलम-बंधन

4. पार्श्व कलम-बंधन

इस विधि में सांकुर के लगभग 2.5 सेमी. निचले हिस्से को मूलवृंत के पार्श्व में प्रत्यारोपित किया जाता है। इस विधि में प्रवर्धन हेतु मूलवृंत की मोटाई सांकुर की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। यह भी कलम-बंधन की एक लोकप्रिय विधि है और इसके कई और परिवर्तित रूप हैं। परंतु मुख्यत: ठूंठ कलम-बंधन और पार्श्व जिह्वा कलम-बंधन ही प्रयोग में लाए जाते हैं। यह मुख्यत: आम में प्रयोग में लाई जाती है।

5. विनियर कलम-बंधन

यह कलम-बंधन की एक साधारण तकनीक है जिसमें 1-1.5 सेमी. मोटाई के एक वर्ष पुराने मूलवृंत का प्रयोग करते हैं। 4-6 माह पुरानी सांकुर शाखा विनियर कलम हेतु

अच्छी रहती है। सांकुर तैयार करने हेतु चयनित शाखा की पत्तियों को कलम-बंधन से 7-10 दिन पहले हटा दिया जाता है। कलम-बंधन हेतु मूलवृंत के मध्य भाग पर 4-5 सेमी. आकार का एक तिरछा चीरा इस तरह लगाया जाता है कि मूलवृंत की अंदर की कुछ लकड़ी दिख जाए। सांकुर पर भी इसी तरह व आकार का तिरछा चीरा लगाया जाता है। तदुपरांत, सांकुर को मूलवृंत पर प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। विनियर कलम-बंधन हेतु मार्च व जुलाई-अगस्त के माह सर्वश्रेष्ठ पाए गए हैं। विनियर कलम-बंधन पुराने बागों के जीर्णोद्धार हेतु भी एक अच्छी विधि सिद्ध हुई है। इसके अतिरिक्त इस विधि में मनचाही किस्म के सांकुर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना बहुत आसान होता है। विनियर कलम-बंधन द्वारा मुख्यत: आम का प्रवर्धन किया जाता है।

6. छाल कलम-बंधन

कई पौधशालाकर्मी स्फान कलम-बंधन की अपेक्षा छाल कलम-बंधन का प्रयोग अधिक करते हैं, क्योंकि इस विधि में मूलवृंत के ठूंठ को चाकू व हथौड़े से चीरा देने की आवश्यकता नहीं होती जो साधारणत: फफूंदी के आक्रमण को बढ़ावा देती है और जिससे मूलवृंत व सांकुर दोनों के सड़ने का भय रहता है। छाल कलम-बंधन बसंत में सबसे अधिक उपयुक्त रहता है। छाल कलम-बंधन हेतु सांकुर हमेशा प्रसुप्तावस्था में ही होना चाहिए। इस विधि में मूलवृंत को आरे से उस स्थान-विशेष में काट दिया जाता है जहां छाल एक बराबर हो। 10 से 12 सेमी. लंबे सांकुर में एक तरफ 5 सेमी. लंबा तिरछा चीरा व दूसरी तरफ हल्का चीरा लगाया जाता है, जिसे मूलवृंत की छाल में प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन की पट्टी से जकड़कर बांध दिया जाता है। सांकुर में लंबे चीरे वाला हिस्सा मूलवृंत के लकड़ी वाले हिस्से की तरफ रखा जाना चाहिए। यदि मूलवृंत मोटा हो तो इसकी छाल में 3-4 सांकुर डाल भी प्रत्यारोपित किए जा सकते हैं। बांधने के बाद ठूंठ के सभी दिखने वाले या नंगे भागों को मोम से सील कर दिया जाना चाहिए।

7. स्फान कलम-बंधन

इस विधि का प्रयोग मुख्यत: शीतोष्णवर्गीय फलों के पुराने पौधों के जीर्णोद्धार हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस विधि का प्रयोग अखरोट, पीकननट, हेजलनट व अंगूर आदि के प्रवर्धन हेतु भी किया जाता है। इस विधि में 7-10 सेमी. मोटे मूलवृंत को धरातल से 30-35 सेमी. की ऊंचाई पर काट दिया जाता है। इस कटे हुए मूलवृंत को बीच से तेज चाकू द्वारा चीरा दिया जाता है। इस चीरे में पहले से ही तैयार नुकीले आकार के सांकुर को प्रत्यारोपित किया जाता है। फरवरी के अंत या मार्च के शुरू में इस विधि द्वारा प्रवर्धन करने पर अच्छी सफलता मिलती है।

8. दांता कलम-बंधन

यह विधि अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में तब प्रयोग में लाई जाती है जब मूलवृंत 8 सेमी. से अधिक मोटे हों। इस विधि में मूलवृंत को पहले धरातल से 45 सेमी. की ऊंचाई पर काट कर उसमें 4-5 स्थानों पर एक समान दूरी पर अंग्रेजी शब्द 'V' के आकार के चीरे लगाए जाते हैं। इन सभी चीरों में पहले से ही तैयार सांकुर प्रत्यारोपित कर पॉलिथीन से कस कर बांध दिए जाते हैं। मूलवृंत व सांकुर के मिलान पर मोम की तह का प्रयोग भी अच्छा रहता है।

9. ठूंठ कलम-बंधन

ठूंठ कलम-बंधन का उपयोग उन परिस्थितियों में करते हैं जब पौधों में मोटी शाखाएं (4-6 सेमी.) हों और उन्हें काशा या जिह्वा कलम-बंधन से प्रवर्धित करना मुश्किल हो। ऐसी शाखाओं को लगभग 20-30° झुकाते हुए चाकू से 2 से 3 सेमी. तिरछा व गहरा चीरा इस प्रकार बनाया जाता है ताकि इसे झुकाने पर यह खुल जाए व दबाव हटाने पर यह बंद हो जाए। सांकुर हेतु 8-10 सेमी. लंबी व पेंसिल जैसी मोटी शाखाएं ली जाती हैं। शाखा के आधार पर 2-2.5 सेमी. तिरछा एवं साफ चीरा दिया जाता है। तैयार किए गए सांकुर को मूलवृंत की शाखा को झुकाकर प्रत्यारोपित करके पॉलिथीन की पट्टी से कसकर बांध देते हैं। पार्श्व जिह्वा कलम-बंधन सदैव हरे रहने वाले पौधों के प्रवर्धन हेतु प्रयोग करते हैं। मूलवृंत हेतु प्रयुक्त पौधों के आधार चिकने होने चाहिए और सांकुर डाल, मूलवृंत से पतली होनी चाहिए। पार्श्व जिह्वा कलम-बंधन की प्रक्रिया जिह्वा कलम बंधन की ही तरह है, परंतु इसमें अंतर केवल इतना है कि प्रत्यारोपण के बाद कलमी मिलाप के सफल होने के बाद मूलवृंत के ऊपरी हिस्से को धीरे-धीरे काट देते हैं।

10. सेतु कलम-बंधन

यह विधि पुनरुद्धार कलम-बंधन का एक प्रारूप है तथा उन दशाओं में लाभदायक रहती है जब फलवृक्षों का मूलतंत्र स्वस्थ हो परंतु तना किन्हीं कारणों से क्षतिग्रस्त हो गया हो। इस विधि में सर्वप्रथम पौधे के क्षतिग्रस्त भाग को तेज चाकू से छीलकर साफ किया जाता है तथा स्वस्थ हिस्से के ऊपरी और निचले सिरे पर 2-3 सेमी. लंबाई खुली रखी जाती है। इस स्थान की लंबाई के अनुसार सांकुर शाख को लंबाई में काटकर इसके दोनों सिरों को नुकीला बनाते हुए मूलवृंत पर धनुषाकार स्वरूप में प्रत्यारोपित किया जाता है। सांकुर के दोनों सिरों को पतली कील से जड़ते हुए तुरंत पिघली मोम से अच्छी प्रकार सीलबंद कर दिया जाता है। सेतु कलम-बंधन हेतु बसंत ऋतु सबसे अच्छा समय होता

है। शीतोष्ण वर्गीय फलवृक्षों, जैसे सेब, नाशपाती, खुबानी, चेरी अखरोट, पीकननट आदि में सेतु कलम-बंधन द्वारा सुधार किया जा सकता है।

11. मृदुशाख कलम-बंधन

इस कलम-बंधन तकनीक में 3-5 माह पुरानी पहले से तैयार सांकुर को नन्हें से मूलवृंत पर प्रत्यारोपित किया जाता है। प्रांकुर कलम-बंधन की भांति जब मूलवृंत की ताम्रयुक्त पत्तियां हल्की पीली होने लगें तो उसी समय कलम कर देनी चाहिए (रेखाचित्र-22)। ध्यान रहे कि अच्छी सफलता हेतु मूलवृंत में कलम-बंधन के समय सभी पत्तियां लगी होनी चाहिए और सांकुर शाख एकत्रित करते समय शीर्ष कलिका में फुटाव न हो गया हो। यह विधि शुष्क, गर्म या उन क्षेत्रों में अधिक प्रभावी पाई गई है जहां वर्षा नाममात्र ही होती है। इसके अतिरिक्त पथरीली मिट्टी व शुष्क क्षेत्रों में स्वस्थाने बाग लगाने हेतु भी यह विधि अति उत्तम पाई गई है।

12. प्रांकुर (स्टोन) कलम-बंधन

इसे 'बीज पत्रोपरिक कलम-बंधन' के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में 7-10 दिन की कोपलों पर जिह्वा द्वारा परिपक्व अथवा प्रौढ सांकुर प्रत्यारोपित किया जाता है। चयनित शाखाओं की पत्तियां कलम-बंधन से 7-8 दिन पहले ही काट देनी चाहिए। प्रत्यारोपण के बाद मिलाप को 200 गेज की पॉलिथीन की पट्टी से बांध देना चाहिए। यह कलम-बंधन उच्च आर्द्रता वाले क्षेत्रों में अधिक प्रभावी पाया गया है। महाराष्ट्र व गोवा के कोंकण क्षेत्र में आम का व्यावसायिक प्रवर्धन इसी विधि द्वरा ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह विधि अखरोट में भी कारगार सिद्ध हुई है।

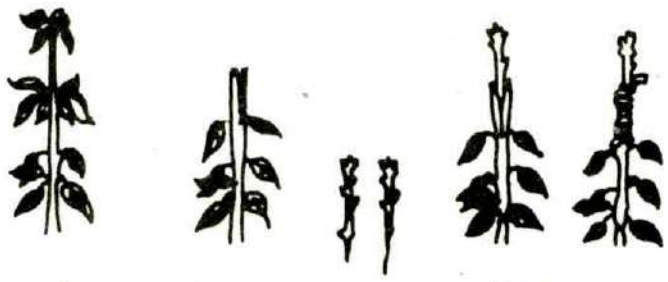

रेखाचित्र 22: मृदुशाख कलम-बंधन

13. चोटी कलम-बंधन

चोटी कलम-बंधन का प्रयोग मुख्यत: घटिया किस्म के पुराने बागों के जीर्णोद्धार हेतु किया जाता है। इस विधि के लिए पहले पुराने पेड़ों की गहरी काट-छांट की जाती है। काट-छांट के कुछ दिनों बाद कटे सिरों पर नए प्ररोह तैयार होते हैं। क्योंकि प्ररोह अधिकाधिक संख्या में तैयार हो सकते हैं, अत: उनमें से कुछ एक को ही कलम-बंधन हेतु रखें व अन्य को हटा दें। जब ये प्ररोह 10-15 सेमी. मोटे हो जाएं तो उन पर मनचाही किस्म के सांकुर का प्रत्यारोपण कर दें। प्रत्यारोपण हेतु विनियर, काशा, जिह्वा आदि में से कोई एक विधि प्रयोग में लाई जा सकती है। हमारे देश में आम व काजू के बागों का जीर्णोद्धार मुख्यत: चोटी कलम-बंधन द्वारा ही किया जाता है। अन्य देशों में शीतोष्ण फलों के बागों का जीर्णोद्धार भी इसी विधि द्वारा किया जाता है। जीर्णोद्धार हेतु बसंत ऋतु सबसे उपयुक्त पाई गई है।

14. दोहरी कलम-बंधन

इस विधि को 'कलम पर कलम-बंधन' के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में पहले से ही प्रयुक्त मूलवृंत व सांकुर के बीच एक मध्यस्थ मूलवृंत का रोपण किया जाता है। अत: पहला मिलाप मुख्य मूलवृंत तथा मध्यस्थ मूलवृंत के बीच, व दूसरा मिलाप मध्यस्थ मूलवृंत व सांकुर के बीच होता है। दोहरी कलम-बंधन की प्रक्रिया मुख्यत: मूलवृंत व सांकुर में असंगतता को समाप्त या कम करने के लिए की जाती है। उदाहरणत: नाशपाती की 'बार्टलेट' किस्म को बौना रूप देने हेतु 'क्विंस' मूलवृंत पर प्रत्यारोपित करते हैं, परंतु दोनों में असंगतता होने के कारण ऐसे मिलाप सफल नहीं हो पाते हैं। ऐसी अवस्था में मध्यस्थ मूलवृंत 'ओल्ड होम' का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्रवर्धित पौधे 3 वर्षों में फल देना शुरू कर देते हैं एवं वे दीर्घजीवी भी होते हैं।

15. सूक्ष्म कलम-बंधन

पौधे के सूक्ष्म भागों के निर्जर्मित वातावरण की नियंत्रित दशाओं में की गई कलम-बंधन को 'सूक्ष्म कलम-बंधन' कहते हैं। इस विधि का प्रयोग मुख्यत: नींबूवर्गीय फलों, सेब व अलूचे में किया गया है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य बहुवर्षीय पौधों के विषाणुरहित पौधे तैयार करना होता है। इस विधि में मूलवृंत के बीज से भ्रूण निकाल कर उन्हें निर्जर्मित कर एक प्रतिशत वाले अगार (Agar) माध्यम में डालते हैं। ये भ्रूण उचित वातावरण मिलने पर 2 माह में अंकुरित हो जाते हैं। उगने के बाद इन्हें तेज ब्लेड से 1 से 1.5 सेमी. लंबा काट लेते हैं जिन पर पहले से तैयार की हुई 0.14-0.18 मिमी. लंबी

शीर्ष कलमें मूलवृंत पर बने 'टी' आकार के चीरे में प्रत्यारोपित कर दी जाती हैं। कलम-बंधित पौधों को नियंत्रित वातावरण की दशाओं में पानी वाले माध्यम में रखा जाता है। इन पौधों को सहारा देने हेतु फिल्टर पेपर में छिद्र बनाकर एक सेतु का निर्माण किया जाता है। 3-5 सप्ताह में इनमें पत्तियां आना शुरू हो जाती हैं। जब इनमें अच्छा जड़तंत्र विकसित हो जाए तो इनका कठोरीकरण करने हेतु थोड़े से अधिक तापमान वाले चैंबर (इन्क्युवेशन चैंबर) में रखा जाता है। तदुपरांत इन्हें प्लास्टिक की थैलियों या पौधशाला में रोपित कर देते हैं।

❐

अध्याय-32

विशेष कायिक भागों द्वारा प्रवर्धन

कुछ पौधों में विशेष वानस्पतिक भागों (अंगों) का निर्माण होता है जिन्हें कायिक प्रवर्धन हेतु प्रयोग में लाया जाता है। ये भाग अक्सर पौधे के तने या जड़ के परिवर्तित रूप ही होते हैं। पौधों के प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले ऐसे भागों की संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित है:

कंद

कंद मुख्यत: भूमिगत तना होता है, जिसमें भोज्य सामग्री भंडारित होती है। कंद का प्रमुख उदाहरण आलू है। आलू का प्रवर्धन या तो साबुत आलू बोकर करते हैं या इसे कई टुकड़ों में काट लेते हैं। ऐसा माना जाता है कि ऐसे प्रत्येक टुकड़े में कम से कम एक कली (आंख) अवश्य होनी चाहिए। टुकड़े तेज एवं साफ चाकू से करने चाहिए तथा इनका भंडारण 20° सेल्सियस तापमान व 90 प्रतिशत आर्द्रता पर करना चाहिए। आलू की कई किस्मों में प्रसुप्ति भी पाई जाती है। अत: इसे बुआई से पहले थायोयूरिया या पोटैशियम नाइट्रेट से उपचारित अवश्य करें। आलू के अतिरिक्त डहेलिया (रेखाचित्र-23), जेरूसलम, आर्टीचोक एवं क्लैडियम का प्रवर्धन भी कंद से किया जाता है।

रेखाचित्र 23: डहेलिया की कंदीय जड़ें

शल्ककंद

शल्ककंद एक विचित्र प्रकार की संरचना होती है। ये मुख्यत: एक बीजपत्रीय पौधों द्वारा पैदा किए जाते हैं। शल्ककंद द्वारा प्याज, लहसुन, लिली, ट्यूबरोज, डेफोडिल एवं ट्यूलिप आदि पौधों का प्रवर्धन किया जाता है (रेखाचित्र-24)।

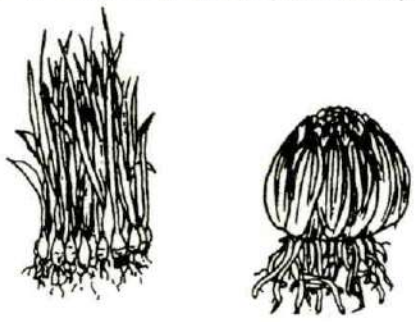

रेखाचित्र 24: (अ.) चाईव एवं (ब) लिली के शल्ककन्द

घनकंद

यह भी तने का एक परिवर्तित रूप है जिसके सिरे पर पत्तियों का झुंड व ढेरों कलिकाएं एवं आधार पर मोटी रेशेदार जड़ें होती हैं। ग्लैडियोलस, क्रोकस आदि पौधों का प्रवर्धन मुख्यत: घनकंद द्वारा होता है (रेखाचित्र-25)। मातृ घनकंद से प्रतिवर्ष 2-3 नए घनकंद व 15-20 घनकंदक तैयार होते हैं। इन्हें सर्दियों में बोया जाता है व वसंत में इनमें फूल आते हैं। घनकंद के पौधों को खेत में ही सूखने दिया जाता है व लगभग एक माह बाद नए घनकंद व घनकंदक को खोदकर निकाला जाता है।

घनकंद को या तो काटकर, या साबुत, पर्णीय कलमों या कलिका द्वारा प्रवर्धित करते हैं। घनकंद के टुकड़े काटते समय यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि प्रत्येक टुकड़े में एक आधारीय प्लेट व 3-4 स्केल अवश्य हों।

प्रकंद

यह विशेष प्रकार का भूमिगत तना होता है जो क्षैतिज दिशा में या तो भूमि की ऊपरी या भीतरी सतह से बढ़ता है। केला, प्रकंद का मुख्य उदाहरण है। प्रवर्धन हेतु प्रत्येक प्रकंद को छोटे-छोटे टुकड़ों में इस प्रकार काटा जाता है ताकि प्रत्येक हिस्से में कम से कम एक पार्श्व कलिका अवश्य हो।

रेखाचित्र 25: ग्लैडियोलस का घनकन्द

उपरिभूस्तारी

उपरिभूस्तारी एक विशेष प्रकार का तना है जो पर्णकक्ष के प्ररोह से उत्पन्न होकर क्षैतिज दिशा में भूमि पर बढ़ता रहता है। जिस स्थान पर इसका संपर्क मिट्टी से होता है वहीं पर जड़ें आ जाती हैं। नए पौधों में जड़ें आने के बाद उनका मातृ पौधे से अपने आप संपर्क टूट जाता है और ऐसे पौधे को आसानी से मातृ पौधे से अलग करके पौधशाला में लगाया जा सकता है। स्ट्राबेरी का प्रवर्धन मुख्यत: उपरिभूस्तारी द्वारा ही किया जाता है (रेखाचित्र-26)।

अंत:भूस्तारी

अंत: भूस्तारी वे पौधे होते हैं जो किसी मातृ पौधे के पार्श्व में भूमि में तैयार होते हैं, परंतु वे पौधे जो मातृ पौधे के आसपास भी उत्पन्न होते हैं उन्हें भी अंत:भूस्तारी ही कहा जाता है। पौधे की अंत: भूस्तारी पैदा करने की क्षमता भिन्न-भिन्न किस्मों, जातियों एवं प्रभेदों में भिन्न-भिन्न होती है। अंत: भूस्तारी मुख्यत: अनन्नास, केला, खजूर, चीकू व अलूचे में उत्पन्न होते हैं। अनन्नास के प्रवर्धन हेतु बहुत से क्षेत्रों में अंत:भूस्तारी ही मुख्यत: प्रयोग में लाए जाते हैं। केले में दो प्रकार के अंत: भूस्तारी पैदा होते हैं, एक जलांकुरी अंत:भूस्तारी व दूसरी तलवारी अंत:भूस्तारी। जलांकुरी भूस्तारी में चौड़े पत्ते होते हैं जबकि तलवारी भूस्तारी के पत्तों की चोटी नुकीली व आधार चौड़े होते हैं। प्रवर्धन

हेतु मुख्यत: तलवारी भूस्तारी ही प्रयोग में लाए जाते हैं। अंत:भूस्तारी को मातृ पौधे से अलग किया जाता है और फिर उन्हें मूलन हेतु पौधशाला या सीधे खेत में लगा दिया जाता है।

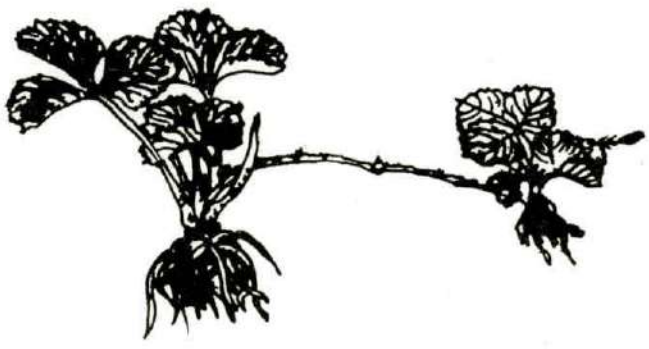

रेखाचित्र 26: स्ट्राबेरी में उपरिभूस्तारी उत्पादन

भूस्तारिका

कुछ पौधों के आधार पर विशेष प्रकार की शाखाएं स्वत: ही तैयार होती हैं जिन्हें भूस्तारिका कहा जाता है। इन शाखाओं को मातृ पौधे से अलग करके नए पौधे तैयार किए जाते हैं। भूस्तारिका द्वारा प्रवर्धन मुख्यत: अनन्नास व खजूर में किया जाता है। भूस्तारिका को मातृ पौधे से तेज चाकू द्वारा अलग किया जाता है व मूलन हेतु मिट्टी या किसी दूसरे माध्यम में लगाया जाता है। जब जड़ें अच्छी तरह से विकसित हो जाएं तो पौधों को पौधशाला या खेतों में लगाया जाता है।

प्ररोह

पौधे का जमीन से सटे हुए ऊपरी भाग, जहां से नई शाखाओं की उत्पत्ति हो, उसे 'प्ररोह' कहते हैं। स्ट्राबेरी व अनन्नास के पौधों में ही मुख्यत: प्ररोह पाए जाते हैं। फल की तुड़ाई के बाद या एक माह पहले इनको अलग करके मूलन हेतु उचित माध्यम में लगाया जाता है। अच्छे मूलन के बाद नए पौधों को उचित स्थान पर रोपित कर दिया जाता है।

❐

अध्याय-33

सूक्ष्म प्रवर्धन

पौधे के किसी सूक्ष्म भाग द्वारा उचित माध्यम में वातावरण की निर्जर्मित व नियंत्रित दशाओं में प्रवर्धन को 'सूक्ष्म प्रवर्धन' कहते हैं। सूक्ष्म प्रवर्धन के कई रूप हैं और वे सभी कोशिका की पूर्णशक्तता के सिद्धांत पर आधारित हैं। यह कोशिका का वह गुण है जिसमें उसमें एक समरूपता वाले पौधों का विकास करने की क्षमता होती है। जर्मन वैज्ञानिक हाबरलान्ट ने सर्वप्रथम 1902 में कोशिका के इस गुण का आख्यान किया था जो बाद में 'ऊतक संवर्धन' का आधार बना। विज्ञान व प्रौद्योगिकी में उन्नति के साथ-साथ सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीक का भी कई पौधों के प्रवर्धन हेतु मानकीकरण हुआ। आज के युग में यह तकनीक भी दिन प्रतिदिन निम्नलिखित कारणों से प्रचलित हो रही है:

1. इस तकनीक द्वारा थोड़े समय में ही लाखों की संख्या में पौधे तैयार करना संभव होता है।
2. सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा विषाणुरहित पौधों की प्राप्ति होती है।
3. क्योंकि वातावरण की दशाएं (जैसे तापमान, आर्द्रता आदि) नियंत्रित होती हैं, अत: इस तकनीक द्वारा साल भर पौधे तैयार किए जा सकते हैं।
4. एकलिंगाश्रयी पौधों (जैसे खजूर, पपीता आदि) में जहां मादा पौधों की अधिक आवश्यकता होती है, यह तकनीक बहुत ही लाभदायक है।
5. यह तकनीक उन फलवृक्षों हेतु (जैसे खजूर, पपीता व नारियल आदि) बहुत लाभदायक है जिन्हें अन्य कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित करना बहुत कठिन है।
6. इस तकनीक में कम स्थान की आवश्यकता होती है।
7. पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना काफी आसान होता है।
8. थोड़े से स्थान में असंख्य पौधों का निम्नतापी भंडारण संभव है।

ऊतक संवर्धन हेतु आधारभूत आवश्यकताएं

एक सफल सूक्ष्म प्रवर्धन के कार्यक्रम हेतु निम्नलिखित आधारभूत आवश्यकताएं होती हैं:

1. प्रयोगशाला
2. निर्जर्मित वातावरण
3. उपयुक्त पोषण माध्यम
4. वातावरण की नियंत्रित दशाएं

प्रयोगशाला

सूक्ष्म प्रवर्धन हेतु एक स्वच्छ एवं साफ-सुधरी प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है, जिसमें प्रवर्धन हेतु तरह-तरह के उपकरण व मशीनें लगी होनी चाहिए। प्रयोगशाला में काफी खुला स्थान हो जिसमें चिमटी, स्कैल्पल, नीडिल, प्लास्टिक ट्रे, ऑटोक्लेव, लेमिनार एअर-फ्लो हुड, तरह-तरह के बीकर, पिपेट, डिशें आदि होनी चाहिए। प्रयोगशाला में तापमान व प्रकाश के नियंत्रण हेतु थर्मोस्टेट व टाइमर लगे होने चाहिए तथा वातानुकूलन की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

निर्जर्मित वातावरण की दशाएं

प्रयोगशाला में उच्च दर्जे के निर्जर्मित वातावरण की आवश्यकता होती है। पौधे के जिस भाग से संवर्धन करना हो उसे विभिन्न निर्जर्मित रसायनों, जैसे मरक्युरिक क्लोराइड, हाइड्रोजन परॉक्साइड से उपचारित करना चाहिए। प्रवर्धन माध्यम एवं उपकरणों को भी प्रयोग से पहले 121 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 15 मिनट के लिए ऑटोक्लेव करना चाहिए। जिस पानी का प्रयोग किया जाता है उसे भी ऑटोक्लेव करना होता है। कहने का ताप्पर्य है कि संवर्धन प्रयोगशाला में प्रयोग की जाने वाली प्रत्येक वस्तु को ऑटोक्लेव करना चाहिए ताकि उनमें कोई जीवाणु न रहे। क्योंकि यदि किन्हीं कारणों से जीवाणु बच जाए तो वे बाद में बड़ी तेजी से वृद्धि करते हैं और फिर ऐसी दशा में उन्हें नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। प्रयोगशाला को प्रत्येक सप्ताह धूमित भी करना चाहिए।

पोषण माध्यम

सूक्ष्म प्रवर्धन में कोशिका एवं ऊतकों के पोषण की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उचित पोषण माध्यम की आवश्यकता होती है। अत: पोषण माध्यम में दोनों अकार्बनिक व कार्बनिक लवणों को विशेष मात्रा में मिलाया जाता है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने विभिन्न पोषक तत्वों माध्यमों का अनुमोदन किया है परंतु मुख्य तौर पर मुराशिगे व स्कूग माध्यम (1962), बी-5 मध्यम (गैम्बोर्ग एवं अन्य, 1968), वूडी प्लांट माध्यम, व्हाईट माध्यम (1963) व नित्च माध्यम (1956) के माध्यमों का प्रयोग ही व्यावसायिक स्तर पर हो

रहा है। प्राय: हर एक माध्यम प्रत्येक पौधे के प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त नहीं होता है, अत: तत्वों के अनुपात में अपनी सुविधानुसार फेर बदल किया जा सकता है।

माध्यम की तैयारी हेतु अकार्बनिक व कार्बनिक रसायनों को उचित मात्रा में तोलकर मिलाया जाता है। उन्हें दोहरे आसवन द्वारा प्राप्त निर्जर्मित पानी में घोलकर 90 से 100° सेल्सियस तापमान पर गर्म किया जाता है फिर उसमें पोषण माध्यम के अनुसार अगार डाला जाता है। गर्म करने के बाद माध्यम को फ्लास्कों या परखनलियों में डाला जाता है। फ्लास्कों व ट्यूबों को रूई से अच्छी तरह बंद करके ऐल्युमिनियम की पतली चादर परख नली से ढक कर 15 मिनट के लिए 121° सेल्सियस तापमान पर ऑटोक्लेव किया जाता है। ऑटोक्लेव से निकालने के बाद इस माध्यम को प्रयोगशाला में ठंडा होने के लिए रख दिया जाता है। इस माध्यम को 4-5 दिन बाद संवर्धन हेतु प्रयुक्त कर सकते है।

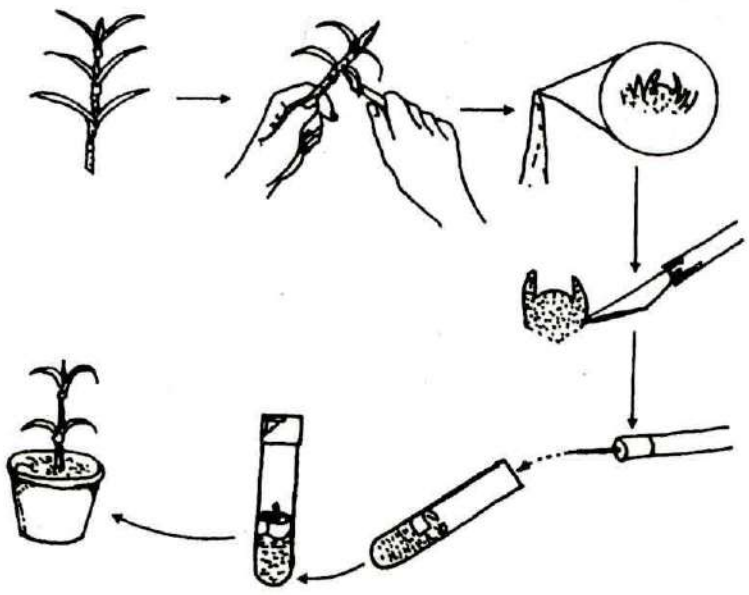

रेखाचित्र 27: विभाज्योतक शीर्ष ऊतक द्वारा संवर्धन

वातावरण की दशाएं

प्रयोगशाला में वातावरण की दशाएं, जैसे-तापमान, प्रकाश व आर्द्रता अनुकूल होनी चाहिए। अनुकूल दशाएं प्ररोह शुरू करने, उसकी वृद्धि, मूलन आदि क्रियाओं में सहायता

करती हैं। साधारणत: ऐसी प्रयोगशाला में 300-400 किलो लक्स प्रकाश की मात्रा होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रयोगशाला में 25 ± 2° सेल्सियस तापमान ही अनुकूल माना जाता है।

सूक्ष्म प्रवर्धन के प्रकार

प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त पौधे के भाग के आधार पर ही सूक्ष्म प्रवर्धन के विभिन्न नाम दिए गए हैं। साधारणत: यह विधि पौधे की विभिन्न दशाओं पर निर्भर करती है। अत: एक सूक्ष्म प्रवर्धन का तरीका जरूरी नहीं है कि यह सभी पौधों के प्रवर्धन हेतु उपयुक्त हो। प्रवर्धन की विधि कई दशाओं पर निर्भर करती है। मुख्यत: पौधों के सूक्ष्म प्रवर्धन हेतु भ्रूण संवर्धन, बीजांडाशय एवं बीजाणु संवर्धन, तना शीर्ष संवर्धन, विभज्योतक शीर्ष संवर्धन (रेखाचित्र-27), ऊतक संवर्धन, कैलस संवर्धन आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इन तकनीकों का प्रयोग ब्लैकबेरी, स्ट्राबेरी, अंगूर, अनन्नास, केला, पपीता आदि फलवृक्षों के सूक्ष्म प्रवर्धन हेतु व्यावसायिक स्तर पर किया गया है।

सूक्ष्म प्रवर्धन की सीमाएं

सूक्ष्म प्रवर्धन से संवधित कुछ समस्याएं हैं जिस कारण यह तकनीक आम लोगों की पहुंच से बाहर हैं, जैसे

1. सूक्ष्म प्रवर्धन हेतु आधुनिक प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है, जिसे बनाने हेतु अधिक खर्च करना पड़ता है।
2. सूक्ष्म प्रवर्धन हेतु तकनीकी ज्ञान व विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है।
3. सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा तैयार पौधों में कई बार विविधता आ जाती है।
4. कुछ फलवृक्षों (जैसे आम, नारियल, खजूर आदि) के ऊतकों को एक बार काट देने पर वे भारी मात्रा में पॉलिफीनोल छोड़ते हैं जिससे उनका सूक्ष्म संवर्धन संभव नहीं हो पाया है, जबकि ऐसे वृक्षों का सूक्ष्म प्रवर्धन सबसे आवश्यक है।
5. प्रयोगशाला में तैयार किए गए पौधे अति नाजुक होते हैं, अत: खेतों में लगाने पर अधिकतर मर जाते हैं।

अत: उपरोक्त तथ्यों से पता चलता है कि सूक्ष्म प्रवर्धन अब समय की मांग तो है, परंतु इस तकनीक की विभिन्न विधियों के मानकीकरण हेतु अधिक शोध की भी आवश्यकता है ताकि इसे व्यावसायिक स्तर पर अपनाया जा सके।

❐

अध्याय-34

फलवृक्षों के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां

हमारे देश में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर 78 विभिन्न प्रकार के फल उगाए जाते हैं। इन्हें बीज या कायिक प्रवर्धन की विभिन्न विधियों द्वारा प्रवर्धित करते हैं। जैसा पहले भी बताया जा चुका है कि कायिक प्रवर्धन द्वारा तैयार पोधे आयुवंशिक रूप से मातृ पौधों जैसे होते हैं जबकि बीज द्वारा तैयार पौधों में भिन्नता पाई जाती है। अधिकतर फल पर-परागित होते हैं जो भिन्नता का कारण बनता है। प्रर्वधन की कायिक विधियों में मुख्यत: कलिकायन, कलम-बंधन, दाबा, कलम एवं विशेष कायिक भागों द्वारा प्रवर्धन आदि की विधियां आती हैं। इन प्रमुख विधियों को मानकीकरण के आधार पर कई उपविधियों मे वर्गीकृत किया गया है। प्रवर्धन की कोई विधि किसी फल-विशेष के लिए बहुत उपयुक्त हो सकती है परंतु दूसरे फल के लिए अनुपयुक्त। ठीक इसी प्रकार एक प्रवर्धन विधि किसी फल-विशेष के लिए किसी स्थान-विशेष में उपयुक्त हो सकती है परंतु किसी दूसरे स्थान पर उसी फल के लिए प्रवर्धन की दूसरी विधि उपयुक्त हो सकती है। उदाहरणत: उत्तरी भारत में आम के प्रवर्धन हेतु मुख्यत: विनियर कलम-बंधन विधि अति उत्तम पाई गई है। मध्य एवं पश्चिमी भारत में मृदु शाख कलम-बंधन का प्रयोग व्यावसायिक स्तर पर हो रहा है परंतु कोकण क्षेत्र (महाराष्ट्र एवं गोवा) में प्रांकुर (स्टोन) कलम-बंधन विधि ही अधिक सफलता देती है और आम के प्रवर्धन हेतु मुख्यत: प्रयोग की जाती है।

यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने फल-विशेष के लिए एवं स्थान-विशेष की जलवायु की दशाओं को ध्यान में रखते हुए अपने शोधकार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रवर्धन विधियों का मानकीकरण किया है। इस अध्याय में भारत में उगाए जाने वाले फलों के प्रवर्धन की मुख्य विधियों की जानकारी दी गई है।

अ. शीतोष्ण कटिबंधीय फल

सेब

सेब का प्रवर्धन मुख्यत: जिह्वा कलम-बंधन और 'टी' कलिकायन द्वारा किया

जाता है। कलम-बंधन की प्रक्रिया फरवरी-मार्च में की जाती है। 'टी' कलिकायन द्वारा प्रवर्धन का उचित समय सितंबर होता है। मूलवृंत के लिए अभी तक व्यावसायिक स्तर पर मिश्रित किस्मों के बीज का उपयोग किया जाता है। परंतु परिपक्व फलों से ही बीज एकत्रित करना चाहिए। फल से निकाले गए बीज को अच्छी तरह धोकर व सुखाकर भंडारित किया जाना चाहिए। बीज की बोआई तैयार क्यारियों में नवंबर में या स्तरित बीजों की बोआई फरवरी में करनी चाहिए। कश्मीर में स्थानीय जंगली सेब के पौधे बहुतायत से पाए जाते हैं जिनका उपयोग मूलवृंत के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार हिताचल प्रदेश और उत्तराखंड में 'परेऊ' के पौधे नालों के आसपास बहुतायत से पाए जाते हैं। ये पौधे नमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयोगी मूलवृंत हो सकते हैं। इसके साथ ये मूलवृंत रूइया कीट और जड़ व तना सड़न रोग के प्रति अवरोधी हैं।

बीजू पौधों को मूलवृंत के रूप में प्रयोग करने के कारण ही विविधता रहती है। अत: विदेशों में अंसगजनित जातियों का प्रयोग भी मूलवृंत के रूप में हो रहा है। इनसे विषाणुमुक्त समरूप पौधे प्राप्त होते हैं। जापान में *मैलस प्रूनिफोलिया* के बीजू पौधों का उपयोग व्यावसायिक स्तर पर मूलवृंत हेतु किया जा रहा है।

सेब की प्रत्यारोपित किस्मों में वृद्धि नियंत्रण, कीट और रोग की अवरोधता के लिए मानक मूलवृंतों का चयन और प्रयोग काफी पहले से किया जा रहा है। वृद्धि नियंत्रण के आधार पर इन मूलवृंतों का वर्गीकरण निम्नलिखित है:

1. अति बौना मूलवृंत: एम - 27
2. बौना मूलवृंत: एम - 8, 9
3. अर्ध बौना मूलवृंत: एम - 7, 26 और एम.एम - 106
4. प्रबल मूलवृंत: एम - 11, एम - 13, एम.एम. - 104, 111
5. अति प्रबल मूलवृंत: एम - 16, 25ए, एम.एम - 109

इन मूलवृंतों के प्रवर्धन हेतु मुख्यत: सख्त काष्ठ कलम, खाई दाबा एवं स्टूलिंग का प्रयोग होता है। ऊपरलिखित मूलवृंतों का उपयोग संसार-भर में हो रहा है, परंतु हमारे देश में ये मूलवृंत सफल नहीं हो पाए हैं। अब तक किए शोधकार्यों से पता चलता है कि हिमाचल प्रदेश में एम.एम-106 एवं एम.एम-109 मूलवृंत अपेक्षाकृत अच्छे पाए गए हैं।

नाशपाती

नाशपाती का व्यावसायिक प्रवर्धन जिह्वा कलम-बंधन, 'टी' कलिकायन और सख्त काष्ठ कलम द्वारा किया जाता है। कलम-बंधन का उचित समय फरवरी-मार्च, कलिकायन का अगस्त-सितंबर और कलम रोपण नवंबर-दिसंबर या फरवरी में करना चाहिए। नाशपाती की कुछ किस्में जैसे गोला, पत्थरनाख, कीफर, लीकोन्टे आदि का प्रवर्धन कलम द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता है। उचित आकार की कलमें बनाकर 100-100 पीपीएम इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित के पश्चात् मूलन माध्यम में रोपण करने से अच्छी जड़ें निकलती हैं। शीतोष्ण क्षेत्रों में, जहां भूमि का तापमान कम हो जाता है, कलमों को गर्म क्यारियों (21+2°से.) में 3-4 सप्ताह तक भंडारण करने के पश्चात् रोपण करने से मूलन क्रिया में काफी बढ़ोतरी होती है।

कलम-बंधन और कलिकायन हेतु 'मेहल' या 'कैंथ' और 'शिहारा' आदि बीजू पौधे मूलवृंत के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इन मूलवृंतों में विशेषकर 'मेहल' पर प्रत्यारोपित नाशपाती के पौधे दीर्घायु और सूखे के प्रति सहिष्णु होते हैं। सितंबर-अक्टूबर में पके फलों को सड़ाकर बीज एकत्रित किया जाता है, जिन्हें नवंबर में तैयार क्यारियों में या 40-45 दिनों तक नम बालू में स्तरण के पश्चात् बो दिया जाता है। मूलवृंत हेतु 'मेहल' एवं 'शिहारा' को स्टूलिंग द्वारा सफलतापूर्वक प्रवर्धित किया जाता है।

आड़ू

आड़ू का व्यावसायिक प्रवर्धन 'टी' कलिकायन और जिह्वा कलम-बंधन द्वारा किया जाता है। 'टी' कलिकायन हेतु मई-जून या सितंबर और कलम-बंधन हेतु जनवरी-फरवरी के माह उचित रहते हैं। व्यावसायिक स्तर पर शीतोष्ण क्षेत्रों में देशी आड़ू के 9-12 माह के पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। कहीं-कहीं देशी खुबानी के बीजू पौधे भी मूलवंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इन पर प्रारंभ में कालिकायन करने पर अच्छी सफलता मिल जाती है, परंतु कुछ आड़ू की किस्मों के साथ विलंबित असंगतता पाई जाती है। कंकरीली और सूखी भूमि में देशी बादाम के पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं। भारी भूमि में अलूचे के बीजू पौधे ठीक रहते हैं। आड़ू के बगीचों में सूत्रकृमि के संक्रमण की भी संभावनाएं रहती हैं। ऐसी अवस्था में सूत्रकृमि अवरोधी 'निमागार्ड', जी. एफ-557 आदि को मूलवृंत के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। देशी आड़ू के फल अगस्त-सितंबर में परिपक्व होते हैं। इन्हें सड़ाकर निकाले गए बीज को नवंबर अथवा 100-120 दिन तक स्तरण के बाद फरवरी में तैयार क्यारियों में बोआई की जाती है। मैदानी क्षेत्रों में जहां स्तरण स्वत: पूर्ण नहीं होता, वहां बोआई से पहले बीज

वर्षों बाद प्रारंभ होती है तथा परपरागण के कारण इनमें व्यापक विविधता पाई जाती है। बीज की बोआई तैयार क्यारियों में अक्टूबर-नवंबर अथवा 100-120 दिनों तक स्तरण के बाद फरवरी में की जानी चाहिए। बीजों को बोने के पहले 24 घंटे तक 100 पीपीएम, इथरेल से उपचारित करके बोने से अच्छा अंकुरण होता है। अगले वर्ष नवंबर में गहरी खुदाई करके सावधानीपूर्वक पौधे निकालने चाहिए। मूसला जड़ों के कटने से पौधों की स्थापना की समस्या रहती है।

कायिक विधियों में स्टूलिंग द्वारा भी अखरोट का सफलतापूर्वक प्रवर्धन संभव है। स्टूलिंग में 3-4 माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर, 5,000 पीपीएम इंडोल ब्युटीरिक अम्ल का लेप लगाकर मिट्टी से ढकने से शत प्रतिशत शाखाओं में रेशेदार जड़ें आती हैं।

हिमाचल प्रदेश में कलम-बंधन द्वारा अखरोट के प्रवर्धन का प्रयास किया गया है। कलम-बंधन का उचित समय फरवरी और मार्च का प्रथम पखवाड़ा होता है। पैबंदी कलिकायन द्वारा भी अखरोट का प्रवर्धन किया जा सकता है। कलिकायन का कार्य जून-जुलाई में किया जाना चाहिए। मूलवृंत हेतु कठिया अखरोट के बीजू पौधे प्रयोग किए जाते हैं। इनके वृक्ष आकार में बड़े होते हैं। इसके अतिरिक्त जापानी अखरोट का उपयोग भी मूलवृंत के रूप में किया जाता है।

पीकननट

इसका व्यावसायिक प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है, परंतु कायिक विधियाँ विशेषकर पैबंदी कलिकायन भी सफल सिद्ध हुई हैं। बीजू पौधों में लंबी किशोरावस्था और व्यापक विविधता होने के कारण मूलवृंत हेतु ही इनका प्रयोग किया जाना चाहिए। अखरोट की भाँति इसमें भी कलिकायन द्वारा अच्छी सफलता मिलती है। यह कार्य जुलाई में किया जाना चाहिए।

कलिकायन के अतिरिक्त व्हिप या जिह्वा कलम-बंधन द्वारा भी पीकन नट का प्रवर्धन किया जाता है। कलम-बंधन का उचित समय फरवरी-मार्च होता है। मूलवृंत हेतु पीकननट के बीजू पौधे प्रयोग किए जाते हैं।

चेस्टनट

चेस्टनट का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि

इसके बीजू पौधों में लंबी किशोरावस्था तथा विविधता पाई जाती है। सितंबर-अक्टूबर में एकत्रित की गई गिरी को यथाशीघ्र बो देना चाहिए। सामान्य तापक्रम पर इनका भंडारण करने पर इनका अंकुरण क्षमता में ह्रास होने लगता है। यदि किन्हीं कारणों से तुरंत बोआई संभव न हो पाए तो गिरी को किसी कवकनाशी से उपचार के पश्चात् मॉस घास में 2-3 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। पूर्ण विकसित गिरी को नम बालू की तहों में रखकर 2-3 माह तक ठंड स्थानों में स्तरण पश्चात् बोने पर अच्छे अंकुरण की संभावना रहती है।

शोधकार्यों से पता चला है कि इसे स्टूलिंग, कलम-बंधन और कलिकायन द्वारा प्रवर्धित कर सकते हैं। 3-4 माह आयु की शाखाओं के आधार पर तार बांधने तथा 2.0-2.5 सेमी. लंबाई में चीरा लगाकर 2,000 पीपीएम इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाकर नम मिट्टी से ढकने पर शतप्रतिशत शाखाओं में मूलन हो जाता है। मूलित शाखाओं को मातृ पौधे से सावधानीपूर्वक अलग करके सितंबर-अक्टूबर में पौधशाला या खेतों में रोपण करना चाहिए।

जिह्वा और काशा कलम-बंधन व चिप्पी और पैबंदी कलिकायन द्वारा भी चेस्टनट का प्रवर्धन किया जा सकता है। मूलवृंत के लिए एक वर्ष आयु के बीजु या स्टूलिंग द्वारा तैयार पौधे उपयोग में लाए जा सकते हैं। कलम-बंधन का उपयुक्त समय मार्च का प्रथम पखवाड़ा तथा कलिकायन हेतु अगस्त-सितंबर का समय उचित रहता है। कलम-बंधन हेतु पूर्व भंडारित और कलिकायन हेतु तुरंत काटी गई शाखाओं का प्रयोग उत्तम होता है।

हेजलनट

हेजलनट का प्रवर्धन बीज, गूटी, कलम-बंधन तथा कलिकायन की विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। 6-9 माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर 1,000 पीपीएम इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाकर मॉस घास से बांधने पर शतप्रतिशत शाखाओं में मूलन होता है। इसी प्रकार पुराने फलदायक पौधों में कॉलर के पास विकसित भूस्तारी शाखाओं में गूटी द्वारा भी पौधे तैयार किए जा सकते हैं। व्यावसायिक किस्मों का प्रवर्धन स्टूलिंग द्वारा किया जाता है।

जिह्वा कलम-बंधन और पैबंदी कलिकायन द्वारा भी हेजलनट को सफलतापूर्वक प्रवर्धित किया जा सकता है। कलम-बंधन हेतु मार्च का प्रथम पखवाड़ा और कलिकायन हेतु मध्य अगस्त का समय उचित पाया गया है। कलिकायन हेतु तुरंत काटी गई सांकुर डाल तथा कलम-बंधन हेतु पूर्व-भंडारित सांकुर के प्रयोग की सिफारिश की गई है।

मूलवृंत के लिए जंगलों में पाए जाने वाले कप्रासी या भोटिया बादाम के बीजू पौधे प्रयोग किए जा सकते हैं। इनके बीजों को अक्टूबर से नवंबर में एकत्रित करके तुरंत तैयार क्यारियों या 60-75 दिनों तक नम बालू में स्तरण के बाद फरवरी-मार्च में बोआई करने पर अच्छा अंकुरण हो जाता है। मूलवृंत का प्रवर्धन स्टूलिंग द्वारा भी किया जाता है।

कीवी फल

कीवी फल का पौधा एकलिंगाश्रयी होता है, अत: बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर नर और मादा दोनों प्रकार के पौधे उत्पन्न होते हैं, जिनकी पहचान 7-8 वर्ष बाद पुष्प आने के पश्चात् ही संभव है। यही कारण है कि व्यावसायिक स्तर पर बीज द्वारा प्रवर्धन करने की सिफारिश नहीं की जाती है। यदि किसी विशेष आवश्यकता हेतु बीज द्वारा प्रवर्धन किया जाना हो तो पके फलों से एकत्रित बीज को सुखाकर 5^0 सेल्सियस तापमान पर भंडारित किया जाना चाहिए। बोआई के पहले तीन सप्ताह तक दिन में 20^0 सेल्सियस तापमान तथा रात में 10^0 सेल्सियस तापमान पर रखने के पश्चात् बोने से अच्छा अंकुरण होता है।

कायिक विधियों में मृदु शाख कलम और जिह्वा कलम-बंधन एवं 'टी' कलकायन द्वारा प्रवर्धन संभव है। कलम के लिए हरी शाखाएं पौधे के शीर्ष भाग से एकत्रित करके 0.8 प्रतिशत इंडोल ब्यूटारिक अम्ल और केप्टॉन से उपचारित करके कुहासे घर में रोपण करने की सिफारिश की गई है। जिह्वा कलम-बंधन, जनवरी-फरवरी और 'टी' कलिकायन, मई-जून में करने से अच्छी सफलता मिल सकती है।

स्ट्राबेरी

स्ट्राबेरी का व्यावसायिक स्तर पर प्रवर्धन उपरिभूस्तारी द्वारा किया जाता है। मुख्य पौधे से अनेक उपरिभूस्तारी निकलते रहते हैं। इन्हीं के भूमि के संपर्क में आने पर गाठों से मूलन हो जाता है। इस प्रकार स्वत: नए पौधे तैयार होते रहते हैं। अधिक संख्या में पौधे प्राप्त करने हेतु उचित होगा कि प्रत्येक किस्म के कुछ पौधे अलग क्यारी में लगा दिए जाएं। इनमें पुष्प खिलने के पहले ही उन्हें निकाल देने से अच्छी वानस्पतिक वृद्धि होती है जिससे अगले वर्ष रोपण हेतु अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पौधे उपलब्ध हो जाते हैं। मैदानी क्षेत्रों में नए पौधों को गर्मी और बरसात में सुरक्षित रखना भी एक समस्या होती है। अत: उपरिभूस्तारी मई-जून में निकालकर शीत गृह में 1-3^0 सेल्सियस तापमान पर भंडारित करके अक्टूबर में उनका खेत में रोपण कर सकते हैं। परंतु इनका रोपण करने

3. स्वस्थाने बाग लगाना आसान होता है।1

4. यह एक आसान व कम खर्चीली विधि है।

दक्षिणी एवं पश्चिम भारत में आम के प्रवर्धन हेतु मृदु शाख काष्ठ कलम-बंधन विधि का प्रयोग स्वस्थाने बाग लगाने हेतु व्यावसायिक स्तर पर हो रहा है। इस विधि में सांकुर शाख की तैयारी विनियर कलम की भाँति करनी पड़ती है। चट्टानी और सूखे क्षेत्रों में कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित पौधों के स्थापन की समस्या होती है। ऐसी अवस्था में रेखांकन के अनुसार प्रत्येक गढ्ढे में 2-3 गुठली बो कर एक वर्ष पश्चात् चयनित स्वस्थ पौधे पर मृदु शाख कलम-बंधन द्वारा स्वस्थाने प्रवर्धन करके अच्छे उद्यान की स्थापना की जा सकती है। सांकुर का प्रत्यारोपण जिह्वा या काशा कलम-बंधन द्वारा किसी भी विधि द्वारा किया जा सकता है।

प्रवर्धन की ऊपर चर्चित विधियों में 2-3 वर्ष का समय लग जाता है। परंतु प्रांकुर कलम-बंधन द्वारा एक ही वर्ष में रोपण-योग्य पौधे तैयार हो जाते हैं। आम में इस विधि का मानकीकरण महाराष्ट्र में किया गया है। इस विधि में 2-3 सप्ताह आयु के अमोले को गुठली के साथ पॉलिथीन की थैलियों में स्थानांतरित करके सांकुर का प्रत्यारोपण जिह्वा या काशा विधि द्वारा करके उसका रोपण विशेष प्रकार के बनाए गए पॉलिथीन घर में करके कुहासे की भाँति पानी का छिड़काव करते रहने से अच्छी सफलता मिलती है।

आम के पुराने, कम फलोत्पादक, निम्न कोटि के फल वाले (देशी), वृक्षों का जीर्णोद्धार चोटी कलम-बंधन द्वारा किया जाता है। भारत में व्यावसायिक स्तर पर इस विधि द्वारा बीजू बागों का जीर्णोद्धार किया गया है। इसमें पुराने फल-वृक्षों की गहरी छंटाई दिसंबर-जनवरी में करके जून-जुलाई में नई विकसित शाखाओं में विनियर कलम-बंधन द्वारा चयनित किस्मों का प्रत्यारोपण किया जाता है।

आम में फलवृक्ष का आकार सीमित रखने और शीघ्र फलत हेतु दोहरी कलम-बंधन द्वारा भी प्रवर्धन के प्रयास किए गए हैं। एक प्रयास में मूलवृंत और मध्यस्थ मूलवृंत में भेंट कलम-बंधन और मध्यस्थ मूलवृंत एवं सांकुर में हरित शाख कलम-बंधन द्वारा प्रत्यारोपण करने पर मात्र तीन माह में दोहरे कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धन करने का अनुमोदन किया गया है।

अभी तक व्यावसायिक स्तर पर देशी या काश्त की जाने वाली आम की किस्मों के बीजू पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। संभवत: यही कारण है कि मुख्य

किस्मों का कायिक प्रवर्धन करने पर भी फलवृक्षों की वानस्पतिक वृद्धि, फलत तथा फलों के गुण में समानता नहीं होती है।

केला

खाने और सब्जी वाली किस्मों का व्यावसायिक प्रवर्धन कायिक विधियों द्वारा किया जाता है। केले के अभासी तने में एक बार फलत हो जाने पर वह नष्ट हो जाता है और उसकी बगल से नए पौधे उत्पन्न होते हैं। केले का भूमिगत प्रकंद क्षैतिज दिशा में वृद्धि करता रहता है और इसी पर आयु के अनुसार घनकंद विद्यमान होते हैं। इन्हीं घनकंदों का प्रयोग प्रवर्धन हेतु करते हैं। मातृ पौधे से तलवारनुमा अंत:भूस्तारी और जलांकुरी अंत:भूस्तारी पैदा होते हैं। तलवारनुमा अंत:भूस्तारी का घनकंद अपेक्षाकृत आकार में बड़ा, आभासी तना बेलनाकार और पत्तियाँ पतली, व तलवारनुमा नुकीली होती हैं। जलांकुरी अंत: भूस्तारी का घनकंद छोटा, पतला और चौड़ी पत्तियों युक्त होता है। मातृ पौधे से प्रारंभ में तलवारनुमा और फलत के बाद आभासी तने को काटने के पश्चात् सामान्यत: जलांकुरी अंत: भूस्तारी अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। कमजोर एवं चोट खाए प्रकंद से भी जलांकुरी अंत: भूस्तारी उत्पन्न होते हैं।

व्यावसायिक प्रवर्धन हेतु मुख्यत: तलवारनुमा अंत:भूस्तारी का प्रयोग किया जाता है। इनको मातृ पौधे से तेज औजार से सावधानीपूर्वक अलग किया जाना चाहिए। रोपण किए जाने वाले अंत:भूस्तारी के आभासी तने को लगभग 25-30 सेमी. छोड़ते हुए शेष भाग को काट देना चाहिए। इससे वाष्पोत्सर्जन कम होने के कारण अच्छे स्थापन की संभावना होती है। रोपण से पहले इन्हें 0.2 प्रतिशत डाइफोलटान से उपचारित करके एक सप्ताह तक धूप में सूखाकर ही रोपण करें। रोपण के लिए 3-4 माह के अंत: भूस्तारी का प्रयोग करना चाहिए। परंतु यदि रोपण मई-जून में करना हो तो इनकी आयु का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

कभी-कभी प्रकंद के टुकड़ों का प्रयोग भी प्रवर्धन हेतु किया जाता है। आजकल हमारे देश में केले की सघन काश्त की जा रही है। अत: रोपण हेतु अधिक संख्या में पौधों की आवश्यकता पड़ती है। घनकंद को साफ करके ऊपरी भाग में हल्का घाव बनाते हुए इसे नम बालू या वर्मीक्यूलाइट में भंडारित कर दिया जाता है। कुछ ही समय में इनसे अपस्थानिक शाखाएं पैदा होती है। इनको सावधानीपूर्वक अलग करके मूलन कराकर नए पौधे तैयार किए जा सकते हैं। इस प्रकार एक घनकंद से 5-7 माह में लगभग 150 पौधे तैयार हो जाते हैं। हमारे देश के दक्षिणी क्षेत्रों में अब ऊतक प्रवर्धन द्वारा तैयार पौधों का प्रयोग व्यावसायिक स्तर पर हो रहा है। ऐसे पौधे रोगमुक्त होते हैं एवं वे एक समान वृद्धि करते हैं।

के पहले इन्हें एक सप्ताह तक सुखाकर एवं 0.3 प्रतिशत डाइथेन जेड-78 से उपचारित करने के बाद ही रोपण करना चाहिए।

हमारे देश में अनन्नास की सघन बागवानी भी की जाती है। ऐसी बागवानी में रोपण हेतु अत्यधिक संख्या में पौधों की आवश्यकता पड़ती है। अत: ऊतक संवर्धन द्वारा इसके प्रवर्धन का मानकीकरण किया गया है, परंतु अभी तक यह विधि व्यावसायिक स्तर पर नहीं अपनाई जा रही है।

शरीफा

शरीफे का प्रवर्धन बीज, कलम-बंधन और कलिकायन की विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। शरीफे के बीजों में भंडारण क्षमता अच्छी होने के कारण इन्हें 3-5 दिनों तक पानी में भिगोने या छंदन करने से अंकुरण शीघ्र होता है। क्योंकि बीजू पौधों में फल निम्नकोटि के आते हैं, अत: इनका व्यावसायिक उपयोग मूलवृंत के रूप में ही किया जाना चाहिए।

कलम-बंधन की विभिन्न विधियों में भेंट कलम-बंधन से शत प्रतिशत और पार्श्व कलम-बंधन से 70 से 80 प्रतिशत के लगभग सफलता मिलती है। भेंट कलम-बंधन का उचित समय जुलाई-अगस्त होता है। आजकल विनियर कलम-बंधन द्वारा भी शरीफे का प्रर्वधन किया जाता है।

कलिकायन की विभिन्न विधियों में 'टी' कलिकायन सबसे उपयुक्त पाई गई है। दक्षिण भारत में 'टी' कलिकायन का उचित समय जनवरी-मार्च और जून पाया गया है। हालांकि स्टूलिंग द्वारा भी शरीफे का प्रवर्धन संभव है, परंतु यह विधि अभी प्रचलित नहीं हो पाई है।

मूलवृंत के लिए शरीफा, रामफल या एटीमोया के बीजू पौधे प्रयोग किए जाते हैं। आंध्र प्रदेश में एटीमोया को मूलवंत के रूप में प्रयोग करने की सिफारिश की गई है। परंतु नीलगिरि में रामफल के बीजू पौधे मूलवृंत हेतु प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि ये ओजयुक्त, सहिष्णु और पाले के प्रतिरोधी होते हैं।

काजू

काजू का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता हैं। बीजू पौधों की मूसला जड़ें अधिक विन्यस्त होने के कारण इनके स्थापन की भी समस्या होती है। इसी कारण

गिरी स्वस्थाने या बांस की नालियों में बोई जाती है। बोने हेतु स्वस्थ गिरी, जो पानी में डूब जाए, का प्रयोग किया जाना चाहिए। स्वस्थाने बोने के लिए भूमि की उर्वरतानुसार 10-12 मीटर की दूरी पर गड्ढे तैयार करके उनमें 2-3 गिरियां बोई जाती हैं। एक वर्ष पश्चात् एक स्वस्थ पौधे को छोड़ते हुए शेष निकाल दिए जाते हैं। गिरी की बोआई बरसात आरंभ होने पर करनी चाहिए। पॉलिथीन की थैलियों या बांस की नालियों में मार्च-अप्रैल में भी बोआई की जा सकती है।

काजू को व्यावसायिक स्तर पर भेंट कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धित किया जा सकता है। भेंट कलम-बंधन आम या अमरूद की तरह किया जाता है। गूटी द्वारा प्रवर्धन में एक वर्ष की आयु की शाखा में वलय बनाकर इंडोल ब्यूटीरिक अम्ल (7,500 से 10,000 पीपीएम) का लेप लगाने या सिराडेक्स द्वारा उपचरित करने नम मॉस घास या लकड़ी का बुरादा आदि से बांधने से अच्छा मूलन होता है। दक्षिणी भारत में अक्टूबर से अप्रैल तक का समय गूटी हेतु उचित पाया गया है।

सन् 1980 तक काजू की नई किस्मों के प्रयोग में सबसे बड़ी कठिनाई यही थी कि काजू के प्रवर्धन हेतु कायिक प्रवर्धन की कोई तकनीक व्यावहारिक नहीं थीं। परंतु कृषि अनुसंधान स्टेशन, उल्लास द्वारा मृदु काष्ठ कलम-बंधन तकनीक का मानकीकरण किया है जो दिन प्रतिदिन बागवानों में लोकप्रिय हो रही है। इस विधि में मूलवृंत 20-25 दिन का होना चाहिए जबकि सांकुर 8-10 सेमी. लंबा व पेंसिल जैसी मोटाई का होना चाहिए, और उसमें 4-5 पत्तियां होनी चाहिए। सांकुर की तैयारी हेतु पत्तियों को कलम-बंधन से 7-10 दिन पहले काट दिया जाता है। कलम-बंधित पौधों को लागभग 8-10 दिनों तक छाया में रखा जाता है।

कटहल

कटहल का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। कटहल में फसल परपरागण द्वारा होने के कारण बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर विविधता एवं लंबी किशोरावस्था की समस्या होती है। साथ ही बीजू पौधों में मूसला जड़ें अधिक विकसित होने के कारण पौधों की बागों में स्थापन की भी समस्या होती है।

कटहल के बीजों को फल से निकालते ही बो देना चाहिए क्योंकि भंडारण करने पर अंकुरण-क्षमता क्षीण होने लगती है। बोने के लिए अपेक्षाकृत सुडौल और बड़े बीजों का प्रयोग करना चाहिए। बोने से पहले बीजों को 24 घंटे तक पानी, 25-50 पीपीएम

नैप्थेलिन एसिटिक अम्ल अथवा 500 पीपीएम जिबरेलिक अम्ल से उपचारित करने पर अच्छे और शीघ्र अंकरण की संभावना होती है।

चीकू

चीकू का प्रवर्धन बीज, गूटी और भेंट कलम-बंधन द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धित पौधों में फलत देर से प्रारंभ होने और फलवृक्षों में विविधता होने के कारण व्यावसायिक स्तर पर इसकी सिफारिश नहीं की जाती है। हमारे देश में चीकू के प्रवर्धन हेतु मुख्यत: गूटी का प्रयोग किया जाता है। गूटी हेतु एक वर्ष आयु की शाखाओं में वलय बनाकर 2 प्रतिशत इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल की लेई लगाने से अच्छा मूलन हो जाता है। इसी प्रकार पुराने फलदायक वृक्षों की गहरी छंटाई से प्राप्त ओजस्वी शाखाओं में गूटी बांधने से अच्छे मूलन की संभावना होती है। गूटी हेतु बरसात का मौसम सबसे उपयुक्त होता है। गूटी के अतिरिक्त भेंट कलम-बंधन द्वारा भी व्यावसायिक स्तर पर चीकू का प्रवर्धन किया जाता है। भेंट कलम-बंधन का उचित समय जून-जुलाई पाया गया है।

चीकू में कलम-बंधन हेतु मूलवृंत के लिए खिरनी एवं महुआ के बीजू पौधे प्रयोग किए जाते हैं। खिरनी के पौधों में मूलतंत्र अधिक विकसित होने के कारण इन पर प्रत्यारोपित पौधों में सूखा सहन करने की अच्छी क्षमता होती है।

नारियल

नारियल का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। नारियल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता पौध पर निर्भर करती है, अत: बोने हेतु बीज हमेशा चयनित, अच्छे फलोत्पादक, ओजयुक्त एवं रोगरहित पौधों से एकत्रित करना चाहिए। साधारणत: 12 माह के बीजू नारियल, जिनका अधिकतम भार 750 ग्राम हो, बोआई एवं अच्छे अंकुरण के लिए उत्तम होते हैं। ऐसे बीजू नारियल का चुनाव फरवरी से मई के बीच करना चाहिए। बुआई से पहले इन्हें लगभग एक माह के लिए भंडारित करना चाहिए। तैयार क्यारियों में गिरी, जिसके ऊपर पूर्ण आवरण हो, को भूमि तल से 15 सेमी. की गहराई में इस प्रकार रखते हैं कि आंख की तरफ का हिस्सा थोड़ा उठा रहे। एक माह के अंदर बीजाकुरण आरंभ हो जाता है। प्रारंभ में तने और तत्पश्चात् जड़ों का विन्यास होता है। 6-12 माह में पौधे रोपण-योग्य तैयार हो जाते हैं।

बीज द्वारा प्रवर्धन करने पर नारियल में साधारणत: विविधता होती है और किशोरावस्था लंबी होती है। साथ ही बाजू पौधे काफी ऊंचाई वाले होते हैं। परिणामत:

फलों की तुड़ाई में भी कठिनाई होती है। अत: कुछ शोध संस्थानों में ऊतक संवर्धन द्वारा इसके प्रवर्धन के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके व्यावसायिक स्तर पर मानकीकरण की प्रबल संभावनाएं हैं।

कमरख

कमरख का प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है। पूर्णरूप से विकसित सुडौल बीज का ही उपयोग बोने हेतु करना चाहिए। बीज को आंशिक छायादार स्थान में बोना चाहिए। अंकुरित पौधे 20-30 दिन के हो जाने पर उन्हें अन्यत्र खुले स्थान में स्थानांतरित कर दिया जाता है। कमरख में फलत पर-परागण द्वारा होती है, अत: बीजू पौधों में विविधता होने के कारण व्यावसायिक स्तर पर इसका अनुमोदन नहीं किया जाता है।

कमरख को भेंट, विनियर, काशा कलम-बंधन एवं 'टी' कलिकायन द्वारा भी प्रवर्धित कर सकते हैं। ऐसा करने हेतु एक वर्ष आयु के बीजू पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। गूटी द्वारा भी कमरख को सफलतापूर्वक प्रवर्धित किया गया है। गूटी हेतु भूमितल के पास की शाखाएं अच्छी रहती हैं। इन शाखाओं में वलय बनाकर मिट्टी से ढककर और मूलन सहायक रसायनों से उपचारित करके मॉस घास से बांधने पर अच्छा मूलन हो जाता है। गूटी हेतु जून-जुलाई माह अच्छे पाए गए हैं।

स. उपोष्ण-कटिबंधीय फल

नींबूवर्गीय फल

नींबूवर्गीय फलों में वैसे तो कई प्रकार के फल आते हैं, परंतु हमारे देश में मुख्यत: संतरा, माल्टा, नींबू, लेमन, चकोतरा एवं ग्रेपफूट आदि फल उगाए जाते हैं। इन फलों का प्रवर्धन बीज, कलम, गूटी एवं कलिकायन द्वारा किया जाता है। इस वंश की विभिन्न जातियों में बहुभ्रूणता होने के कारण यदि बीजांडकायिक पौधों का चयन कर लिया जाए तो पौधों में विविधता की संभवना नहीं होती है। बीजू पौधे दीर्घायु, ओजयुक्त, अपेक्षाकृत कांटेदार होते हैं और इनमें सूखा रोग देरी से व कम लगता है। यही कारण है कि आजकल बीज द्वारा प्रवर्धन का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। कुर्ग और असम में संतरा, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में माल्टा तथा कई राज्यों में कागजी नींबू का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है।

बीज द्वारा प्रवर्धन हेतु पक रहे फलों से अगस्त-सितंबर में बीज एकत्रित करके यथाशीघ्र इनकी बोआई कर देनी चाहिए। देर से बोने पर अंकुरण क्षमता में ह्रास होने लगता

है। नींबू जाति के फल अलग-अलग समय में परिपक्व होते हैं। अत: अनुभव के आधार पर बीज हेतु पके फलों की तुड़ाई की जानी चाहिए। जट्टी-खट्टी, करना खट्टा, रंगपुर लाइम और कैरिजो सिटरेंज को अगस्त के अंत में और क्लियोपेट्रा को अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में बोने पर अच्छा अंकुरण होता है। अंकुरण के 2-3 माह पश्चात् एक प्रतिशत यूरिया का छिड़काव या शरद ऋतु में क्यारी के ऊपर पॉलिथीन ढकने से पौधों में वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती है।

संतरा, माल्टा, चकोतरा आदि का व्यावसायिक प्रवर्धन 'टी' कलिकायन द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत में फरवरी-मार्च और अगस्त-सितंबर, महाराष्ट्र और गुजरात में फरवरी-मार्च एवं जून और आंध्र प्रदेश में जुलाई से दिसंबर तक का समय 'टी' कलिकायन हेतु उचित पाया जाता है। सांकुर डाल से काली निकालते समय सावधानी रखनी चाहिए कि लकड़ी के साथ कली के पास हल्का सूराख न होने पाए। सूराख हो जाने से सफलता की संभावना कम हो जाती है। यदि उपयोग में लाई जाने वाली सांकुर डाल चौकार हो तो कलिका लकड़ी के साथ और इसे गोल होने पर लकड़ीरहित कालिका का प्रत्यारोपण किए जाने से अच्छी सफलता की संभावना होती है। सांकुर डाल, रोगरहित, स्वस्थ, फलदायक मातृवृक्षों से ही एकत्रित करनी चाहिए।

मीठे नींबू, लेमन कागजी कलां आदि का प्रवर्धन 'टी' कलिकायन के अतिरिक्त गूटी द्वारा भी किया जाता है। गूटी हेतु 6-12 माह आयु की गोल शाखाओं, जिनमें आधार हल्का भूरा हो, का प्रयोग किया जाना चाहिए। शाखाओं के आधार पर वलय बना कर सिराडेक्स या 250-1,000 पीपीएम. इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाकर मॉस घास में बांधने से अच्छी सफलता मिलती है।

नींबूवर्गीय फलों में विभिन्न प्रचलित किस्मों और विभिन्न भूमि और वातावरणीय की दशाओं में उपयुक्त मूलवृंत के अनुमोदन हेतु पूरे देश में कई दीर्घकालीन प्रयोग किए गए हैं। व्यावसायिक स्तर पर प्रयोग किए जाने वाले मूलवृंतों में निम्नवत् गुण होने चाहिए:

1. मूलवृंत की प्रत्यारोपित सांकुर से संगति हो।
2. यह पौधशाला की भूमि और क्षेत्र की वातावरणीय दशाओं के प्रति अनुकूल हो।
3. मूलवृंत मुख्य कीट और रोगों का प्रतिरोधी हो।
4. यह सांकुर में बौनापन लाने वाला हो।

5. मूलवृंत, सांकुर के फलों पर अनुकूल प्रभाव डालने वाला हो।

6. इसका जड़तंत्र अच्छा हो ताकि सांकुर को भूमि में अच्छी पकड़ रखकर, दीर्घायु प्रदान करने वाला हो।

7. यह सुगमता से मिल सके।

8. मूलवृंत का प्रवर्धन आसान हो।

ऊंचे जलपटल वाले क्षेत्रों के नींबूवर्गीय फलों के प्रवर्धन हेतु विभिन्न मूलवृंतों के प्रयोग का अनुमोदन किया गया है, परंतु मुख्यत: जंभीरी (जट्टी-खट्टी), रंगपुर लाइम, करना खट्टा, क्लियोपेट्रा संतरा, ट्राइफोलिएट औरेन्ज आदि का प्रयोग ही व्यावसायिक स्तर पर किया जाता है।

अंगूर

अंगूर का व्यावसायिक प्रवर्धन सख्त काष्ठ कलम द्वारा किया जाता है। एक वर्ष आयु की पुरानी शाखाओं से दिसंबर-जनवरी में 25-30 सेमी. आकार की कलमें, जिनमें तीन-पांच गांठे हों, तैयार की जाती हैं। तैयार कलमों की सीधे क्यारी में रोपाई की जाती है। कलमों के आधार को इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल (100-500 पीपीएम) या सिराडेक्स से उपचारित करने से जड़ें अच्छी संख्या में एवं स्वस्थ निकलती हैं। प्रवर्धन के लिए मातृ पौधों की कमी होने पर एक या दो गांठयुक्त कलमों का रोपण भी किया जा सकता है।

हमारे देश में कई क्षेत्रों में अंगूर के प्रवर्धन हेतु कलम बंधन या 'टी' कलिकायन द्वारा भी अंगूर को प्रवर्धित कर रहे हैं। ये विधियां उन क्षेत्रों में प्रयोग में लाई जा रही हैं जहां की मिट्टी लवणीय है या फिर वहां सूत्रकृमि की समस्या है। अत: सूत्रकृमि या लवण-बाहुल्य क्षेत्रों में व्यावसायिक बागवानी हेतु अंगूर को चयनित मूलवृंतों (जैसे डॉगरिज या साल्ट क्रीक आदि) पर कलम-बंधन या 'टी' कलिकायन द्वारा प्रवर्धित किया जाता है।

लीची

लीची का व्यावसायिक प्रवर्धन गूटी द्वारा किया जाता है। गूटी बांधने का उचित समय जून-जुलाई होता है। फलदायक वृक्षों की 9-12 माह आयु की शाखाओं में वलय बना कर एक प्रतिशत इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल की लेनोलिन में लेई से उपचार के पश्चात्

मॉस घास को पॉलिथीन की पट्टी से बांधते हैं। पौधशाला में सुविधा हेतु सिराडेक्स का व्यावसायिक उपयोग किया जाता है। कभी-कभी पुराने फलदायक वृक्षों की शाखाओं में अच्छा मूलन नहीं होता है। ऐसी दशा में पुराने फलवृक्षों की गहरी छंटाई के पश्चात् प्राप्त ओजस्वी शाखाओं में गूटी बांधने पर अच्छे मूलन की संभावना होती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के स्थानीय शोध केंद्र, पूसा (बिहार) ने स्टूलिंग द्वारा लीची के प्रवर्धन की सिफारिश की है। स्टूलिंग हेतु चार से छह माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल (5,000 पीपीएम) का लेप लगाने से अच्छा मूलन होता है।

कई देशों जैसे चीन, हवाई आदि में कलम-बंधन और कलिकायन द्वारा भी लीची का प्रवर्धन किया जाता है। मूलवृंत के लिए लीची के बीजू पौधे या कभी-कभी लोंगन के पौधे प्रयोग किए जाते हैं। लीची के बीजों को फल से निकालते ही यथाशीघ्र बो देना चाहिए। इनके सूखने पर इनकी अंकुरण क्षमता में कमी होने लगती है।

बेर

बेर का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज और 'टी' कलिकायन द्वारा किया जाता है। बीजावरण सख्त होने के कारण बोने पर तुरंत अंकुरण नहीं हो पाता है। भूमि पर स्वत: गिरे फलों के लगभग 50-60 प्रतिशत बीज उगने की क्षमता नहीं रखते हैं। अत: स्वस्थ और पूर्ण विकसित सुडौल फलों से निकाले गए बीजों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। बोने से पहले 17-18 प्रतिशत नमक के घोल में भिगोने पर तैरते हुए बीजों का प्रयोग बोने के लिए नहीं करना चाहिए। कठोर बीजावरण के साथ बोने पर 3-4 सप्ताह और सावधानीपूर्वक गुठली को फोड़कर निकाले गए बीजों को बोने पर 7-10 दिनों में अंकुरण हो जाता है। बेर की गिरी को थायोयूरिया (500 पीपीएम) या सांद्र सलफ्यूरिक अम्ल से उपचारित करके बोने पर अच्छे और शीघ्र अंकुरण की संभावना होती है। बेर के पौधों में मूसला जड़ें अधिक विकसित होने के कारण प्रवर्धित पौधों का रोपण करने पर स्थापन की समस्या होती है। इसके निदान हेतु यही उचित होगा कि बाग में गिरी बोकर तैयार पौधों पर स्वस्थाने 'टी' कलिकायन की जाए। मार्च-अप्रैल में बीजों को गमले में अंकुरित कराकर दो माह बाद एक-एक पौधों का स्थानांतरण गमले में करके जून-जुलाई में प्रवर्धित पौधों को बाग में रोपण करने की सिफारिश भी की गई है। यदि पौधशाला में प्रवर्धन कर दिया गया हो तो प्रवर्धित पौधों में चार पत्तियों के आते ही इन्हें सावधानीपूर्वक खोदकर अन्यत्र स्थानांतरण या बाग में सीधे रोपण करने पर स्थापन की समस्या नहीं रहती है।

चयनित किस्मों का प्रवर्धन 'टी' कलिकायन द्वारा किया जाता है। कलिकायन हेतु मई से जुलाई का उत्तम होता है।

मूलवृंत हेतु देशी बेर (झरबरी) के बीजू पौधे प्रयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त बेर की *जिजिफस नुमूलिरिया* जाति का प्रयोग भी मूलवृंत के रूप में किया जा रहा है।

अंजीर

अंजीर का प्रवर्धन मुख्यत: सख्त काष्ठ कलम द्वारा किया जाता है। कलम तैयार करने हेतु एक वर्ष की पतली शाखाएं, जिनमें गांठें में हों, अच्छी रहती हैं। इन शाखाओं से 20-25 सेमी. लंबी कलमें बनाकर नवंबर या जनवरी-फरवरी में रोपण किया जाता है। शाखाओं को मातृ पौधों से काटने से पहले वलय बनाने से मूलन प्रक्रिया प्रोत्साहित हो जाती है। क्यारियों में कलमें रोपण करते समय ध्यान रखना चाहिए कि केवल एक गांठ ही भूमि तल से ऊपर रहे।

कायिक प्रवर्धन की अन्य विधियों में 'टी' कलिकायन व काशा कलम-बंधन की विधियां भी काफी उपयोगी हैं, परंतु इन विधियों का प्रयोग प्रयोगात्मक स्तर पर या शोधकार्यों हेतु ही किया जाता है। 'टी' कलिकायन हेतु मई-जून एवं काशा कलम-बंधन हेतु मार्च-अप्रैल के माह सर्वश्रेष्ठ पाए गए हैं।

अनार

अनार का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज या सख्त काष्ठ कलम द्वारा किया जाता है। कभी-कभी भूस्तारी तने, गूटी इत्यादि विधियों द्वारा भी इसका प्रवर्धन किया जाता है। अनार के फल में सख्त और कोमल बीज पाए जाते हैं। दोनों के अंकुरण में विशेष अंतर नहीं होता है। बोने के 20 दिनों के अंतराल में अंकुरण हो जाता है और दो से तीन माह के पौधे स्थानांतरण-योग्य हो जाते हैं। बीज द्वारा प्रवर्धन के कारण ही अनार के चयनित गुणों में ह्रास होता है।

साधरणत: कलम हेतु 9-12 माह आयु की शाखाओं का प्रयोग किया जाता है। कलम की लंबाई 25 से 30 सेमी रखी जानी चाहिए। मुख्य पौधे की बगल से जो भूस्तारी पौधे निकलते रहते हैं उनका उपयोग भी कलम तैयार करने के लिए किया जा सकता है। कलम रोपण का उचित समय जुलाई से नवंबर तक होता है। कलमों को 50-200 पीपीएम इंडोल ब्यूटीरिक अम्ल या सेराडक्स से उपचारित करने से जड़ें अधिक संख्या में एवं स्वस्थ निकलती हैं।

लोकाट

लोकाट का प्रवर्धन बीज, गूटी, भेंट कलम-बंधन और 'टी' कलिकायन द्वारा किया जाता है। पके फलों से बीज निकालने के तुरंत बाद ही उन्हें बो देना चाहिए अन्यथा अंकुरण क्षमता में ह्रास होने लगता है। बीजू पौधों में विविधता होने के कारण व्यावसायिक स्तर पर लोकाट को कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित करते हैं। गुटी द्वारा इसका प्रवर्धन सुगमतापूर्वक किया जाता है। 3-6 माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर 3 प्रतिशत इंडोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाने से 80-100 प्रतिशत शाखाओं में मूलन हो जाता है।

लोकाट को भेंट कलम-बंधन द्वारा भी व्यावसायिक स्तर पर प्रवर्धित किया जाता है। कलम-बंधन जून-जुलाई या फरवरी-मार्च में करते हैं। 'टी' कलिकायन द्वारा भी लोकाट का प्रवर्धन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। 'टी' कलिकायन हेतु फरवरी का माह सबसे उचित रहता है।

कलम-बंधन और कलिकायन हेतु लोकाट के बीजू पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। अन्य देशों में सेब, नाशपाती और वीही का भी लोकाट हेतु मूलवृंत के रूप में प्रयोग करते हैं।

आंवला

आंवले का प्रवर्धन मुख्यत: भेंट कलम-बंधन और 'टी' एवं पैबंदी कलिकायन द्वारा किया जाता है। आंवले की विभिन्न किस्मों में लिंग अनुपात भिन्न-भिन्न होता है। अत: सांकुर शाख के लिए प्रौढ़ावस्था वाले फलवृक्ष, जिनमें अच्छी फसल आ रही हो, का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। भेंट कलम-बंधन का उचित समय जून से अगस्त तक होता है। इस विधि से 50-60 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। आजकल 'टी' और पैबंदी कलिकायन द्वारा अपेक्षाकृत अच्छी सफलता मिलती है। कलिकायन हेतु मई से अक्टूबर तक का समय उचित रहता है। 'टी' कलिकायन द्वारा पुराने अनुत्पादक वृक्षों का जीर्णोद्धार भी किया जा सकता है।

अन्य कायिक विधियों में गूटी और स्टूलिंग द्वारा भी आंवले के प्रवर्धन हेतु प्रयास किए गए हैं। गूटी में चयनित शाखाओं में वलय बनाकर सिराडक्स और स्टूलिंग में 500

पीपीएम इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल + इथरेल के मिश्रण से उपचारित करने से मूलन में सहायता मिलती है।

कलम-बंधन तथा कलिकायन द्वारा प्रवर्धन में मूलवृंत हेतु देशी आंवले के बीजू पौधे प्रयुक्त किए जाते हैं। परिपक्व फलों को फरवरी-मार्च में सूखाकर बीज निकाला जाता है। बीज की बोआई अप्रैल से जुलाई तक की जाती है। आवश्यकतानुसार पॉलिथीन की थैलियों अथवा डिब्बों में 6-9 माह तक आंवले का बीज भंडारित किया जा सकता है। 6-8 माह आयु के बीजू पौधे मूलवृंत हेतु प्रयुक्त किए जाते हैं।

बेल

बेल का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज, अंत: भूस्तारी एवं 'टी' कलिकायन द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा केवल मूलवृंत का प्रवर्धन किया जाना चाहिए। बेल की अभी तक प्रचलित किस्में न होने के कारण कागजी बेल के आस-पास उग रहे अंत:भूस्तारी को सावधानीपूर्वक मातृ पौधे से अलग करके अन्यत्र रोपण करने की प्रथा प्रचलित है। कलिकायन की विभिन्न विधियों में 'टी' कलिकायन द्वारा अच्छी सफलता मिलती है। यह कार्य मई से अगस्त तक किया जा सकता है। प्रवर्धन की अन्य विधियों में स्टूलिंग द्वारा भी बेल के प्रवर्धन का प्रयास किया गया है। स्टूलिंग हेतु 3-4 माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर 5,000 पीपीएम के इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाने से मूलन अच्छा व शीघ्र होता है।

कलिकायन द्वारा प्रवर्धन हेतु देशी बेल के बीजू पौधों को मूलवृंत के रूप में प्रयोग करते हैं। पके बेल के गूदे को सड़ाकर अप्रैल-मई में अच्छी प्रकार साफ करके बीज निकाला जाता है। साफ बीजों की यथाशीघ्र ही तैयार क्यारियों में बो देना चाहिए। 9-12 माह आयु के पौधे मूलवृंत के लिए ठीक रहते हैं।

फालसा

फालसे का व्यावसायिक प्रवर्धन सामान्यत: बीज द्वारा किया जाता है। बीजू पौधों में लंबी किशोरावस्था और इसके विभेदों में अधिक विविधता न होने के कारण ही बीज द्वारा इसका व्यावसायिक प्रवर्धन किया जाता है। अप्रैल-मई में फलों को सड़ा कर शर्बत या रस हेतु प्रयोग किए गए फलों से एकत्रित बीज की बोआई तुरंत कर देनी चाहिए। बीजू पौधे दिसंबर-जनवरी में रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

फालसे को कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित करने के भी प्रयास किए गए हैं। इनमें कलम, भेंट कलम-बंधन, 'टी' कलिकायन, गूटी आदि विधियों द्वारा इसके प्रवर्धन की अच्छी संभावनाएं हैं। 6-8 माह की शाखाओं में 100 पीपीएम, इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाने से 60 प्रतिशत शाखाओं में गूटी द्वारा सफलता मिल जाती है। फालसे को सख्त काष्ठ-कलम द्वारा भी प्रवर्धित करने के प्रयोग किए गए हैं। 6-8 माह की आयु की शाखाओं में 10,000 पीपीएम, इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित करके जुलाई-अगस्त में रोपण करने पर कलमों में अच्छा मूलन हो जाता है। कुछ प्रयोगों से यह पाया गया है कि पैबंदी कलिकायन द्वारा भी फालसे का प्रवर्धन संभव है। कलिकायन हेतु मई-जून का समय अच्छा होता है।

एवोकेडो

इसका प्रवर्धन मुख्यत: बीज एवं कलम-बंधन और कलिकायन की विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। बीजू पौधे मूलवृंत के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। आजकल कलम-बंधन द्वारा व्यावसायिक स्तर पर एवोकेडो का प्रवर्धन किया जाता है।

कलिकायन की विभिन्न विधियों में 'टी' कलिकायन सबसे अच्छी विधि पाई गई है। 12-18 माह आयु की स्वस्थ सांकुर डाल के मध्य की कलियों का उपयोग कलिकायन के लिए किया जाता है। कलिकायन के 7-10 दिन पहले पर्णफलक काट देने से अच्छी सफलता मिलती है। प्रत्यारोपित कलिकाएं जब 45-60 सेमी. की हो जाएं तो मूलवृंत के ऊपरी भाग को तिरछा काटते हुए कलम-बंधनी मोम से सीलबंद करना लाभप्रद होता है।

मूलवृंत के लिए मैक्सिकन जाति के पौधे उपयुक्त पाए गए हैं। जिन स्थानों पर पाला पड़ने की संभावना होती है, वहां वेस्ट इन्डियन जाति के पौधों को मूलवृंत के रूप में प्रयुक्त करने की सिफारिश की गई है। मूलवृंत हेतु टोपा, मेक्सिकोला, गन्टर, ड्यूक आदि किस्मों के स्वस्थ फलों से एकत्रित बीज का प्रयोग करने की सिफारिश की गई है। बीज की बोआई सितंबर-अक्टूबर या फरवरी-मार्च में की जाती है।

खजूर

खजूर का प्रर्वधन बीज, अन्त: भूस्तारी, भूस्तारिका और प्ररोह द्वारा किया जाता है। देशी खजूर के पौधे स्वत: बीज द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं। खजूर का पौधा एकलिंगाश्रयी होने के कारण परपरागित होता है। फलत: बीज द्वारा प्रवर्धित पौधों में विविधता के साथ

उनमें लंबी किशोरावस्था भी होती है। साथ ही बीजू पौधों में लगभग 40-60 प्रतिशत अफलन वाले नर पौधे होते हैं। अत: कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धन हमेशा लाभदायी रहता है। विभिन्न कायिक विधियों में मुख्यत: अन्त: भूस्तारी, भूस्तारिका व प्ररोह का प्रयोग खजूर के प्रवर्धन हेतु किया जाता है।

भूस्तारिका और अन्त: भूस्तारी की उत्पत्ति कक्ष कलिकाओं से होती है। भूस्तारिका सामान्यत: भूमिगत होती हैं, अत: आवश्यकतानुसार थोड़ा काट लगाकर इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित करके मिट्टी में दबाने से मूलन में सहायता मिलती है। इसी प्रकार, उन प्ररोहों से भी, जिनकी उत्पत्ति वृक्ष के ऊपर होती है, घाव बनाकर, उपचारित करने के पश्चात् चारों तरफ नम मॉस घास बांधने से मूलन अधिक एवं अच्छा होता है।

भूमिगत भूस्तारिका को मातृ पौधे से अलग करते समय विशेष सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। अलग करने के लिए तेज धार एवं लंबे हत्थे की विशेष रूखानी और भारी वजन के हथौड़े का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम फावड़े, कुदाली और खुरपे की सहायता से भूस्तारिका के चारों तरफ की मिट्टी इस प्रकार अलग करते हैं ताकि इसकी बगल में अच्छी पिंडी बनी रहे। इसके बाद मातृ पौधे के पास भूस्तारिका पर रूखानी रखकर हथौड़े से एक अथवा दो बार मार कर उसे अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार मूलन वाली प्ररोहों एवं अन्त: भूस्तारी को भी मातृ पौधे से सावधानीपूर्वक अलग करते हैं। रोपण हेतु साधारणत: 20-40 किलोग्राम वजन व 25-30 सेमी. मोटे पौधे प्रयोग किए जाते हैं। इन्हें पौधशाला या खेत में लगाने हेतु फरवरी-मार्च एवं अगस्त-सितंबर के माह ठीक रहते हैं। खजूर का एक पौधा अपने पूर्ण जीवनकाल में मात्र 8-10 भूस्तारिका और प्ररोह ही उत्पादित कर पाता है। यही कारण है कि भारत में व्यावसायिक स्तर पर इसकी बागवानी नहीं बढ़ाई जा पा रही है। अत: भारत के कुछ संस्थानों में ऊतक संवर्धन द्वारा इसके व्यावसायिक प्रवर्धन के प्रयास किए गए हैं, जो अभी व्यावहारिक नहीं हो पाए हैं।

जैतून

जैतून का प्रवर्धन बीज, कलम, गूटी, कलम-बंधन और कलिकायन की विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। जैतून के बीज सख्त आवरणयुक्त होते हैं। अत: सावधानीपूर्वक इनका छंदन या अम्ल से उपचारित करने से अच्छे और शीघ्र अंकुरण की संभावना होती है। कायिका विधियों में ओजयुक्त पौधों से प्राप्त हरित शाखाओं की कलमों को 500-5,000 पीपीएम, इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल से उपचारण करके 18° सेल्सियस तापमान पर तापघर में रोपण करने और कलम शीर्ष पर कुहासे की व्यवस्था द्वारा 75-80 प्रतिशत आर्द्रता रखने पर मूलन क्रिया प्रोत्साहित होती है।

गूटी द्वारा प्रवर्धन में 6-9 माह आयु की शाखाओं में वलय बनाकर 2,500 पीपीएम इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल से उपचारित करके मिट्टी में ढकने से अच्छा मूलन होता है। गूटी बांधने का उचित समय जून का प्रथम पखवाड़ा और स्टूलिंग प्रक्रिया मार्च-अप्रैल में की जानी चाहिए। अन्य कायिक विधियों में विनियर कलम-बंधन और पैबंदी कलिकायन द्वारा अच्छी सफलता मिलती है। कलम-बंधन और कलिकायन का सर्वोत्तम समय जून है। कलम-बंधन और कलिकायन हेतु पहाड़ी क्षेत्रों में *ओलिया कस्पिडेटा* का उपयोग मूलवृंत के रूप में किया जाता है। अधपके फलों से निकाली गई गुठली को 10 प्रतिशत कॉस्टिक पोटाश से उपचारित करके बोने पर अंकुरण में वृद्धि होती है, परंतु फलों से प्राप्त गुठली में अच्छा अंकुरण नहीं हो पाता है।

जामुन

जामुन का प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है। इसी कारण इसके पौधों की वानस्पतिक वृद्धि, फलत और फलों के गुण में विविधता पाई जाती है। जामुन के लगभग 50 प्रतिशत बीजों में बहुभ्रूणता पाई जाती है, तथा भ्रूण की संख्या 1-5 तक पाई जाती है। बीजांडकाय पौधों की वृद्धि कम होने के कारण इनको चयन करके रोपित करना चाहिए। पके फलों को सड़ाकर या उपयोग में लाए गए फलों की गुठली एकत्रित करके यथाशीघ्र इनकी बोआई कर देनी चाहिए। भंडारण करने पर इनकी अंकुरण क्षमता में कमी होने लगती है।

करौंदा

करौंदा का व्यावसायिक स्तर पर प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। जुलाई-अगस्त में पके फलों को सड़ाकर निकाले गए बीज की बोआई यथाशीघ्र तैयार क्यारियों में कर देनी चाहिए। 2-3 माह के बीजू पौधों को एक बार अन्यत्र रोपण के पश्चात् पौधे विक्रय हेतु तैयार हो जाते हैं। कायिक विधियों में कलम, गूटी और कलम-बंधन द्वारा सफलता मिलती है। वैसे बीजू पौधों से प्राप्त ओजयुक्त कलमों का रोपण नवंबर में करने से अच्छा मूलन हो जाता है। एक वर्ष आयु की शाखाओं में वलय बनाकर एक प्रतिशत इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल का लेप लगाने से 40 प्रतिशत शाखाओं में मूलन हो जाता है।

शहतूत

शहतूत का प्रवर्धन मुख्यत: बीज एवं सख्त काष्ठ कलमों द्वारा किया जाता है। बीज की बोआई मई-जून में पॉलिथीन की थैलियों या तैयार क्यारी में की जाती है। इसका व्यावसायिक प्रवर्धन सख्त काष्ठ कलम द्वारा किया जाता है। 20-30 सेमी. लंबी कलमें

बनाकर दिसंबर-जनवरी में तैयार क्यारी में रोपित की जाती हैं। कलम द्वारा प्रवर्धित पौधे सीधे रोपण के लिए या मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं। शहतूत का प्रर्वधन 'टी' और वलय कलिकायन द्वारा भी किया जा सकता है। कलिकायन हेतु मार्च-अप्रैल का समय उत्तम होता है।

रसभरी

रसभरी का व्यावसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। मार्च-अप्रैल में चयनित पके फलों को सड़ाकर छाया में सुखाकर प्राप्त बीज को पॉलिथीन की थैलियों या डिब्बों में भंडारित किया जाता है। इन्हीं भंडारित बीजों की अगस्त में तैयार की गई क्यारियों में बोआई की जाती है। अंकुरित पौधे डेढ से दो माह पश्चात् अक्टूबर में रोपित किए जाते हैं।

भारत में उगाए जाने वाले विभिन्न फलों की उन्नत प्रवर्धन-विधियों एवं समय का विवरण सारणी 6 में दिया गया है।

सारणी 6: भारत में उगाए जाने वाले प्रमुख फलों की मुख्य प्रवर्धन विधियां

फल	प्रवर्धन विधि	प्रवर्धन समय
आम	भेंट, विनियर, पार्श्व, प्रांकुर कलम-बंधन	जून-अगस्त
अनार	गूटी	जून-जुलाई
	सख्त काष्ठ कलम	नवंबर-जुलाई
अमरूद	गूटी, स्टूलिंग	फरवरी-मार्च
	भेंट, विनियर कमल-बंधन	जून-जुलाई
आंवला	'टी' कलिकायन	मई-सितंबर
	भेंट कलम-बंधन	जून-जुलाई
अंगूर	सख्त काष्ठ कलम, चिप्पी कलिकायन	दिसंबर-जनवरी
अंजीर	सख्त काष्ठ कलम,	दिसंबर-जनवरी
	गूटी, पार्श्व कलम-बंधन	जून-जुलाई
सीताफल	बीज	जुलाई-अगस्त
	पार्श्व कलम-बंधन	जुलाई-अगस्त

फल	प्रवर्धन विधि	प्रवर्धन समय
कटहल	बीज	जून-जुलाई
	गूटी	"
	भेंट कलम-बंधन	"
एवोकेड़ो	बीज	जून-जुलाई
	गूटी	"
	भेंट कलम-बंधन, पार्श्व कलम-बंधन	"
कमरख	बीज	जून-जुलाई
	गूटी	"
	पार्श्व कमल-बंधन	"
करोंदा	बीज, गूटी	जून-जुलाई
केला	अंत:भूस्तारी, प्रकन्द	जून-जुलाई
खजूर	बीज, अंत:भूस्तारी	जून-जुलाई
खिरनी	बीज	जून-जुलाई
ग्रेपफ्रूट	'टी' कलिकायन	फरवरी-मार्च
चकोतरा	'टी' कलिकायन	फरवरी-मार्च
चीकू	बीज, गूटी, मृदुशाख कलम-बंधन	जून-अगस्त
	भेंट कलम-बंधन	"
जामुन	बीज	जून-अगस्त
	'टी' कलिकायन	मार्च
	गूटी	जुलाई-अगस्त
नारियल	बीज	जून-जुलाई
पपीता	बीज	जून-जुलाई, सितंबर-अक्टूबर फरवरी-मार्च
फालसा	बीज	मई-जून
	सख्त काष्ठ कलम	नवंबर-दिसंबर

फल	प्रवर्धन विधि	प्रवर्धन समय
बेल	बीज, 'टी' कलिकायन	जून-जुलाई
बेर	बीज	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	मई-जुलाई
माल्टा	'टी' कलिकायन	सितंबर, फरवरी-मार्च
मीठा नींबू	कलम	फरवरी-मार्च, जून-जुलाई
	गूटी	जून-जुलाई
मैंगोस्टीन	बीज	जून-जुलाई
	भेंट कलम-बंधन	"
कागजी नींबू	बीज	सितंबर, फरवरी-मार्च
	गूटी	जून-जुलाई
लीची	गूटी	मई-जून
नींबू (लेमन)	कलम	फरवरी, अगस्त-सितंबर
	गूटी	जून-जुलाई
लोकाट	बीज	मार्च
	गूटी	जून-जुलाई
	भेंट कलम-बंधन	"
	'टी' कलिकायन	फरवरी-मार्च
शरीफा	बीज	मई-जून
	भेंट कलम-बंधन	जुलाई-अगस्त
शहतूत	सख्त काष्ठ कलम	दिसंबर-जनवरी
	'टी' कलिकायन	फरवरी-मार्च
संतरा	'टी' कलिकायन	फरवरी-मार्च
अनन्नास	अंत:भूस्तारी	जून-जुलाई
	स्लिप	"
	शिखर व प्ररोह	"

फल	प्रवर्धन विधि	प्रवर्धन समय
कीवी फल	बीज	नवंबर
	सख्त काष्ठ कलम	जून-जुलाई
	मृदु काष्ठ कलम-बंधन	जनवरी-फरवरी
अखरोट	बीज	नवंबर-फरवरी
	जिह्वा कमल-बंधन	फरवरी-मार्च
	पैबंदी कलिकायन	"
अलूचा	सख्त काष्ठ कलम	नवंबर-फरवरी
	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	"
आड़ू	बीज	जून-जुलाई
	गूटी, मृदु शाख व भेंट कलम-बंधन	अप्रैल-अक्टूबर
	विनियर कलम-बंधन	अप्रैल-अक्टूबर
चेस्टनट	दाबा	मई-जून
	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
	चिपी कलिकायन	अगस्त-सितंबर
खुबानी	जिह्वा कमल-बंधन	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	जून-सितंबर
चेरी	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	सितंबर
जैतून	स्टूलिंग	मार्च-अप्रैल
	विनियर कलम-बंधन	जून
	'टी' कलिकायन	नवंबर-फरवरी
नाशपाती	सख्त काष्ठ कलम	नवंबर-फरवरी
	स्टूलिंग	मई-जून
	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
पिस्ता	बीज	नवंबर-फरवरी

फल	प्रवर्धन विधि	प्रवर्धन समय
बादाम	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	सितंबर
सेब	सख्त काष्ठ कलम	नवंबर-फरवरी
	स्टूलिंग	मई-जून
	जिह्वा कलम-बंधन	फरवरी-मार्च
	'टी' कलिकायन	सितंबर

❐

सब्जियों, मसालों व बागानी फसलों के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां

वैसे तो इन फसलों को मुख्यत: बीज द्वारा प्रवर्धित करते हैं, परंतु इन फसलों के प्रवर्धन हेतु भी आए दिन नए शोधकार्य हो रहे हैं। हमारे देश में कई प्रकार की सब्जियां, मसालेवाली एवं बागानी फसलें उगाई जाती हैं। इस अध्याय में उनके प्रवर्धन की विभिन्न प्रकार की विधियों की जानकारी दी गई है।

अ. सब्जियां

हमारे देश में 60 से अधिक प्रकार की सब्जियां उगाई जाती हैं। सब्जियों को मुख्त: बीज द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। परंतु कुछ सब्जियों को कायिक विधियों द्वारा भी प्रवर्धित करते हैं।

कुछ सब्जियों के बीज सीधे खेत में बो दिए जाते हैं। परंतु कुछ सब्जियों की पहले पौधशाला में पौद तैयार की जाती है तथा बाद में पौद को खेतों में मानकीकृत दूरी पर लगाते हैं। उदाहरणत: बैंगन, टमाटर, प्याज, मिर्च, तथा गोभीवर्गीय सब्जियों की पहले पौधशाला में पौद तैयार करते हैं तथा बाद में पौद को खेतों में रोपित करते हैं। इसके विपरीत कद्दू एवं आलू आदि को सीधे ही खेत में बो दिया जाता है। तकनीकी ज्ञान में वृद्धि होने के कारण अब उपरोक्त फसलों की भी पौद तैयार की जाने लगी है।

बीज की बोआई के बाद अंकुरण, विभिन्न सब्जियों के बीज की जीवन-क्षमता, आकार एवं जलवायु की दशा पर निर्भर करता है। परंतु साधारणत: बीज के उगने में 15-20 दिन का समय अवश्य लगता है। पौद को लगभग एक माह बाद खेतों में रोपित करते हैं कुछ सब्जियों को कायिक विधियों द्वारा भी प्रवर्धित करते हैं (सारणी 7)।

सारणी 7 : कायिक विधियों द्वारा प्रवर्धित की जाने वाली सब्जियां

सब्जी	प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि	सब्जी	प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि
ऐस्पैरागस	तने की कलम	ककरौल	कंदीय जड़ें
बसेला	तने की कलम, बीज	प्याज	बीज, शल्ककंद
चो-चो	साबुत फल	परवल	लता की कलम
कुंदरू	तने की कलम	आलू	कंद, कंद के टुकड़े
अरबी	घनकंद, घनकंदक	शकरकंद	लता की कलम
जिमीकंद	घनकंद से तैयार भूस्तारिका	कसावा	तने की कलम
लहसुन	क्लोब, पत्रककलिका	जेरूसलेम आर्टीचॉक	कंद
सहजन	बीज, तने की कलम	रतालू	कंद के टुकड़े
ग्लोब आर्टीचॉक	अंत:भूस्तारी, प्रशाखा	रूबार्ब	शिखर के टुकड़े

ब. मसालेदार फसलें

हमारे देश में कई प्रकार की मसालेदार फसलें उगाई जाती हैं, परंतु उनमें से कुछ को ही व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाता है। मसालों के प्रवर्धन हेतु अपनाई जाने वाली सामान्य प्रवर्धन तकनीकों की जानकारी सारणी 8 में दी गई है।

सारणी 8: भारत में उगाए जाने वाली मसालेदार फसलों के प्रवर्धन की सामान्य प्रवर्धन विधियां

फसल	सामान्य प्रवर्धन विधि	फसल	सामान्य प्रवर्धन विधि
पिमेंटो	बीज, कलिकायन एवं भेंट कलम-बंधन	पुदीना	अंत:भूस्तारी
काली मिर्च	प्ररोह की कलम	केसर	घनकंद
बड़ी इलाइची	अंत:भूस्तारी	इमली	बीज, पैबंदी कलिकायन
लौंग	बीज	वनिला	जड़युक्त कलम
अदरक	प्रकंद	दालचीनी	बीज, कलम, गूटी

स. बागानी फसलें

हमारे देश में मुख्यत: कॉफी, चाय, रबड़, ककोआ आदि बागानी फसलें उगाई जाती हैं। इनके प्रवर्धन की प्रमुख विधियों का विवरण निम्नलिखित है:

1. कॉफी

हमारे देश में कॉफी मुख्यत: बीज द्वारा ही प्रवर्धित की जाती है। स्वपरागित होने के कारण बीज द्वारा प्रवर्धित पौधों में भिन्नता नहीं पाई जाती है। हालांकि अब कलम एवं कलिकायन की विभिन्न विधियों का मानकीकरण भी किया जा चुका है एवं कुछ बागवान इसे इन विधियों द्वारा भी प्रवर्धित करते हैं। विभिन्न प्रकार की कलमों में 10-15 सेमी. लंबी मृदु काष्ठ कलम, जिसमें 3 या 4 गाठें हों, अच्छी रहती हैं। कलिकायन की विभिन्न विधियों मे 'टी' कलिकायन कॉफी के प्रवर्धन हेतु सबसे सफल विधि है।

2. ककोआ

ककोआ के प्रवर्धत हेतु 'बीज' ही सबसे उपयुक्त रहता है, परंतु बीज द्वारा प्रवर्धन हेतु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि इसके बीज फलों से निकालने के तुरंत बाद ही बो देने चाहिए, अन्यथा बीजों के अंकुरण में ह्रास होने लगता है। इसके प्रवर्धन हेतु पत्ती की कलमों का प्रयोग भी किया जा सकता है, बशर्ते कि कलमें ताजे प्ररोह से तैयार की गई हों और उन्हें प्रवर्धन माध्यम में लगाने से पहले पादप वृद्धि नियामकों से उपचारित कर कुहासे की भी व्यवस्था की जाए।

3. रबड़

हमारे देश में रबड़ के प्रवर्धन हेतु मुख्यत: गूटी का प्रयोग किया जाता है, हालांकि पैबंदी कलिकायन द्वारा भी इसे प्रवर्धित कर सकते हैं।

4. चाय

चाय को मुख्यत: बीज द्वारा प्रवर्धित करते हैं। परंतु ध्यान देने योग्य बात है कि बीजों को फलों से निकालने के बाद तुरंत ही बो देना चाहिए, अन्यथा उनकी जीवनक्षमता में ह्रास होने लगता है। हाल के वर्षों में चाय के प्रवर्धन हेतु नई विधि का मानकीकरण हुआ है। इस विधि में ऐसे प्ररोहों से एक गांठ वाली कलमें तैयार की जाती हैं जो थोड़ी लाल होना शुरू हो गई हों। ऐसी कलमें कुहासा गृह में बहुत सफल रहती हैं।

द. औषधीय एवं सुगंधित फसलें

हमारा देश को औषधीय एवं सुगंधित या संगध फसलों की खान कहा जाता है क्योंकि कहीं ये फसलें कुदरती तौर पर देश के कई हिस्सों में उगती हैं तो कहीं पर इनकी खेती व्यावसायिक स्तर पर की जाती है। हमारे देश के विभिन्न शोध संस्थानो में भी इन्हें उगाया जाता है। इनके प्रवर्धन की जानकारी सारणी 9 में दी गई है।

सारणी 9: औषधीय एवं सुगंधित फसलों के प्रर्वधन की व्यावसायिक विधियां

फसल	मुख्य प्रवर्धन विधि	फसल	मुख्य प्रवर्धन विधि
अ. औषधीय फसलें		**ब. सुगंधित फसलें**	
बेलाडोना	बीज, तने की कलम	सिट्रोमेला घास	जड़युक्त स्लिप
सिनकोना	बीज, पैबंदी कलिकायन, विनियर कलम-बंधन	सफेदा	बीज
		मेंहदी	तने की कलम
सोआ	बीज	केवड़ा	तने की कलम
डायोस्कोरिया	घनकंद एवं कंदीय कलम	खुश	जड़युक्त स्लिप
फॉक्सग्लव	बीज	नींबू घास	बीज
इपेकाक	बीज एवं तने की कलम	पुदीना	भूस्तारी (स्टोलॉन)
इसबगोल	बीज	पामारोजा घास	जड़युक्त स्लिप
मुलहठी	कलम	पिपरमिंट	भूस्तारी (स्टोलॉन)
पोस्त	बीज	जिरेनियम गुलाब	तने की कलम
रावल्फिया	बीज, तने व जड़ की कलम		
सनाय	बीज		

पुष्पीय एवं शोभाकारी पौधों के प्रवर्धन की प्रमुख विधियां

साधारणत: वे सभी पौधे जिनका शोभाकारी महत्व है या जो हमारे वातावरण को सुंदर या आकर्षक बनाते हैं, उन्हें पुष्पीय पौधे कहा जाता है। इस वर्गीकरण में एकवर्षीय, द्विवर्षीय, बहुवर्षीय, अलंकृत घासें, कंदीय फसलें, शाकीय बहुवर्षीय झाड़ियां व पेड़ आते हैं। ये सभी प्रकार के पौधे या तो बीज या कायिक प्रवर्धन की विभिन्न विधियों द्वारा प्रवर्धित किए जाते हैं। इस अध्याय में ऐसे सभी प्रमुख पौधों के व्यावसायिक प्रवर्धन की विधियों का विवरण दिया गया है।

अ. प्रमुख शोभाकारी पौधे

बोगेनविलिया

व्यावसायिक स्तर पर बोगेनविलिया को सख्त काष्ठ कलमों द्वारा प्रवर्धित करते हैं। 25-30 सेमी. लंबी एवं 2-3 सेमी. मोटी पत्तीयुक्त कलमें अच्छी रहती है। उत्तरी भारत में कलमें, मानसून में पूर्वी में जुलाई-अगस्त व बेंगलूर जैसे जलवायु वाले क्षेत्रों में कलमें वर्षभर तैयार की जा सकती हैं। कलमों को यदि इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल (2,000 पीपीएम) से उपचारित किया जाए तो उनमें मूलन अच्छा व अधिक होता है। कुछ किस्मों को कलमों द्वारा प्रवर्धित करना काफी कठिन होता है। ऐसी किस्मों को 'टी' कलिकायन द्वारा प्रवर्धित कर सकते हैं। ऐसे में 'पारथा' व 'आर.आर पाल' आदि मूलवृंतों का प्रयोग करना लाभकारी होता है।

नागफनी (कैक्टस) एवं मांसल पौधे

कुछ लोगों का नागफनी व मांसल पौधों से विशेष लगाव होता है एवं ये पौधे हरएक गार्डन का एक अहम हिस्सा भी होते हैं। मांसल पौधों को वैसे तो विभिन्न विधियों से प्रवर्धित कर सकते हैं, परंतु इन्हें मुख्यत: बीजों द्वारा ही प्रवर्धित करते हैं, हालांकि प्रवर्धन की यह सबसे धीमी विधि है। बीज मुख्यत: बसंत में या गर्मी शुरू होते ही बो दिए जाते हैं। कुछ मांसल पौधों को तने, पत्ती व प्रशाखा की कलमों एवं काशा व तराशी भेंट कलम-बंधन द्वारा भी प्रवर्धित करते हैं।

केना

केने का व्यावसायिक प्रवर्धन प्रकंद के टुकड़ों से किया जाता है। इन्हें मानसून से पहले (जून-जुलाई में) लगाया जाता है।

कार्नेशन

कार्नेशन की कुछ किस्मों जैसे 'मारगुराइट' व 'चाबौड' आदि को बीज द्वारा आसानी से तैयार किया जा सकता है। उत्तरी भारत में इनके बीज जुलाई-अगस्त में बोए जाते हैं परंतु बेंगलूर जैसे जलवायु वाले स्थानों में इनकी बोआई अक्टूबर तक की जा सकती है। पहाड़ों पर बोआई अगस्त से अक्टूबर एवं मार्च-अप्रैल में की जा सकती है। पौधे के अग्र भाग से तैयार कलमों से भी कार्नेशन का प्रवर्धन किया जाता है। ऐसी कलमें, 10-15 सेमी, लंबी होनी चाहिए व इन्हें पादप माध्यम में रोपण से पहले इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित करना चाहिए। अब कार्नेशन को सूक्ष्म संवर्धन द्वारा प्रवर्धित करते हैं। ऐसे पौधे स्वस्थ होते हैं एवं वे एकसमान वृद्धि करते हैं।

चाइना एस्टर

इसका प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है। बीज को साधारणत: अगस्त से अक्टूबर के बीच के समय में बोया जाता है। बेंगलूर जैसी जगह में बीज बोआई कभी भी की जा सकती है, परंतु जून माह सबसे उपयुक्त होता है।

गुलदाउदी

गुलदाउदी का प्रवर्धन मुख्यत: अंत:भूस्तारी एवं शीर्ष कलम द्वारा किया जाता है। मातृ पौधे से अंत:भूस्तारी जनवरी-फरवरी में अलग किए जाते हैं व उन्हें उसी समय पौधशाला में रोपित किया जाता है। 5-6 सेमी. लंबी शीर्ष कलमों को इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल (200 पीपीएम) से उपचारित करके पौधशाला में छायादार स्थान पर लगाया जाता है। ऐसी कलमें तैयार करने हेतु जुलाई-अगस्त का समय उपयुक्त होता है।

अरोही लताएं

बहुत सी अरोही लताएं मानूसन में दाबा या कलम द्वारा प्रवर्धित की जाती हैं। परंतु कुछ आरोही लताओं जैसे कैंपसिस, क्लेरोडेड्रोन, पिटरिया आदि को भूस्तारी द्वारा भी प्रवर्धित किया जा सकता है।

साइकैड एवं ताड़ीय पौधे

ये पौधे मुख्यत: बीज द्वारा प्रवर्धित किए जाते हैं। परंतु ऐसे कुछ पौधों को भूस्तारी एवं कलम के टुकड़ों द्वारा भी प्रवर्धित किया जाता है। इन पौधों के बीजों के आकार व भार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। कुछ के बीज मटर के दाने के बराबर व कुछ के नारियल जैसे होते हैं। बीज बहुत धीरे उगते हैं और कभी-कभी तो एक वर्ष से अधिक समय लग जाता है। हालांकि बीजों को कभी भी बोया जा सकता है परंतु बसंत व वर्षा ऋतु में बोआई करना अच्छा रहता है। कुछ ताड़ीय पौधों जैसे केरियोटा, जियोनोमा, वालिचिया, लिकुयाला आदि को भूस्तारी द्वारा भी प्रवर्धित किया जा सकता है।

डहेलिया

डहेलिया के प्रवर्धन की सबसे उत्तम विधि कलम द्वारा प्रवर्धन है। ओजयुक्त, रोगरहित, ताजे व हरे प्ररोहों से तैयार 7-10 सेमी. लंबी कलमें ही अच्छी रहती है। कलमों की निचली पत्तियों को हटाकर मूलन हॉर्मोन जैसे सेराडेक्स या इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल से उपचारित कर ऐसी कलमों का रोपण पौधशाला में करना चाहिए। कलमें तैयार करने हेतु जुलाई से मध्य सितंबर का समय सर्वोत्तम होता है। डहेलिया का पर्वधन कंदीय टुकड़ों द्वारा भी किया जा सकता है। ऐसे कंदो के रोपण हेतु उत्तरी भारतीय क्षेत्रों में जून, बेंगलूर जैसी जगहों में मई, व पहाड़ों पर मार्च-अप्रैल का समय उत्तम होता है।

फर्न

फर्न का प्रवर्धन सामान्यत: बीजाणु द्वारा किया जाता है- हालांकि कायिक प्रवर्धन की कई विधियों का भी मानकीकरण किया गया है। फर्न अक्सर ओजयुक्त व मोटे प्रकंद भी पैदा करते हैं। इन प्रकंदों के टुकड़ों का प्रयोग भी प्रवर्धन हेतु किया जा सकता है। फर्न की कुछ जातियां पत्रक कलिकाएं पैदा करती हैं, जिन्हें प्रवर्धन हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

एकवर्षीय पुष्पीय पौधे

ऐसे लगभग सभी प्रकार के पौधों का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता जाता है। जलवायु-संबंधी आवश्यकताओं के आधार पर ऐसे एकवर्षीय पुष्पीय पौधों को शरद ऋतु एकवर्षीय (चाइना एस्टर, एजीरेटम, कार्नेशन, कैलेंडुला, साइनेरिया, लारक्स्पर, ल्युपिन, निगेलिया, पेंजी, पिटूनिया, फ्लोक्स, साल्विया, स्टॉक, वोयला, वरविना आदि), ग्रीष्म ऋतु एकवर्षीय (कॉरियोपसिस, गैलार्डिया, पोर्टुलाका, सूर्यमुखी, जीनिया आदि), एवं वर्षा ऋतु

एकवर्षीय (बालसम, कॉक्सकांब, ग्रोसिना, गेंदा, कॉसमॉस, पोर्टुलाका आदि) में वर्गीकृत किया गया है। ग्रीष्म ऋतु के फूलों के बीजों की बोआई पादप-विशेषानुसार एवं मौसम की दशानुसार जनवरी से जून तक की जाती है। वर्षाऋतु के फूलों के बीजों की बोआई मानसून के शुरू (जून-जुलाई) होते ही कर देनी चाहिए। शरदऋतु के फूलों के बीजों की बोआई सितंबर-अक्टूबर में की जाती है। ऐसे फूलों के बीजों की बोआई उथली पौधशाला या पॉलिथीन की थैलियों में करनी चाहिए। बीजों से तैयार पौद को साधारणत: एक माह बाद खेत में रोपित करते हैं। रोपण साधारणत: शाम के समय ही करना चाहिए एवं रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करना अति आवश्यक होता है।

जरबेरा

जरबेरा के प्रवर्धन की सबसे सस्ती व लोकप्रिय विधि मातृ पौधे का विभाजन है। स्वस्थ एवं ओजयुक्त मातृ पौधे के विभाजन हेतु मानसून सबसे उपयुक्त समय है। पहाड़ों में पौधों के विभाजन द्वारा प्रवर्धन हेतु बसंत सबसे उपयुक्त समय जाना जाता है।

ग्लैडियोलस

इसका प्रवर्धन साधारणत: घनकंद या घनकंदकों द्वारा किया जाता है। इसके घनकंद साधारणत: 3 माह तक प्रसुप्तावस्था में रहते हैं और उनमें फुटाव नहीं होता है। अत: पहाड़ों पर इनका रोपण फरवरी-मार्च एवं मैदानी भागों में अक्टूबर-नवंबर में किया जाता है। ग्लेडियोलस के प्रवर्धन हेतु ऊतक संवर्धन तकनीक का मानकीकरण भी किया जा चुका है।

शाकीय बहुवर्षीय पौधे

इन पौधों का प्रवर्धन मुख्यत: बीज द्वारा किया जाता है। हालांकि ऐसे कुछ पौधों जैसे ऐजीलोनिया (तने के शीर्ष की कलम), एस्टर (भूस्तारी), जिरेनियम (तने की कलम), फ्लोक्स (तने व जड़ की कलम), पाइरेथ्रम (विभाजन) आदि के लिए विभिन्न कायिक विधियां भी मानकीकृत की गई हैं।

चमेली

चमेली का प्रवर्धन मुख्यत: प्रौढ़ लकड़ी से तैयार कलमों द्वारा किया जाता है। हालांकि कुछ जातियों को दाबा द्वारा भी प्रवर्धित करते हैं। इन दोनों विधियों हेतु मानसून का समय सर्वोत्तम् होता है। कलमों के मूलन में वृद्धि हेतु इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल

(1,500-2,000 पीपीएम.) का उपचार लाभदायी रहता है। दाबा हेतु प्रौढ़ प्ररोहों के आधार से 1-2 सेमी. छाल निकालकर उस पर लेनोनिन में तैयार इन्डोल ब्यूटीरिक अम्ल की लेई लगाई जाती है। इस दौरान काफी आर्द्रता बनाए रखनी होती है। दाबा में मूलन एक माह में शुरू होता है एवं उन्हें मातृ पौधों से अलग करके सीधे खेत में लगाया जा सकता है।

गेंदा

गेंदे का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता है। बीज की बोआई मई से जुलाई तक की जाती है। पहाड़ों में बोआई, अक्टूबर-नवंबर व फरवरी-मार्च में की जाती है।

ऑर्किड

ऑर्किड का प्रवर्धन बीज द्वारा या ऊतक संवर्धन द्वारा किया जाता है। साधारणत: मालियों के लिए बीज व ऊतक संवर्धन करना कठिन होता है क्योंकि प्रवर्धन की इन दोनों विधियों में तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। अत: प्रवर्धन हेतु शल्ककंद व प्रकंद का प्रयोग किया जाना चाहिए। अधिकतर ऑर्किड लाखों की संख्या में बीज पैदा करते हैं, परंतु उनमें भ्रूणपोष न होने के कारण वे उग नहीं पाते हैं। अत: बीजों को निर्जर्मीकृत पोषणीय माध्यम में वातावरण की नियंत्रित दशाओं में उगाया जाता है। जब बीज अंकुरित हो जाते हैं तो उन्हें गमलों या पौधशाला में स्थानांतरित करते हैं।

अलंकृत घासें

अधिकतर अलंकृत घासों को कलमों, भूस्तारी (जैसे दूब घास), विभाजन (जैसे एन्ड्रोपोगोन) या बीज द्वारा प्रवर्धित करते हैं।

गुलाब

गुलाब को कायिक प्रवर्धन की विभिन्न विधियों जैसे कलम, दाबा, कलिकायन एवं कलम-बंधन द्वारा प्रवर्धित करते हैं। 'टी' कलिकायन सबसे प्रचलित एवं सफल विधि है। 'टी' कलिकायन हेतु अक्टूबर-नवंबर या फरवरी-मार्च का समय अच्छा होता है। कलिकायन हेतु पेंसिल जैसी मोटाई का मूलवृंत ठीक होता है। मूलवृंत के लिए देशी गुलाब सबसे अच्छा होता है। अरोही लता एवं रेंबलर गुलाबों के पौधों के प्रवर्धन हेतु दाबा व

कलमें अच्छी रहती हैं जबकि संकर गुलाब को तैयार करने हेतु 'टी' कलिकायन प्रयोग किया जाता है।

ब. अलंकृत शल्ककंदीय पौधे

औद्यानिक महत्व के कई पौधों को उनके द्वारा उत्पन्न विशेष कायिक भागों द्वारा प्रवर्धित करते हैं। शल्ककंदीय पौधों का आज के युग में महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। ऐसे पौधों का प्रवर्धन भी उपरोक्त विशेष कायिक भागों द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त ये पौधे अन्य संरचनाओं जैसे भूस्तारिका, शल्ककंदक, पत्र कलिका, घनकंदक एवं पत्रक द्वारा भी प्रवर्धित किए जा सकते हैं। हमारे देश में उगाए जाने वाले विभिन्न शल्ककंदीय पौधों की प्रवर्धन विधि, समय व रोपण गहराई का विवरण सारणी 10 में दिया गया है।

सारणी 10: अलंकृत शल्ककंदीय पौधों की प्रवर्धन विधि एवं समय का ब्योरा

शल्ककंदीय पादप	प्रवर्धन हेतु विशेष कायिक संरचना	आदर्श रोपण समय	रोपण गहराई (सेमी.)
एलोकेसिया	प्रकंद	बसंत ऋतु	3-5
अमेरीलिस	शल्ककंद, शल्ककंदक	फरवरी-मार्च	10-15
बिगोनिया	कंदीय जड़ें	फरवरी-मार्च	2-3
बेलाडोना लिली	शल्ककंद, शल्ककंदक	दिसंबर-जनवरी	8-10
क्लेडियम	शल्ककंद	अप्रैल-मई	4-5
केना	कंदीय जड़ें	मार्च-अप्रैल	12-15
केप लिली	शल्ककंद	ग्रीष्म ऋतु में शुरू में	8-10
कॉर्न लिली	घनकंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	
केसर	घनकंद	फरवरी-मार्च	5-7
साइक्लामेन	कंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	5-8
डैफोडिल	शल्ककंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	8-10
डहेलिया	कलम, कंदीय जड़ें	अगस्त-सितंबर	4-5
डे लिली	जड़ कलम	फरवरी-मार्च	4-5
फरीसिया	घनकंद	सितंबर-अक्टूबर	5-7
ग्लैडियोलस	घनकंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: अक्टूबर-नवंबर	12-15
ग्लोकसिनिया	तना कलम, प्रकंद	पहाड़ों में: मई-जून मैदानों में: दिसंबर-जनवरी	6-8
हाईसिंथ	शल्ककंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	12-15
आइरिस	प्रकंद	जून-जुलाई	6-8
लिली	शल्ककंद, भूस्तारिका	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	10-15
रेनुनकुलस	कंद	पहाड़ों में: फरवरी-मार्च मैदानों में: सितंबर-अक्टूबर	5-8
रजनीगंधा	कंद	फरवरी-मार्च	7-10
जलकुंभी	प्रकंद	वर्षा ऋतु	उथले पानी में

स. घर की आंरिक सज्जा के पौधे

हमारे देश में अब धीरे-धीरे आंतरिक सज्जा के पौधों के प्रयोग का प्रचलन बढ़ रहा है। ऐसे पौधों में कई प्रकार के पौधे जैसे शल्ककंदीय पौधे, फर्न, नागफनी एवं मांसल पौधे आते हैं। ऐसे प्रमुख पौधों के प्रवर्धन का ब्योरा सारणी 11 में दिया गया है।

सारणी 11: आंतरिक सज्जा के प्रमुख पौधे एवं उनके प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां

सामान्य नाम	व्यावसायिक प्रवर्धन विधि	सामान्य नाम	व्यावसायिक प्रवर्धन विधि
एग्लोनेमा	प्ररोहों का विभाजन, गांठीय कलम	रबड़	गूटी
		ताड़	भूस्तारिका, बीज
एंथूरियम	बीज	पेडोनस	भूस्तारिका, अंत:भूस्तारी
एफिलेडरा	अर्ध परिपक्व कलम	पीकॉक प्लांट	शिखर विभाजन
अरेलिया	शिखर विभाजन	फिलोडेन्ड्रोन	कलम
एरोकेरिया	बीज	पिचर प्लांट	सख्त काष्ठ कलम
ऐसपेरागस	शिखर विभाजन	पोड़ोकारपस	प्ररोह शिखर कलम-बंधन
एस्पिडिस्ट्रा	विभाजन	सागो पाम	भूस्तारिका
बर्ड ऑफ पैराडाइज	बीज	सेन्सवीरिया	भूस्तारिका
केलेथिया	जड़ कलम	स्पाइडर प्लांट	शिखर विभाजन
कोलियस	स्लिप की कलमें	ट्रेडसकेंशिया	कलम
क्रोटन	गूटी	युका	बीज, भूस्तारिका
डाइफेनबेकिया	शिखर की कलमे	जेबरिना	शाकीय कलम
ड्रेसिना	केन का टुकड़ा		

द. अलंकृत झाड़ियां एवं पेड़

झाड़ियां एवं पेड़ को काष्ठीय बहुवर्षीय पौधों का सबसे महत्वपूर्ण समूह माना जाता है। इस समूह के बहुत से पौधे ऐसे हैं जिन्हें शोभाकारी पौधों की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है। ऐसे पौधों के प्रवर्धन पर भी निरंतर अनुसंधान कार्य किए गए हैं। ऐसे कई पौधों के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियों का विवरण सारणी 12 व सारणी 13 में दिया गया है।

सारणी 12: महत्वपूर्ण अलंकृत झाड़ियां एवं उनकी व्यावसायिक प्रवर्धन विधियां

सामान्य नाम	मुख्य प्रवर्धन विधि	सामान्य नाम	मुख्य प्रवर्धन विधि
अकेलीफा	सख्त काष्ठ कलम	जट्रोफा	सख्त काष्ठ कलम, गूटी
अलामेंडा	गूटी	जूनिफर	सख्त काष्ठ कलम
एजेलिया	सख्त काष्ठ कलम, गूटी	कचनार	सख्त काष्ठ कलम
बॉटल ब्रश	सख्त काष्ठ कलम, गूटी	कमीनी	सख्त काष्ठ कलम
ब्राया	सख्त काष्ठ कलम, गूटी	हरसिंगार	सख्त काष्ठ कलम, दाबा
केमलिया	सख्त काष्ठ कलम, गूटी	लेटाना	बीज, सख्त काष्ठ कलम
रात की रानी	सख्त काष्ठ कलम	लिलेक	सख्त काष्ठ कलम, दाबा
दिन का राजा	सख्त काष्ठ कलम	कनेर	कलम, दाबा
क्लेरोडेंड्रोन	सख्त काष्ठ कलम	पोनसिटिया	सख्त काष्ठ कलम
क्लीमेटिस	सख्त काष्ठ कलम	पोटेलेडिया	सख्त काष्ठ कलम
कोरल ट्री	सख्त काष्ठ कलम	रूसेलिया	जड़ कलम
गुड़हल	दाबा, सख्त काष्ठ कलम	टिकोमा	बीज
हाइड्रेंजिया	मृदु काष्ठ कलम, पर्ण कली कलम	थनवर्जिया	सख्त काष्ठ कलम
		बुड़फोर्डिया	बीज, कलम
आईपोमिया	सख्त काष्ठ कलम	आईक्सोरा	सख्त काष्ठ कलम, गूटी

सारणी 13: छाया, शोभा एवं पुष्प देने वाले महत्वपूर्ण पेड़ एवं उनके प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियां

सामान्य नाम	मुख्य प्रवर्धन विधि	सामान्य नाम	मुख्य प्रवर्धन विधि
अगाथी	बीज	कलंज	बीज
एमहर्सिया	बीज, दाबा	लिली ट्री	गूटी
अर्जुन	बीज	मेडर ट्री	सख्त काष्ठ कलम
अशोक	बीज	मेगनोलिया	गूटी

एरोकेरिया	बीज, कलम, दाबा	महोगनी	बीज
बौरिंगटोनिया	बीज	महुआ	बीज
बकायन	बीज	मिलेशिया	बीज
बीफवुड ट्री	ताजे बीज	मॉकी ब्रेड ट्री	बीज़
बॉटल ब्रश	गूटी, बीज	मुलसरी	बीज
केमेलिया	बीज, कलम	नीम	बीज

औद्यानिक पौधों के प्रवर्धन से संबंधित कुछ छायाचित्र

पॉलीटनल का दृश्य

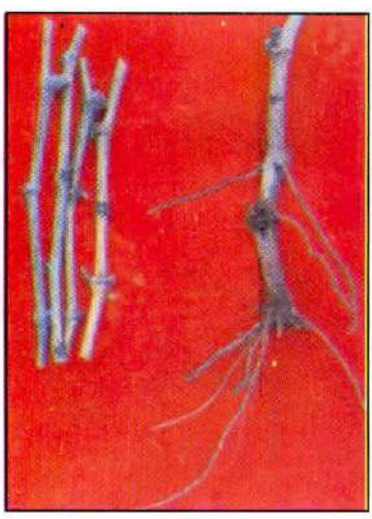

अंगूर की सख्त काष्ठ कलमें

नींबू में गूटी दाबा

आम में प्रांकुर कलम-बंधन

आम में विनियर कलम-बंधन

स्ट्राबेरी में उपरिभूस्तारी उत्पादन

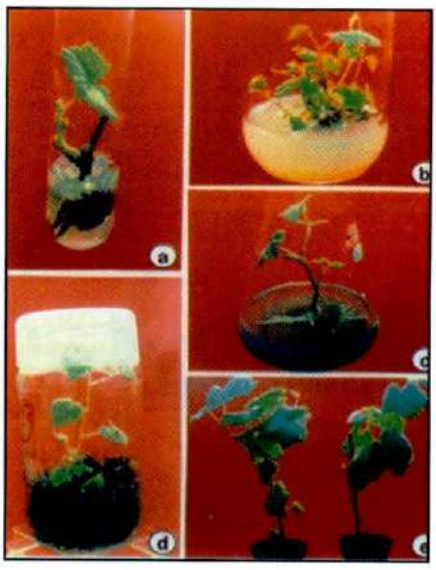

अंगूर का सूक्ष्म प्रवर्धन

अमरूद में स्टूलिंग

सेब में स्टूलिंग

विनियर कलम बंधन हेतु तैयार सांकुर

अमरूद में स्टूलिंग

सेब में स्टूलिंग

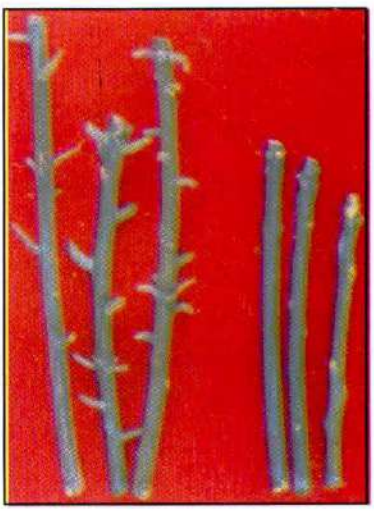

विनियर कलम बंधन हेतु तैयार सांकुर

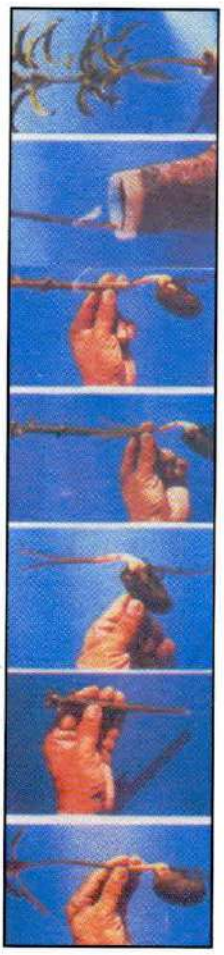

आम में प्रांकुर कलम-बंधन

आम में विनियर कलम-बंधन

स्ट्राबेरी में उपरिभूस्तारी उत्पादन

अंगूर का सूक्ष्म प्रवर्धन

प्लग ट्रे में तैयार पपीते की पौद

हरित गृह में तैयार आम की पौध

कुकुरबिटेसी कुल की सब्जियों की नियंत्रित वातावरण में तैयार पौद

पूसा संस्थान, नई दिल्ली में स्थापित नेट हाऊस का दृश्य

नियंत्रित वातावरण में तैयार पौद का दृश्य

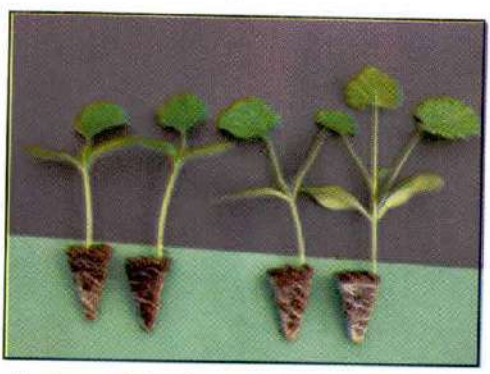

खेत में लगाने हेतु तैयार प्लग ट्रे में घीये की पौद

संदर्भ साहित्य

Bose. T.K. Mitra, S.K. and Sadhu. M.K. (1986). *Propagation of Tropical and Subtropical Horticultural Crops*. Noya Prokash, Kolkata, India.

Hartmann, H.T., Kester, De., Davies. F.T. and Geneves, R.L. (1997). *Plant Propagation: Principles and Practices*. Prentice-Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, India.

Sharma, R.R. (2002) *Propagation of Horticultural Crops*. Kalyani Publishers, Ludhiana, India.

Sharma. R.R. (2006). *Fruit Production: Problems and Solutions*. Intertntional Book Distributing Co., Lucknow., U.P., India

Sharma. R.R. and Srivastav. M. (2004). *Plant Propagation and Nursery Management*. International Book Distributing Co., Lucknow, U.P. India.

शर्मा, राम रोशन एवं गुप्ता, अनिल कुमार (2004). *स्ट्राबेरी उत्पादन: आधुनिक उत्पादन तकनीकें*, सतीश सीरियल प्रकाशन, नई दिल्ली।

शर्मा, राम रोशन (2002). *स्ट्राबेरी उत्पादन की आधुनिक प्रौद्योगिकी*, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

शर्मा, राम रोशन (2006). *औद्यानिक पौधों का प्रवर्धन एवं नर्सरी प्रबंधन*, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

शर्मा, राम रोशन (2009). *आधुनिक फलोत्पादन:* कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।

शुक्ल, अनिल कुमार; कौशिक, राम अवतार; महावर, लक्ष्मी नरायण; पारीक, सुनील; पांडेय, देवेन्द्र; सरोलिया, दीपक कुमार (2008). *आधुनिक फलोत्पादन*, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)।

पाठक, राम कृपाल (1991). *फलवृक्ष प्रवर्धन*। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।

श्रीवास्तव, श्याम सुंदर (1995). *उद्यान नर्सरी: आयोजन एवं कार्यप्रणाली* (द्वितीय संस्करण), सेंट्रल बुक हाउस, सदर बाजार, नई दिल्ली।

श्रीवास्तव, रमेश चंद्र (1968). *उद्यान कला*। किताब महल, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

सिंह, राम नाथ (1978). *फलविज्ञान*। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।

मिश्र, कौशल कुमार एवं पांडेय, राजमणि (1991). *फल उत्पादन*। गोविंद वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड।

पांडेय, श्याम नगीणा, दुबे, अनिल कुमार एवं जिंदल प्रेमचंद (2003). *फलवृक्षों में सधाई एवं काट-छांट*। फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली-12.

पांडेय, श्याम नगीणा, सिंह, संजय कुमार एवं पटेल, विश्व बंधु (2002). *फलदार वृक्षों में वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग*। फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भा. कृ.अनु.सं., नई दिल्ली-12.

पांडेय, श्याम नगीणा एवं शर्मा, राम रोशन (2002). *फलोत्पादन में नए आयाम*। फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली-12.

सिंह, आनंद कुमार दुबे, अनिल कुमार एवं श्रीवास्तव, मनीष (2007). *नर्सरी प्रबंधन तथा आधुनिक फल उत्पादन*। फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग, भा.कृ. अनु.सं., नई दिल्ली-12.

शर्मा, जे.पी. सिंह, सी.वी. एवं गुप्ता, अनिल कुमार (2005). *औद्यानिक फसलों की उत्पादन तकनीक*। कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र, भा.कृ. अनु.संस्थान, नई दिल्ली-12.

शर्मा, जे.पी. सिंह, सी.वी. एवं गुप्ता, अनिल कुमार (2002). *औद्यानिक फसलों की उत्पादन तकनीक*। कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र, भा.कृ.अनु.सं. नई दिल्ली-12.

शर्मा, जे.पी. सिंह, सी.वी. (2001). *फल-फूल एवं शाकीय फसलों की उन्नत तकनीक*। कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली-12.

❐

हिंदी अंग्रेजी शब्दावली

अंकुरण	gemination
अंकुरण दर	germination rate
अंकुरण नियंत्रण	germination regulation
अंकुरण निरोधक	germination inhibitor
अंकुरण परीक्षण	germination test
अंकुरण प्रावस्था	germination phase
अंकुरित बीज	germinated seed
अंत: भूस्तारी	sucker
अंत:शोषण	imbibition
अक्रिय चित्ती	dead spot
अगुणित	haploid
अधिभौम अंकुरण	epigeal germination
अंडाशय	ovary
अद्योभूमिक अंकुरण	hypogeal germination
अध्यावरण	integument
अनावर्ती असंगजनन	non-recurrent apomixis
अनिषेक जनन	parthenogensis
अनुकारी	responsive
अनुकूलतम तापमान	optimum temperature
अनुकूलतम नमी	optimum moisture
अपरिपक्व भ्रूण	immature enbryo
अपस्थानिक	adventitious
अपस्थानिक प्ररोह	adventitious shoot
अपहसन	degeneration
अधारगम्य झिल्ली	impermeable membrane
अप्ररोहन	deshooting
अरूढ़ी बीज	recacitrant seed
अर्ध सख्त शाख कलम	semi hard wood cutting
अलैंगिक	asexual
अल्पवर्धित भ्रूण	rudimentary embryo
अविकल्पी असंगजात	obligate apomict
असंक्रामक	nonifectious
असंगजनक	apomictic

असंगजनन	apomixis
असंगजनित भ्रूण	aspomictic embryo
असंगतता	incompatibility
आकारिकी	morphology
आकारिकीय	morphological
आकृतिक	morphological
अद्ष मूक	root primordia
आधान पात्रे तैयार	container grown
आनुवंशिकी संघटन	genetic constitution
आर्द्रपतन रोग	damping off desease
आविष	toxin
आवृतबीजी	angiosperm
ऑक्सिन	auxin
उग्र प्रभेद	virulent strain
उत्परिवर्जननी रसायन	mutagenic agent
उत्परिवर्तन	mutation
उपरि भूस्तारी	runner
उभयलिंगाश्रयी	monoecious
उभयलिंगी	hermaphrodite
ऊतक-संवर्धन	tissue culture
ऊष्मा-उपचार	heat treatment
एकवर्षीय पुष्पीय	flowering annual
एकबीजपत्री	monocot
एक लिंगाश्रयी	dioecious
एकरसनाशी	acaricide
एग्रोसन	agrosan
एथिल एल्कोहल	ethyl alcohal
एधा कोशिकाएं	cambium cells
ऐंठा हुआ	twisted
कंद	tuber
कर्तोतक	explant
कर्बुरन	mottling
कलम बंधन	grafting
कलम बंधनी मोम	grafting wax
कलमी काइमेरा	graft chimera

कलमी मिलाप	graft union
कलिका उत्परिवर्तन	bud sport
कलिकायन	budding
कवकनाशी	fungicide
कवच	shell
कांच गृह	glass house
काइमेरा, विचित्रोतकी	chimera
कायिक असंगजनन	vegetative apomixis
काएनेटिन	kinetin
कार्यिकीय	physiological
किशोरावस्था	juvenility
कीट पीड़क	insect-pest
कीट वाहक	insect vector
कंतलन	curling
कुहासा	mist
कुहासा गृह	mist house
कुहासा चैम्बर	mist chamber
कृंतन रसायन	pruning chemical
कृश	slender
केप्टान	captan
कैलस कोशिकाएं	callus cells
कैलस सेतु	callus bridge
कैल्शियम हाइपोक्लोराइट	calcium hypochlorite
कोमल, नाजुक	tender
कोशिका द्रव्य	cytoplasm
कोशिका संवर्धन	cell culture
क्लोन	clone
क्षतचिह्नन	scarification
खरपतवार नियंत्रण	weed control
खाई दाबा	trench layering
खूंटा लगाना	staking
गर्म क्यारी	hot bed
गामा किरणन	gama irradiation
गुलिकाएं	tuberacles
गूटी	air layering

गूदेदार	succulents
घनकंद	corm
घनकंदक	cormlet
घोंघे	snails
चिह्नक जीन	marker gene
छल्ला कलिकायन	ring budding
छायाकरण	shading
छाल	bark
छीलन	shreded bark
जड़ कलम	root cutting
जल निकास	drainage
जलयोजन अवस्था	hydration stage
जलांकुर	water sprout
जिह्वा कलम-बंधन	tongue grafting
जीन	gene
जीवनक्षम	viable
जीवनक्षमता परीक्षण	test of viability
टी कलिकायन	T-budding
डाइथेन-एम-45	dithane-M-45
ढाल कलिकायन	shield budding
ढांचा रोपण	frame working
ढाल कलिकायन	shield budding
तना कलम	stem cutting
तनु	thin
तप्त जलोपचार	hot water treatment
तराशी कलम-बंधन	spliced grafting
तरुण पत्ती	young leaf
त्रिगुणित	triploid
त्रिज्यखंडांशी विचित्रोतकी	merichinal chimera
थायोयूरिया	thiopurea
थीरम	thiram
दीप्तिकाल	photoperiod
दुर्बल पौद	lanky seedling
दुर्बल वृद्धि	lanky growth
दूरस्थ शिरा	distal end

दृश्यभू बागवानी	landscape gardening
दोहरी प्रसुप्ति	double dormancy
द्रवीय उर्वरक	liquid fertilizer
द्रुतशीतन	chilling
द्रुत सिक्सन विधि	quick dip method
द्विगुणन	duplication
द्विगुणित	diploid
द्विनिषेचन	double fertilization
द्विबीजपत्रीय पादप	dicotylednous plant
धवलीकरण	blanching
धूमन	fumigation
ध्रुवता	polarity
नमूना एकत्रित करना	sample collection
नवोद्मिद्	seedling
नाजुक	delicate
निम्रतापी भंडारण	cryogenic storage
निर्विभदन	dedifferentiation
निवारण	prevention
निष्कलिकायन	disbudding
निष्कवचन	shelling
निष्पत्रण	defoliant
पंजीकृत	registered
पक्व	ripe
पत्ती कलम	leaf cutting
पत्रप्रकलिका	bulbil
पराग संवर्धन	pollen culture
परासरण	osmosis
परिपक्वता	maturity
परिवेष्ठित विचित्रोतकी	periclinal chimera
परोक्ष संक्रमण	latent infection
पर्ण अंगमारी	leaf blight
पर्ण कक्ष	leaf axil
पर्णचित्ती	leaf spot
पर्णभक्षी इल्ली	leaf eating caterpillar
पर्णहरित	chlorophyll

पर्णीय असन	foliar feeding
पर्णीय उपयोग	foliar application
पर्णीय छिड़काव	foliar spray
पलवारना	muching
पांडुरता	etiolation
पाकोतर	after ripening
पात्रे	*in vitro*
पादपक	plantlet
पादप प्रवर्धक	plant propagator
पादप प्रवर्धन	plant propagation
पादप रक्षण उपाय	plant protection measure
पादप वृद्धि नियामक	plant growth regulator
पादप वैक्सीकरण	plant vaccination
पादप संरचना	plant structure
पादप सामग्री	plant material
पार्श्व कलम बंधन	side grafting
पीड़क नाशी	pesticide
पीड़क हरण	dis-infectation
पुयुग्मक	male gemate
पूर्व उपचार	pretreatment
पूर्वसृजित प्राथमिक मूल	preformed root initial
पूर्वापेक्षा	pre-requisite
पैबंदी कलिकायन	patch budding
पौद	seedling
पौध	sapling
पौधशालाकर्मी	nurseryman
प्रकंद	rhizome
प्रकाश संश्लेषण	photosynthesis
प्रचुरोद्भवन	prolifertation
प्रति आक्सीकारक	anti-oxidant
प्रतिलोभन	inversion
प्रत्यारोपण	placing on stock
प्रत्यावर्तन	reversion
प्रत्यावर्ती असंगजनन	recurrent apomixis
प्रमाणीकरण	certification

प्ररोह शीर्ष	shoot tip
प्रवर्धन	propagation
प्रवर्धन माध्यम	propagation medium
प्रवेशन	inoculation
प्रशाख	offshoot
प्रसुप्ति	dormancy
प्रांकुर	plumule
प्रांकुरी प्रसुप्ति	epicotyl dormancy
प्राकृतिक रोध	physical barrier
प्राथमिक प्रसुप्ति	primary domancy
प्रेरित प्रतिरोध	induced resistance
प्रौढ़ावस्था	adult phase
प्लास्टिक गृह	plastic house
फटना	cracking
फफूंद	fungi
फार्मेल्डिहाइड	formaldehyde
फैलाना	spread
फोरकर्ट कलिकायन	forkert budding
बसंतीकरण	vernalization
बहुगुणित	polyploidy
बहुतलीय सस्यन	multi-storeyed cropping
बहुभ्रूणता	polyembryony
बिंदु उत्परिवर्तन	point mutation
बिजारिया	bizzaria
बिनोमिल	benomyl
बीज की जीवनक्षमता	seed viability
बीज की सतह	seed surface
बीज क्यारी	seed bed
बीज परीक्षण	seed testing
बीज पत्र	cotyledon
बीज-वाडी	nursery
बीजांड	ovule
बीजांडकायिक पौध	nucellar seeding
बीजांड संवर्धन	ovule culture
बीजू पौधे	seedling plant

बीजोढ़	seed borne
बीजोढ़ रोग	seed borme disease
बीजोढ़-विषाणु	seed borne virus
बीजोपचार	seed treatment
बुरादा	saw dust
बोर्डो लेई	bordeaux paste
ब्रासीकॉल	brassicol
भूस्तारिका	offest
भेंट कलम बंधन	inarching
भ्रूण	embryo
भ्रूण संवर्धन	embryo culture
मंद प्रभेद	mild strain
मध्यस्थ मूलवृंत	intermediate stock
मरक्यूरिक क्लोराइड	mercuric chloride
मर्त्यता	mortality
मातृ ताड.	mother palm
मातृ पादप	mother plant
मातृ वृक्ष	mother tree
मॉस घास	moss grass
मिट्टी की पिंडी	earth ball
मिलाप	union
मुकुलन	budding; generation
मूलवृंत	rootstock
मूल समारंभन	root initiation
मूलांकुर	radicle
मूलाग्र	root tip
मूलोत्पत्ति	rooting
मृदा उपचार	soil treatment
मृदु काष्ठ कलम	softwood cutting
मृदूतक कोशिकाएं	parencymatous cells
मेथिल ब्रोमाइड	methyl bromide
मोजेक	mosaic
म्लनित	wilted
युग्मकी संलयन	syngamy
युग्मकी पौधे	gametic seedlings

युग्मविकल्पी अपकारिता	allelopathy
योगवाही प्रभाव	synergistic influence
रक्षित दशाएं	protected conditions
रासयनिक रोध	chemical barrier
रूपांतरित छल्ला कलिकायन	modified ring budding
रूपांतरित फोरकर्ट कलिकायन	modified forkert budding
रोग वाहक	vector
लाल प्रकाश	red light
लिंग अनुपात	sex ratio
लैंगिक	sexual
वलयन	girdling; ring
वलकुट	cortex
विकार्बोलिकीकरण	decarboxylation
व्हिप कलम-बंधन	whip grafting
विप्ररोहण	deshooting
विभाजन	division
विभाज्योतक	meristem
विभाज्योतक अग्र संवर्धन	meristem tip culture
विभाज्योतक कोशिकाएं	meristematic cells
विलंबित असंगतता	delayed incompatability
विलोपन	depletion
विविधता	variation
विशुद्धता	purity
विद्युत् प्रतिरोधक	electrical resistance
विशेषता	characteristics
विषम युग्मी	heterogygous
शलभ	moth
शाकीय	herbaceous
शीतोष्ण	temperate
शीर्ष दाबा	tip layering
शुष्क	dessicate
शुष्कन	dessication
शुष्कन पूर्व	pre-drying
शुष्क बीजोपचार	dry seed treatment
सधाई	training

सफाई	sanitation
सौरीयन	solarization
सरंध्री	porous
संकर पौधा	hybrid plant
संकीर्णन	strangulation
संकुचन	pinching
संक्रमण	infection
संतत कुहासा	continuous mist
संतति उद्यान	progeny orchard
संरचनात्मक रोध	structural barrier
संरोप	inoculum
संवहन ऊतक	vascular tissue
ससूंचन	indexing
सक्रियण अवस्था	activation stage
सक्रिय वृद्धि	active growth
सख्त काष्ठीय कलम	hard wood cutting
समजात गुणसूत्र	homologus chromosome
समसूत्री विभाजन	mitosis
समीपस्थ शिरा	proximal end
सर्वांगी कीटनाशी	systemic insecticide
सह्यता	congenial
सविराम कुहासा	intermetent mist
सांकुर	scion
सांकुर शाख	scion wood
साधारण दाबा	simple layaring
साइटोकाइनिन	cytokinin
साधारण दाब	simple layering
सिरेसान	ceresan
सुग्राही	susceptible
सुप्तिकाल	resing period
सुवास	flavour
सूचक पौधा	indicator plant
सेतु कलम-बंधन	bridge grafting
स्तब	rosette
स्तरण	stratification

स्थानगत	localized
स्थानांतरण अवस्था	translocation stage
स्फीति	turgidity
स्वअनिषेच्यता	self incompatibility
स्वत: उत्परिवर्तन	spontaneous mutation
हरितगृह	greenhouse
हरिमाहीनता	chlorosis
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	hydrochloric acid

GMGIPN—82 HRD/ND/10—1,000 Copies

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रण

PED- 915
1000-2010 (DSK-II)

Price - ₹ 403.00
$ 8.81
£ 5.43

महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नाशिक–422 006 द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार,
सिविल लाईन्स, दिल्ली–110 054 द्वारा प्रकाशित